स्वातंत्र्योत्तर भारत की नियति हिन्दी उपन्यास में

(साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत हिन्दी उपन्यासों के आधार पर)

The Destiny of Post Independence India as depicted in Hindi Novels

(Based on the Novels which won Sahitya Academy Award)

**कालिकट विश्वविद्यालय की डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी
की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध**

*Thesis submitted to the University of Calicut
for the Degree of Doctor of Philosophy in HINDI*

August 2016

निर्देशक :
डॉ. आर. सुरेन्द्रन
आचार्य (से.नि)
हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

प्रस्तुत कर्ता :
रश्मि यु.एम.
शोध छात्रा
हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

Supervising Teacher:
Dr. R. Surendran
Professor (Rtd.)

Submitted by:
Resmi. U. M.
Research Scholar

DEPARTMENT OF HINDI
University of Calicut

CERTIFICATE

This is to certify that the Thesis entitled **"THE DESTINY OF POST INDEPENDENCE INDIA AS DEPICTED IN HINDI NOVELS (Based on the Novels which won Sahitya Academy Award)"** is a bonafide record of research work carried out by **Smt. RESMI. U.M.,** under my supervision and that no part of this thesis has hitherto been submitted for a degree in any other University.

Dr. R. Surendran

C.U. Campus
Date :

[Research Guide]
Professor (Rtd.)
Department of Hindi
University of Calicut

DECLARATION

I, **RESMI. U.M.**, do hereby declare that this thesis entitled **"THE DESTINY OF POST INDEPENDENCE INDIA AS DEPICTED IN HINDI NOVELS (Based on the Novels which won Sahitya Academy Award)"** is a record of bonafide research work carried out by me and this has not previously formed the basis for the award of any Degree, Diploma, Associateship, Fellowship or other similar Title or Recognition.

This research work was supervised by Dr. R. Surendran, Professor (Rtd.), Department of Hindi, University of Calicut.

C.U. Campus — **RESMI. U.M.**
Date: — Research Scholar

अनुक्रम

प्राक्कथन i - vii

अध्याय – १ 2 - 7

साहित्य अकादमी पुरस्कृत हिन्दी उपन्यास : एक विवेचन

1.1 भूमिका

1.2 साहित्य अकादमी पुरस्कार

1.3 अकादमी हिन्दी पुरस्कार

1.3.1 साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हिन्दी उपन्यास

अध्याय – २ 9 - 109

सांप्रदायिक राजनीतिक नियति

2.1 तमस

2.1.1 भूमिका

2.1.2 भावभूमि

2.1.3 सांप्रदायिक तनाव

2.1.4 मूल्यांकन

2.2 ज़िन्दगीनामा

2.2.1 भूमिका

2.2.2 भावभूमि

2.2.3 सांप्रदायिक तनाव

2.2.4 मूल्यांकन

2.3 कितने पाकिस्तान

2.3.1 भूमिका

2.3.2 भावभूमि

2.3.3 सांप्रदायिक तनाव

2.3.4 मूल्यांकन

2.4 भूले बिसरे चित्र

2.4.1 भूमिका

2.4.2 भावभूमि

2.4.3 राजनीतिक संघर्ष

2.4.4 मूल्यांकन

2.5 रागदरबारी

2.5.1 भूमिका

2.5.2 भावभूमि

2.5.3 राजनीतिक गतिविधियाँ

2.5.4 मूल्यांकन

2.6 मेरी तेरी उसकी बात

2.6.1 भूमिका

2.6.2 भावभूमि

2.6.3 राजनीतिक संघर्ष

2.6.4 मूल्यांकन

2.7 नीलाचाँद

2.7.1 भूमिका

2.7.2 भावभूमि

2.7.3 राजनीतिक संघर्ष

2.7.4 मूल्यांकन

2.8 क्याप

2.8.1 भूमिका

2.8.2 भावभूमि

2.8.3 राजनीतिक संघर्ष

2.8.4 मूल्यांकन

2.9 इन्हीं हथियारों से

2.9.1 भूमिका

2.9.2 भावभूमि

2.9.3 राजनीतिक संघर्ष

2.9.4 मूल्यांकन

अध्याय – ३ **111 - 151**

पारिवारिक - सामाजिक नियति

3.1 अमृत और विष

3.1.1 भूमिका

3.1.2 भावभूमि

3.1.3 पारिवारिक संघर्ष

3.1.4 मूल्यांकन

3.2 ढाई घर

3.2.1 भूमिका

3.2.2 भावभूमि

3.2.3 सामाजिक संघर्ष

3.2.4 मूल्यांकन

3.3 दीवार में एक खिडकी रहती थी

3.3.1 भूमिका

3.3.2 भावभूमि

3.3.3 आर्थिक संघर्ष

3.3.4 मूल्यांकन

3.4 कलिकथा : बाया बाइपास

3.4.1 भूमिका

3.4.2 भावभूमि

3.4.3 सामाजिक संघर्ष

3.4.4 मूल्यांकन

अध्याय - ४ 153 - 190

नारी की नियति

4.1 अर्द्धनारीश्वर

4.1.1 भूमिका

4.1.2 भावभूमि

4.1.3 जागती नारी चेतना

4.1.4 मूल्यांकन

4.2 मुझे चाँद चाहिए

4.2.1 भूमिका

4.2.2 भावभूमि

4.2.3 नारी की महत्वाकांक्षा

4.2.4 मूल्यांकन

4.3 कोहरे में कैद रंग

4.3.1 भूमिका

4.3.2 भावभूमि

4.3.3 नारी के मुक्ति चेतना

4.3.4 मूल्यांकन

अध्याय - ५ **192 - 201**

व्यक्ति मन का विश्लेषण

5.1 मुक्तिबोध

5.1.1 भूमिका

5.1.2 भावभूमि

5.1.3 पात्र का आत्मसंघर्ष

5.1.4 मूल्यांकन

अध्याय - ६ **203 - 217**

स्वातंत्र्योत्तर भारत की नियति पुरस्कृत उपन्यासों में

6.1 भूमिका

6.2 तमस

6.3 ज़िन्दगीनामा

6.4 कितने पाकिस्तान

6.5 भूले बिसरे चित्र

6.6 रागदरबारी

6.7 तेरी मेरी उसकी बात

6.8 नीलाचाँद

6.9 क्याप

6.10 इन्हीं हथियारों से

6.11 अमृत और विष

6.12 ढाई घर

6.13 दीवार में एक खिड़की रहती थी

6.14 कलिकथा : वाया बाइपास

6.15 अर्द्धनारीश्वर

6.16 मुझे चाँद चाहिए

6.17 कोहरे में कैद रंग

6.18 मुक्तिबोध

निष्कर्ष

उपसंहार **219 - 233**

संदर्भ ग्रंथ सूची **235 - 257**

प्राक्कथन

स्वातंत्र्योत्तर भारत में राष्ट्र की नीति निर्धारण हेतु कई संगठनों की स्थापना हुई । देश के भाषाई वैविध्य को बनाये रखते हुए सांस्कृतिक एकता को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार ने साहित्य अकादमी का गठन किया । 12 मार्च सन् 1954 में अकादमी का उद्‌घाटन हुआ । राष्ट्र की सारी भाषाओं की उत्कृष्ट कृतियों को हर साल में एक एक पुरस्कार देकर सम्मानित करने का निर्णय उस समय लिया गया था । पंडित जवहरलाल नेहरू उस समय साहित्य अकादमी के अध्यक्ष थे । उन्नीस सौ पचपन से लेकर आज तक हिन्दी में सत्तावन पुरस्कार वितरित कर चुके हैं । उनमें बीस पुरस्कार उपन्यास की विधा को मिला है । सन् 1955 से 2010 तक की अवधि में पुरस्कार प्राप्त हिन्दी उपन्यासों का अध्ययन शोध का विषय है । स्वातंत्र्योत्तर भारत की नियति को रेखांकित करके यह शोध कार्य संपन्न हुआ ।

भगवतीचरण वर्मा, जैनेन्द्र, अमृतलाल नागर, श्रीलाल शुक्ल, भीष्म साहनी, यशपाल, कृष्णा सोबती, शिवप्रसाद सिंह, गिरिराज किशोर, विष्णु प्रभाकर, सुरेन्द्र वर्मा, विनोदकुमार शुक्ल, अलका सरावगी, कमलेश्वर, मनोहरश्याम जोशी, अमरकांत और गोविन्द मिश्र इस श्रेणी में आते हैं । इन उपन्यासकारों की सोच और विश्लेषण प्रक्रिया तथा शैली अलग-अलग है । ये सारे उपन्यास प्रतिपाद्य और प्रतिपादन में समान नहीं हैं । इन सारे उपन्यासों का अध्ययन करते समय हिन्दी उपन्यास के उतार-चढ़ाव की एक सही ग्राफ हमें मिल जाएगी । अलग-अलग लेखकों पर केन्द्रित कुछ अध्ययन इसके पहले आये हैं । लेकिन

अकादेमी पुरस्कार प्राप्त उपन्यासों पर केन्द्रित यह पहला अध्ययन है । इनमें कुछ लेखक स्वतंत्रता आन्दोलन से जुड़े हुए थे और कुछ परवर्ती युग के है । इन सबका समेकित विश्लेषण करना शोध का ध्येय है ।

इन सारे उपन्यासों में पीढियों का अंतराल, राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन, सांप्रदायिक तनाव, विभाजन से उत्पन्न त्रासदी, शहरी मध्यवर्ग की आर्थिक स्थिति, नैतिक मूल्यों का पतन, राजनीति की गन्दगी, नारी चेतना, सामंती व्यवस्था आदि समस्याओं का सशक्त चित्रण हुआ है । केवल गंदगी का चित्रण करना इसका मक्सद नहीं है । उसमें गुणात्मक परिवर्तन लाने की कामना उनकी मन में हैं ।

अध्ययन को वैज्ञानिक और क्रमबद्ध बनने के लिए शोध छह अध्यायों में विभक्त हुआ है –

(1) साहित्य अकादमी पुरस्कृत हिन्दी उपन्यास : एक विवेचन

(2) सांप्रदायिक-राजनीतिक नियति

(3) पारिवारिक-सामाजिक नियति

(4) नारी की नियति

(5) व्यक्ति मन का विश्लेषण

(6) स्वातंत्र्योत्तर भारत की नियति पुरस्कृत उपन्यासों में

और अंत में उपसंहार

प्रथम अध्याय 'साहित्य अकादमी पुरस्कृत हिन्दी उपन्यास एक विवेचन' है । इसमें साहित्य अकादमी के विभिन्न गतिविधियों का विवरण दिया है । भारतीय

भाषाओं के साहित्य में अन्तर्भूत सांस्कृतिक एकता को बढ़ावा देना अकादमी का लक्ष्य है। इसकी योजनाओं में पुरस्कार वितरण, पत्रिका प्रकाशन, कृतियों का प्रकाशन, पुरस्कृत कृतियों का अनुवाद प्रकाशन, फेलोशिप, भारतीय साहित्यकारों को विदेशी साहित्यकारों के निकट आने का अवसर प्रदान करना, राज्य की अकादमियों के संपर्क में आकर कार्यक्रमों का आयोजन, लेखकों की पुण्य तिथि, जनमतिथि समारोह का आयोजन आदि इनके मुख्य कार्यक्रम हैं । इस अध्याय के अंतिम भाग में अकादमी द्वारा पुरस्कृत हिन्दी उपन्यासों का विवरण भी दिया है ।

दूसरा अध्याय पुरस्कृत उपन्यासों में 'सांप्रदायिक-राजनीतिक नियति' है । उन सारे उपन्यासों की भावभूमि और विचार भूमि की विशेषताओं को परखने का प्रयास इस अध्याय में किया है । 'तमस', 'ज़िन्दगीनामा', 'कितने पाकिस्तान', 'भूले बिसरे चित्र', 'रागदरबारी', 'मेरी तेरी उसकी बात', 'नीलाचाँद', 'क्याप' और 'इन्हीं हथियारों से' को विशेष अध्ययन के लिए चुना है । स्वतंत्रता आन्दोलन के समय अंग्रेज़ों की 'फूट डालो राज करो' की नीति थी, तब जनता एकजुट होकर रहना भूल गयी । घोर सांप्रदायिक दंगे हुए । स्वतंत्रता आन्दोलन के समय जनता के मन में एक सुनहरे भारत का सपना था । लेकिन भारत को दो टुकड़ों में बाँटने की अंग्रेज़ों की नीति को इधर सफलता मिली । इस घटना ने उपन्यासकारों के मन में आशंकाएँ भर दी । राष्ट्रीय आन्दोलन, सांप्रदायिक दंगे, भारत विभाजन, स्वातंत्र्योत्तरकालीन राजनीति में पनपे भ्रष्टाचार, जातिवाद, माफिया युद्ध, वर्ग संघर्ष, स्वार्थ आदि का चित्रण लेखकों ने सशक्त ढंग से किया है । इसमें स्वतंत्रता आन्दोलन से प्रत्यक्ष संपर्क रखनेवाले और परवर्ती युग के उपन्यासकार आये हैं । स्वातंत्र्योत्तर भारत की सांप्रदायिक राजनीतिक नियति पर इन उपन्यासकारों ने सशक्त ढंग

से प्रस्तुत किया है । इन सबका एक संक्षिप्त वर्णन इस अध्याय में हुआ है ।

तीसरा अध्याय पुरस्कृत उपन्यासों में 'पारिवारिक-सामाजिक नियति' है । इसमें स्वातंत्र्योत्तर काल में पारिवारिक-सामाजिक स्तर पर हुए मूल्य विघटन की ओर अग्रसर होता है । स्वातंत्र्योत्तर काल में पारिवारिक विघटन, आर्थिक संघर्ष, नये-पुराने मूल्यों का द्वन्द्व, स्वार्थलिप्सा, संयुक्त परिवार का विघटन, सामंतवाद का राजनीति से जुड़ना, शहरीकरण, वैयक्तिकता आदि सामाजिक कुरूपताएँ देख सकते हैं । स्वातंत्र्योत्तर काल के मोहभंग का पर्दाफाश उपन्यासकारों ने खूब चित्रित किया है । अकादेमी पुरस्कृत उपन्यासों में इसका विस्तृत चित्रण मिलता है । अपने अध्ययन के दौरान इस नियति को व्यक्त किया है । जनता की सोच को नई दिशा देने के लिए इन उपन्यासों से प्रेरणा मिल जाती है । इनमें 'अमृत और विष', 'ढाई घर', 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' और 'कलिकथा बाया बाइपास' उपन्यास शामिल है ।

चौथा अध्याय पुरस्कृत उपन्यासों में 'नारी की नियति' का आकलन है । उपन्यासों में खासकर साठोत्तरी उपन्यासों में नारी की अस्मिता की तलाश एक प्रमुख मुद्दा बन गया है । आज स्त्री परंपरागत सीमाओं को तोड़कर स्वतंत्र अस्तित्व रखने के लिए संघर्षरत है । वह पुरुष के समान हर क्षेत्र में अपने अस्तित्व का एहसास कराती है । नारी की इस नियति आज लेखिकाओं ने अधिक सशक्त रूप में चित्रित किया है । लेकिन लेखकों ने भी अपने उपन्यासों में उत्पीडित नारी को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है । यहाँ स्वातंत्र्योत्तर भारत में नारी की इस नियति का अध्ययन किया है । 'अर्द्धनारीश्वर', 'मुझे चाँद चाहिए' और 'कोहरे में कैद रंग' उपन्यास इसमें शामिल हैं ।

पाँचवाँ अध्याय पुरस्कृत उपन्यासों में 'व्यक्ति मन का विश्लेषण' है । इसमें व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर ध्यान दिया है । स्वातंत्र्योत्तर भारत में व्यक्ति निर्णय लेने में असमर्थ हुए। परिस्थितियों के दबाव में पड़कर एक व्यक्ति के मन का विश्लेषण उसकी नियति के रूप में चित्रित है । जैनेन्द्र का 'मुक्तिबोध' उपन्यास इस धारा में आता है ।

छठा और आखिरी अध्याय है 'स्वातंत्र्योत्तर भारत की नियति पुरस्कृत उपन्यासों में' । स्वातंत्र्योत्तर भारत में देश और समाज में कई परिवर्तन आये हैं । इन परिवर्तनों के हेतु और परिणामों को जानने और पहचानने का प्रयास उपन्यासकारों ने किया है । इस अध्याय में साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्राप्त कुल सत्रह उपन्यासों का अध्ययन हुआ है । विषय वैविद्य यहाँ देखते हैं । देश, समाज, व्यक्ति विशेषकर स्त्री की नियति एक हद तक बदल गयी है । उसका चित्रण इन उपन्यासों में हैं । स्वतंत्रता के सुनहरे स्वप्नों को संजोनेवाली आँखों के सामने अंधकार, निराशा और मोहभंग की स्थितियाँ आ गईं । राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्तर पर हुए मोहभंग का संक्षिप्त अध्ययन इन उपन्यासों में प्रतिपादित और प्रतिफलित हुए है । आज़ादी के आधी रात में अचानक महसूस किये जानेवाले मूल्य का ह्रास उस काल के उपन्यासकार किस हद तक चित्रित किया है इसका संक्षिप्त अध्ययन यहाँ हुआ है ।

अंत में उपसंहार है । इसमें सभी अध्यायों में आए प्रमुख विचार बिन्दुओं को पुनः प्रस्तुत किया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कालिकट विश्वविद्यालय के भूतपूर्व विभागाध्यक्ष प्रोफेसर

डॉ. आर. सुरेन्द्रन जी के निर्देशन में संपन्न हुआ है । उन्होंने समय समय पर अपने मूल्यवान सुझाव एवं प्रेरणा देकर मेरी शंकाओं का निवारण किया है । उनके प्रोत्साहन के लिए मैं सदैव उनका ऋणी हूँ ।

कालिकट विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष असोसिएट प्रोफेसर डॉ. प्रमोद कोवप्रत जी के प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ, जिनका पूर्ण सहयोग मुझे मिला है । विभाग के अन्य गुरुजनों के प्रोत्साहन एवं सहयोग के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ । मेरे सहयोगी मित्रों के प्रति भी मैं हृदय से आभारी हूँ । परिवारजनों का स्नेह और आशीर्वाद भी प्रेरणादायक रहा । मेरे जीवनसाथी श्री षिजु.पी.के हमेशा प्रेरणा एवं प्रोत्साहन देते हुए मेरे साथ रहे । उन सबके प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ ।

शोध सामग्री संकलन में हमारे कालिकट विश्वविद्यालय के पुस्तकालय और विभागीय पुस्तकालय के कर्मचारियों को धन्यवाद प्रकट करती हूँ । केरल विश्वविद्यालय, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, यूनिवेर्सिटी कॉलेज तिरुवनन्तपुरम, गर्व. आड्र्स एण्ड सइन्स कॉलेज कालिकट के पुस्तकालय काफी लाभदायक रहे। इन सभी संस्थाओं और विश्वविद्यालयों के संचालकों और प्रधानाचार्यों ने सामग्री संकलन की सुविधा देकर मेरी मदद की है । उनके प्रति मैं विशेष रुप से धन्यवाद अदा करती हूँ ।

मेरे शोधकार्य के लिए सामग्री चयन करते समय मुझे दिल्ली जाने का अवसर मिला । केन्द्रीय साहित्य अकादमी, दिल्ली विश्वविद्यालय, जवहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय और केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के पुस्तकालय जाने का अवसर मिला । साहित्य अकादमी के पुरस्कार सम्मेलन (2016 फरवरी) में भागीदार होने का सुअवसर भी मुझे मिला । केन्द्रीय साहित्य

अकादमी के अध्यक्ष डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी और सचिव श्री.के. श्रीनिवासराव से बातचीत करने का सौभाग्य मुझे मिला है । यहाँ से हिन्दी साहित्यकारों को मिलने का और बातचीत करने का मौका भी मिला । डॉ. रामदरश मिश्र, गोविन्द मिश्र, गंगाप्रसाद विमल, विनोदकुमार शुक्ल, रवीन्द्र कालिया, ममता कालिया, मृदुला गर्ग, वेदप्रकाश अमिताभ जैसे विद्धानों से मिलने का सौभाग्य मुझे मिला । उनके सुझावों से भी मैं बहुत लाभान्वित हो सकी हूँ । उन सब के प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ ।

आज की युवा पीढी को पुराने युग की जानकारी इतिहास से मिलती है। उस काल के देश की जानकारी के लिए साहित्य भी एक सहारा है । यह शोध कार्य मुझे उस दृष्टि से प्रेरक लगा है । इतिहास में देश का अतीत का चित्रण मिलता है । पत्रकारिता में देश का वर्तमान का चित्रण है । लेकिन देश के अतीत और वर्तमान को एकसाथ लाने का प्रयास साहित्यकारों ने की है । शोध में निमग्न होते समय उपन्यासकारों द्वारा चित्रित युग सत्य की अलग पहचान मुझे मिल गयी । यह शोध की एक बडी उपलब्धी है ।

इस शोध प्रबन्ध को विद्धानों के समक्ष विनम्रतापूर्वक प्रस्तुत करती हूँ ।

रश्मि. यु.एम

अध्याय – १

साहित्य अकादमी पुरस्कृत हिन्दी उपन्यास : एक विवेचन

1.1 भूमिका

जाति, धर्म, भाषा, आचार-अनुष्ठान आदि के आधार पर भारत में अनेक प्रकार की वैविध्य प्राचीन काल से देख सकते हैं । यह आज भी कायम है, भारत वर्ष की एकता उसकी विविधता में निहित है । ये विविधताएँ हमारी संस्कृति के विकास में कोई विघ्न नहीं है।

भारत में कई भाषाएँ हैं । इन सारी भाषाओं की अपनी अपनी समृद्ध साहित्यिक विरासत, परंपरा, इतिहास और धरोहर हैं । आधुनिक भारतीय भाषा का वर्गीकरण कुछ विद्वानों ने अपने अपने ढंग से किया है । भारत के विद्वानों में सुनीतिकुमार चाटर्जी ने भारत की भाषाओं का गहन अध्ययन किया । उन्होंने भारत की भाषाओं को उदीच्च वर्ग (सिंधी, लँहदा, पंजाबी); प्रतीच्य वर्ग (गुजराती, राजस्थानी); मध्यदेशीय वर्ग (पश्चिमी हिन्दी); प्राच्च वर्ग (पूर्वी हिन्दी, बिहारी, उड़िया, बंगला, असमी); दक्षिणात्य वर्ग (मराठी) आदि वर्गों में विभक्ता किया । धीरेन्द्र वर्मा ने भाषाओं का वर्गीकरण उदीच्य (सिंधी, लँहदा, पंजाबी); प्रतीच्च (गुजराती); मध्यदेशीय (राजस्थानी, पश्चिमी तथा पूर्वी, हिन्दी, बिहारी, पहाडी); प्राच्य (उडिया, बंगाली, असमी); दक्षिणात्य (मराठी) के अंतर्गत किया है । पश्चिम से आये विद्वान डॉ. ग्रियर्सन भारत की भाषाओं का भाषावैज्ञानिक अध्ययन किया था । उन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर भारतीय भाषाओं को तीन उपशाखाओं में विभक्त किया है – बाहरी उपशाखा (लहंदा, सिंधी, मराठी, असमी, बंगाली, उडिया, बिहारी); मध्यवर्ती उपशाखा (पूर्वी हिन्दी); भीतरी उपशाखा (पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, भीली, खानदेशी, राजस्थानी, पूर्वी या नेपाली पहाडी, मध्य तथा पश्चिमी) । लेकिन ये सारे निरीक्षण सांस्कृतिक संदर्भ में ठीक नहीं है । भारत की भाषाओं की सांस्कृतिक विरासत एक ही है । भाषाओं की विकास से सांस्कृतिक एकता का विकास होगा । भारतीय भाषाओं का समन्वय करने के उद्देश्य से साहित्य अकादमी की स्थापना हुई ।

अकादेमी की उद्‌घाटन भाषण में डॉ. राधाकृष्णन ने एक अभिमत रखा – 'Indian Literature is one, though written in many languages' याने भले ही अनेक भाषाओं में लिखा जाता है, भारतीय साहित्य की मूल चेतना एक ही है । इधर एक ही संस्कृति को एकाधिक भाषाओं में एक साथ अभिव्यक्ति मिलती है ।

भारत सरकार के 15 दिसंबर 1952 के प्रस्ताव के अंतर्गत साहित्य अकादमी नामक राष्ट्रीय संस्था की स्थापना का निर्णय लिया । भारत सरकार ने अकादमी का गठन किया। लेकिन एक स्वायत्त संस्था के रूप में कार्य करती है । अकादमी का उद्‌घाटन भारत सरकार द्वारा 12 मार्च 1954 को किया गया था । भारत सरकार के जिस प्रस्ताव में अकादमी का यह विधान निरूपित किया गया था, उसमें अकादमी की परिभाषा दी गई है – भारतीय साहित्य के विकास के लिए कार्य करनेवाली एक राष्ट्रीय संस्था, जिसका उद्देश्य उच्च साहित्यिक मानदंड स्थापित करना, भारतीय भाषाओं में साहित्यिक गतिविधियों को समन्वित करना एवं उनका पोषण करना तथा उनके माध्यम से देश की सांस्कृतिक एकता का उन्नयन करना होगा । संस्था पंजीकरण अधिनियम 1860 के अंतर्गत इस संस्था का पंजीकरण 7 जनवरी 1956 को किया गया ।

भारत की चौबीस भाषाओं में साहित्यक क्रिया कलापों का पोषण करनेवाली एक ही संस्था है 'नेशनल एकेडेमी ऑफ लेटर्स' । ये चौबीस भाषाओं में अंग्रेज़ी और राजस्थानी भी सम्मिलित है । अकादमी ने बेंगलूरु, अहमदाबाद, कोलकत्ता और दिल्ली में अनुवाद-केन्द्र और दिल्ली में भारतीय साहित्य अभिलेखागार का प्रवर्तन किया है । साहित्य अकादमी को भारत की संस्कृति तथा यहाँ की विभिन्नताओं का ज्ञान है, जो भारतीय साहित्य की विविध अभिव्यक्तियों को एकसूत्रता प्रदान करते हैं । विश्व के विभिन्न देशों के साथ यह एकता

अकादेमी के सांस्कृतिक विनिमय के कार्यक्रमों द्वारा वैश्विक स्तर पर प्रजातिगत आयाम की खोज करती है ।

प्रत्येक भाषा के लिए परामर्श मंडल है, जिसके सदस्य प्रसिद्ध लेखक और विद्वान होते हैं और उन्हीं के परामर्श पर तत्संबंधी भाषा का विशिष्ट कार्यक्रम नियोजित एवं कार्यान्वित होता है । साहित्य अकादमी के पहले अध्यक्ष पंडित जवाहरलाल नेहरु थे । उनके बाद डॉ. एस. राधाकृष्णन, डॉ. जाकिर हुसैन, डॉ. सुनीतीकुमार चाटर्जी, प्रो. के.आर. श्रीनिवास आयंगर, प्रो. उमाशंकर जोशी, प्रो. वी.के. गोकाक, डॉ. बीरेन्द्र कुमार, प्रो. यु.आर. अनन्तमूर्ती, श्री रमाकांत रब, प्रो. गोपीचंद नारंग, श्री सुनील गंगोपाध्याय सेवारत हैं । संप्रति अकादमी का अध्यक्ष हिंदी के मशहूर कवि तथा गोरखपुर विश्वविद्यालय के पूर्व आचार्य और अध्यक्ष डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी हैं ।

1.2 साहित्य अकादमी पुरस्कार

साहित्य अकादमी प्रत्येक वर्ष अपने द्वारा मान्यता प्रदत्त चौबीस भाषाओं में साहित्यिक कृतियों के लिए पुरस्कार प्रदान करती है । इन्हीं भाषाओं परस्पर साहित्यिक अनुवाद के लिए पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं । ये पुरस्कार साल भर चली संवीक्षा, परिचर्चा और चयन के बाद घोषित किए जाते हैं । अकादमी उन भाषाओं के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान करनेवालों को 'भाषा सम्मान' से विभूषित करती है, जिन्हें औपचारिक रूप से साहित्य अकादमी की मान्यता प्राप्त नहीं है । यह सम्मान 'क्लासिकल एवं मध्यकालीन साहित्य' में किए गए योगदान के लिए भी दिया जाता है । अकादमी प्रतिष्ठित लेखकों को महत्तर सदस्य और मानद महत्तर सदस्य चुनकर सम्मानित करती है। अकादमी ने वर्ष 2010 से बाल साहित्य पुरस्कार तथा वर्ष 2011 से युवा पुरस्कार योजनाएँ प्रारंभ की है । आनन्द कुमारस्वामी और प्रेमचन्द के नाम से

'फेलोशिप' की स्थापना भी की गई है ।

1.3 अकादमी हिंदी पुरस्कार

सन् 1954 में अपनी स्थापना के समय से ही साहित्य अकादमी प्रतिवर्ष भारत की अपने द्वारा मान्यता प्रदत्त भारत की प्रमुख भाषाओं से प्रत्येक में प्रकाशित सर्वोत्कृष्ट साहित्यिक कृति को पुरस्कार प्रदान करती आयी है । साहित्य अकादमी पुरस्कार भाषागत है, विधागत नहीं । पहली बार ये पुरस्कार सन् 1955 में दिए गए । साहित्य की सारी की सारी विधाएँ अकादमी विचारार्थ स्वीकार करती है जैसे कविता संग्रह, संस्मरण, उपन्यास, समालोचना, कहानी, यात्रावृत्तांत, निबंध, नाटक, एकांकी संग्रह, ग़ज़ल संग्रह, आत्मकथा, जीवनी, टीका, दर्शन, इतिहास, काव्यशास्त्र, व्यंग्य आदि ।

साहित्य अकादमी पुरस्कृत हिंदी की पहली कृति माखनलाल चतुर्वेदी का 'हिमतरंगिनी' (कविता संग्रह) है । हिंदी में सन् 1955 से लेकर सन् 2015 तक के साठ वर्षों में कविता को अठाईस पुरस्कार, कहानी को दो पुरस्कार, टीका को एक पुरस्कार, दर्शन को एक पुरस्कार, इतिहास को एक पुरस्कार, भारतीय संस्कृति को एक पुरस्कार, काव्यशास्त्र को एक पुरस्कार, समालोचना को एक पुरस्कार, निबंध संग्रह को एक पुरस्कार, व्यंग्य को एक पुरस्कार, जीवनी को दो पुरस्कार और उपन्यास को बीस पुरस्कार मिले हैं ।

1.3.1 साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हिन्दी उपन्यास

क्र.सं.	*पुरस्कृत वर्ष*	*पुस्तक*	*लेखक*
1)	1961	भूले बिसरे चित्र	भगवतीचरण वर्मा
2)	1966	मुक्तिबोध	जैनेन्द्र कुमार

3)	1967	अमृत और विष	अमृतलाल नागर
4)	1969	राग दरबारी	श्रीलाल शुक्ल
5)	1975	तमस	भीष्म साहनी
6)	1976	मेरी तेरी उसकी बात	यशपाल
7)	1980	ज़िन्दगीनामा	कृष्णा सोबती
8)	1990	नीलाचाँद	शिवप्रसाद सिंह
9)	1992	ढाई घर	गिरिराज किशोर
10)	1993	अर्द्धनारीश्वर	विष्णु प्रभाकर
11)	1996	मुझे चाँद चाहिए	सुरेन्द्र वर्मा
12)	1999	दीवार में एक खिडकी रहती थी	विनोदकुमार शुक्ल
13)	2001	कलिकथा : बाया बाइपास	अल्का सरावगी
14)	2003	कितने पाकिस्तान	कमलेश्वर
15)	2005	क्याप	मनोहरश्याम जोशी
16)	2007	इन्हीं हथियारों से	अमरकांत
17)	2008	कोहरे में कैद रंग	गोविन्द मिश्र
18)	2011	रेहन पर रघ्घू	काशीनाथ सिंह
19)	2013	मिल जुल मन	मृदुला गर्ग
20)	2014	विनायक	रमेशचन्द्र शाह

इन उपन्यासों में विषय वैविध्य देख सकते हैं । 'भूले बिसरे चित्र', 'तमस', 'मेरी तेरी उसकी बात', 'ज़िन्दगीनामा', 'कितने पाकिस्तान', 'इन्हीं हथियारों से', 'मिल जुल मन' आदि उपन्यासों में राष्ट्रीय आन्दोलन और उससे उत्पन्न समस्याओं का जिक्र मिलते हैं ।

राजनीतिक उथल-पुथल की स्थितियों का अंकन 'राग दरबारी', 'नीलाचाँद', 'क्याप' आदि उपन्यासों में मिलते हैं । 'अमृत और विष', 'ढाई घर', 'दीवार में एक खिडकी रहती थी', 'कलिकथा बाया बाइपास', 'रेहन पर रघ्घू', 'विनायक' आदि उपन्यासों में पारिवारिक-सामाजिक संघर्ष शामिल है । जागती नारी चेतना का स्वर 'अर्द्धनारीश्वर', 'मुझे चाँद चाहिए', 'कोहरे में कैद रंग' आदि उपन्यासों में देख सकते हैं । 'मुक्तिबोध' में व्यक्ति मन का विश्लेषण है ।

सन् 1955 से लेकर सन् 2010 तक की अवधि में पुरस्कृत सत्रह उपन्यासों को शोध के लिए चुना है ।

अध्याय – २

सांप्रदायिक-राजनीतिक नियति

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त उपन्यासों में छह उपन्यास सीधे राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधियों से संबंधित है । ये उपन्यासकार दो कोठी में आते हैं । आन्दोलन से प्रत्यक्ष संपर्क रहनेवाले और परवर्ती युग के उपन्यासकार इसमें आये हैं । भगवतीचरण वर्मा (भूले बिसरे चित्र), यशपाल (मेरी तेरी उसकी बात) और अमरकांत (इन्हीं हथियारों से) प्रथम कोठी में आते है । भीष्म साहनी (तमस), कृष्णा सोबती (ज़िन्दगीनामा) और कमलेश्वर (कितने पाकिस्तान) दूसरी कोठी में आते हैं । स्वतंत्रता प्राप्ती के बाद की परवर्ती युग में समाज में व्याप्त अनुशासनहीनता, सत्तालोलुपता, भ्रष्टाचार और नैतिक पतन को कुछ उपन्यासकारों ने विषय बनाया । श्रीलाल शुक्ल (रागदरबारी), शिवप्रसाद सिंह (नीलाचाँद) और मनोहरश्याम जोशी (क्याप) इसके अंतर्गत आते हैं ।

2.1 तमस

2.1.1 भूमिका

भारत की आज़ादी के लिए विभिन्न आन्दोलन हुए । एक ओर अंग्रेज़ों के खिलाफ विद्रोह, स्वतंत्र भारत की माँग थी तो दूसरी ओर स्वतंत्र पाकिस्तान की माँग हो रही थी । परिणामस्वरूप अंग्रेज़ों ने 1947 में भारत छोड़ने का निर्णय लिया । लेकिन जाति के नाम पर भारत का विभाजन भी हुआ । स्वतंत्रता आन्दोलन के अवसर पर हुए इस यथार्थ्य को साहित्यकार भीष्म साहनी खुद भोगा । 'झरोखे', 'कडियाँ', 'तमस', 'बसंती', 'मैयादास की माडी' आदि उनके उपन्यास हैं । भीष्म साहनी ने व्यक्त किया है कि – "एक लेखक के नाते ईमानदारी से सत्य का पक्षधर हो, अपनी लेखनी द्वारा मैं अपने पाठकों को सांप्रदायिकता,

अलगाववाद के विषक्त माहौल से सचेत करूँ और सामान्य की भरी पूरी खुशहाल, अमनचैन की, बिरादराना ज़िन्दगी का रठवाब बुनूँ, यही उद्देश्य लेकर मैंने 'तमस' की रचना की ।"[1] स्वतंत्रता के ठीक समय हुए सांप्रदायिक तनाव अंग्रेज़ों की देन है । इसके फलस्वरुप भारत में दंगे-फसाद, आगजनी, बलात्कार, अराजकता और क्रूरता भी देखते हैं । सांप्रदायिक शक्तियाँ इस समय सक्रिय रही । भीष्म साहनी का 'तमस' इसी माहौल की एक भयावह कहानी है ।

'तमस' उनके भोगे हुए यथार्थ का एक अंग है । फिर वह लिपिबद्ध करने में लगभग पच्चीस वर्षों का लंबा अंतराल लगा । उनकी आत्मकथा में लिखते हैं – "भिवंडी में दाखिल हुए तो मुझे लगा जैसे मैं उस नगर का दृश्य कहीं देख चुका हूँ । चारों ओर छाई चुप्पी, बरामदों, छतों पर खडे इक्का-दुक्का लोग, खाली सड़कें, मानो समय की गति थम गई हो ।"[2] भिवंडी के गलियों में घूमते हुए उनकी आँखों के सामने वही दृश्य एक बार फिर घूम गए जिन्हें उन्होंने पच्चीस साल पहले यानि सन् 1947 के समय अपने शहर पंजाब में देखा था। भिवंडी से लौटने पर भीष्म जी ने खुद अपने आँखों-देखा-भोगा यथार्थ को 'तमस' के रूप में प्रस्तुत किया ।

2.1.2 भावभूमि

'तमस' की कथाभूमि पंजाब है । उपन्यास दो खण्डों में विभाजित है । एक में शहर है और दूसरे में गाँव । उपन्यास का आरंभ नत्थू एक मामूली चमार द्वारा सुअर मारने के प्रकरण से होता है । अंग्रेज़ अफसर के इशारे पर मुरादअली ने पाँच रुपये देकर नत्थू से एक मरे हुए सुअर की माँग की । जब मस्जिद की सीढ़ियों पर मरा हुआ सुअर पड़ा मिलता है तो उसे समझ आ जाता है कि उससे सुअर क्यों मरवाया गया है । सारे कस्बे में यह खबर आग की तरह फैल जाती है । इसी घटना से सांप्रदायिक दंगों का भयानक रूप नज़र आता है ।

दूसरी ओर मुसलमानों ने इसकी प्रतिक्रिया देते हुए गाय को काटकर धर्मशाला के बाहर फेंक दिये । लोगों ने उनपर प्रतिक्रिया व्यक्त की । लेकिन सुअर मारने से नत्थू को कहीं न कहीं अपराध बोध है । सारा शहर आतंक से डूबता जा रहा था ।

उपन्यास के दूसरे खण्ड में शहर से देहातों में फैले सांप्रदायिक तनाव का चित्रण मिलता है । हरनाम सिंह, बंतों, राजो, इक़बाल सिंह, रमजान, जसवीर और ऐसे कई ग्रामीण पात्र का चित्र उपन्यास में हैं ।

2.1.3 सांप्रदायिक तनाव

अंग्रेज़ अफसर रिचार्ड के इशारे पर मुरादअली नत्थू द्वारा सुअर मारकर मस्जिद की सीढ़ियों पर फेंकता है । दूसरी ओर गाय को काटकर मंदिर की सीढ़ियों पर फेंकता है । मुरादअली के हिन्दु प्रतिरूप है वानपस्थी जी और मास्टर देवव्रत । दोनों हिन्दुओं में मुसलमानों के प्रति नफरत पैदा करते हैं । मास्टर जी बालकों के मन में सांप्रदायिक भावनाएँ भड़काकर उन्हें निर्दोष मुसलमानों को मारने की प्रेरणा देता है । ये सांप्रदायिक दंगे कराने की पूर्वनिर्धारित योजना कराती हैं ।

हिन्दु-मुस्लीम दंगे जगह-जगह भडकने लगे थे । उस समय पाकिस्तान की मांग भी बार-बार उठने लगी थी । अंग्रेज़ों ने हिन्दु, मुसलमान और सिक्खों के बीच शक, घृणा और द्वेष फैलाया । और उनके बीच फूट डालकर अपना राजनीतिक मक्सद हासिल करने की कोशिश की गई । उस वक्त एक ओर आज़ादी की तड़प में लोग कुर्बानियाँ दे रहे थे, तो दूसरी ओर सांप्रदायिकता का ज़हर फैलाया जा रहा था । इन दंगों को रोकने के लिए लोगों ने अंग्रेज़ अफसर रिचार्ड के पास जाते हैं । वे शांती के लिए आह्वान करते हैं । लेकिन रिचार्ड ने इस

मामले का समझौता न कर उन लोगों को गांधी और नेहरू के पास जाने की सलाह दी । सारा वातावरण नारों से गूँज उठता है । रिचार्ड अपने षड्‌यंत्र की सफलता पर प्रसन्न हो रहा था । रिचार्ड और पत्नी लीजा की बातों से इसका स्पष्ट ज्ञान मिलता है –

"लीजा – बहुत चालाक नहीं बनो, रिचार्ड । मैं सब जानती हूँ । देश के नाम पर ये लोग तुम्हारे साथ लडते हैं और धर्म के नाम पर तुम इन्हें आपस में लडाते हो । क्यों ? ठीक है न ?"

रिचार्ड – "हुकूमत करने वाले यह नहीं देखते कि प्रजा में कौन सी समानता पाई जाती है, उनकी दिलचस्पी तो यह देखने में होती है कि वे किन-किन बातों में एक दूसरे से अलग है ।"[3] इसमें खुलकर सामने आ जाता है कि शासक की दिलचस्पी अपनी सत्ता कायम रखने के प्रति कितने गहरे हैं । मूल विषय से ध्यान हटाने के लिए शासक सांप्रदायिकता का जहर फैलाता है । यही है अंग्रेज़ी नीति । लोगों के भीतर आतंक फैलाकर ये लोग प्रसन्नता से बैठे हैं ।

भीषण सांप्रदायिक दंगों के पश्चात् जन-धन की हानी हुई । इसमें लाखों, करोडों लोगों की ज़िन्दगी उध्वस्त हुई । ऐसी त्रासद परिस्थिति का वर्णन इस ढंग से हुआ है – "मुहल्लों के बीच लीकें खिच गई थीं, हिन्दुओं के मुहल्ले में मुसलमान को जाने की अब हिम्मत नहीं थी, और मुसलमानों के मुहल्ले में हिन्दु-सिख अब नहीं आ जा सकते थे । गलियों के सिरों पर और सड़कों नोकों पर जगह जगह कुछ लोग हाथों में लाठियाँ और भाले लिए और मुश्कें बाँधे, छिपे बैठे थे ।"[4] इस प्रकार वर्षों से चले आ रहे भाईचारे का रिश्ता, रक्तपात में बदल गया था । शहर में तनाव बढता जाता है । दिन-प्रतिदिन स्थिति बिगडती जाती है । इसका वर्णन उपन्यास में इस प्रकार है – "दिन के उजाले में शहर अधमरा सा पड़ा था । मानो उसे सांप सूँघ गया हो ।

मण्डी अभी भी जल रही थी, म्युनिसिपैलिटी के फयर ब्रिगेड ने उसके साथ जूझना कब का छोड दिया था । उसने उठनेवाले धुएँ से असमान में कालिमा पुत रही थी, जबकि यत के वक्त आसमान लाल हो रहा था । सत्रह दूकानें जलकर राख्र हो चुकी थी ।"[5] अग्नि-कोड और दंगे ने शहर का विनाश किया । धर्मान्धता इतनी अमानवीय और खतरनाक होती जा रही थी ।

सांप्रदायिकता की आग शहर से छोटे छोटे गाँव तक फैल गई । इलाहीबख्श गाँव में सिक्ख दंपति हरनाम सिंह और उसकी पत्नी बन्तो रहते थें । इस गाँव में चाय की दूकान अच्छी तरह से चलती थी । गाँव के मुसलमानों पर उसे पूरा भरोसा था कि कोई मुसलमान उसके साथ बुरा कार्य नहीं करेगा । लेकिन धार्मिक विद्धेष बहुत तेज़ी से आदमी को अंधा बनाता था । स्थिति अच्छी न होने के कारण पति-पत्नी अपनी गाँव से निकल पड़े । उनके चले जाते ही मुसलमानों द्वारा उनकी दूकान लूटकर आग लगा दी जाती है । इसका स्पष्ट चित्रण उपन्यास में है – "यह इस समय केवल वे दो ही नहीं । अनगिनत लोग दर्जनों गाँवों में से इसी भाँति जान बचाते घूम रहे थे, अनेक लोगों के कानों में टूटते किवाडों की आवाज़ें पड रही थी ।"[6] इन सबके मन में एक ही चिंता है कि जान बचने के लिए ।

मुरीदपुर गाँव में राजो नामक मुसलमान स्त्री दोनों को पनाह देती है । लेकिन राजो का बेटा रमज़ाना मुस्लीम लीगी है जो सिक्ख्र परिवार को बरबाद करने के लिए आतुर है । लेकिन राजो उनको सुरक्षित गाँव की सीमा तक उनके माल सहित पहुँचती है । हरनाम सिंह का बेटा इबाल सिंह को मुसलमान लोग पकड़ लिया जाते हैं । शुरू में नई कैंची से बाल काटता रहा, फिर घोडे के गोबर और मूत से उसके बालों के गुच्छे अलग-अलग से बाँधकर काटता रहा । इकबाल सिंह का मुँह ख्रोला और माँस का एक बड़ा-सा टुकडा, जिसमें से ख्रून की बूँदे चू रही थी, उसके मुँह में डाल दिया । इकबाल सिंह को मज़बूर होकर मुसलमान बनना

तथा गाय का कच्चा मांस भी खाना पड़ता है । इकबाल सिंह सचमुच इकबाल अहमद नज़र आने लगा था । रमज़ान के नेतृत्व में यह सब कार्य करता है । सांप्रदायिक दंगे के फंस में पड़कर सिक्ख दंपति बेटे के साथ कुएँ में कूदकर आत्मसमर्पण करते हैं ।

सांप्रदायिक दंगे के कारण सैय्यदपुर के गुरुद्धार में मुसलमानों को मुकाबला करने के लिए जोर-शोर से तैयारियाँ की जाती है । आत्मबलिदान के लिए सभी तैयार थे । चारों तरह युद्ध का भीषण वातावरण फैल गया । लेकिन सिक्ख बलवाईयों के समक्ष अधिक समय तक टिक नहीं पाए । गुरुद्धार में स्त्रियाँ अपने बच्चे लेकर खडी थी । इन स्त्रियों ने समझा कि उनकी आबरु खतरे में हैं । खतरा समझकर स्त्रीयों ने गुरुद्धारों से बाहर ढलान के नीचे बने कुएँ में अपने बच्चों सहित प्राण दी । इन स्त्रियों के समूह में हरनामसिंह की ब्याही बेटी जसवीर कौर भी है । पाँच दिनों में सांप्रदायिकता के नाम पर सैकडों मारे गये, हज़ारों बेघर हो गये । लाखों की संपत्ति नष्ट हो गयी ।

सांप्रदायिक दंगों का सूत्रधारी अंग्रेज़ अफसर रिचार्ड है । रिचार्ड कर्फ्यू लगाने का आदेश ज़ारी करता है । कांग्रेसी नेता बख्शीजी जरनैल, कम्यूनिस्ट चरित्रों में देवदत्त, सोहनसिंह, मीरदाद जैसे पात्रों ने फिसाद रोकने के लिए काम कर रहे हैं । फिसाद रोकने के लिए डिप्टी कलक्टर से बार-बार अनुरोध करता है । इसके फलस्वरूप दंगों के बाद अंग्रेज़ों द्धारा रिफ्यूजी कैंप बनाऐ जाते हैं । रिलीफ कमेटी बनायी जाती है । अमर कमेटी का गठन किया जाता है । अमर कमेटी ने एक बस यात्रा शुरु की । जिसमें मुरादअली अमन कमेटी का नेतृत्व करते हुए हिन्दु-मुस्लीम एकता का नारा लगा रहा था । सच्चाई यह है कि जिस मुरादअली के आदेश पर नत्थू ने सुअर को मारा और मस्जिद की सीढियों पर रखकर सांप्रदायिक दंगे को भडकाने में घी का काम किया, वहीं मुरादअली अमन कमेटी का नेतृत्व करते हैं ।

आलोचक मधुरेश की यही राय है कि, "लेखक का सारा कौशल इसीमें निहित है कि एक ओर जहाँ उसने इस अंधेरे में छिपे चेहरों की वास्तविकता को उद्‌घाटित किया है, वहीं दूसरी ओर इन चेहरों के पारस्परिक क्रिया-कलाप द्वारा घने होते इस अंधेरे के स्वरूप को भी स्पष्ट कर सका है ।"[7] चारों ओर अमानवीय तमस पसरे ।

अंग्रेज़ों ने बडी चतुराई से धर्म के नाम पर हिन्दु मुसलमानों को भडका दिया था । रिचार्ड अपनी पत्नी से कह रहा था कि यह देश मेरा नहीं है और न ही ये लोग मेरे देश के हैं । अंग्रेज़ों ने हिन्दु-मुसलमानों में फूट डालने की कामयाब कोशिश की । एक ओर गाँधीजी की घोषणा है – पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा । दूसरी ओर 'अल्ला-हो-अकबर' और 'हर हर महादेव' के नारों से सारा वातावरण गूँज उठता है । मुसलमान अपने लिए अलग राष्ट्र की माँग की । बाद में देश हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के रूप में बॉट गया । लोगों के भीतर आतंक फैलाकर अंग्रेज़ लोग प्रसन्नता से बैठे हैं।

साहित्यकार रामदरश मिश्र का कथन है कि, "इस उपन्यास में लेखक समय की दृष्टि से थोडा पीछे की ओर लौटा है यानि उसने स्वाधीनता प्राप्ती से कुछ समय पूर्व का समय चुना है और उसके गर्भ में खलबलाती सांप्रदायिक विभीषिका और उसके सहवर्ती तथा अनुवर्ती प्रभावों की संश्लिष्ट दुनिया की पहचान की है ।"[8] निश्चय ही सांप्रदायिकता का जहर में सामान्य जन तबाह होता है । कांग्रेस के ईमानदार कार्यकर्ता बख्शी जी की यही मनस्थिति है – "फसाद करनेवाला भी अंग्रेज़, फसाद रोकनेवाला भी अंग्रेज़, भूखों मरनेवाला भी अंग्रेज़, रोटी देनेवाला भी अंग्रेज़, घर से बेघर करनेवाला भी अंग्रेज़, घरों में बसानेवाला भी अंग्रेज़ ....."[9] सच है कि अंग्रेज़ी सत्ता से भारत पर सांप्रदायिकता का विष फैलाने का एक रास्ता खुली ।

सांप्रदायिक तनाव का सही चित्रण उपन्यास में मिलता है । यह उपन्यासकार

का अनुभव की इम्तिहाज है । भारतीय इतिहास की संस्कृति का कलाकृति है 'तमस' ।

2.1.4 मूल्यांकन

स्वतंत्रता के पूर्व पंजाब में हुए सांप्रदायिक दंगों की तीष्णता 'तमस' का केन्द्र है । उपन्यास में अंग्रेज़ अफसर रिचार्ड द्वारा स्वतंत्रता की मांग से ध्यान हटाने के लिए सांप्रदायिक झगडे को प्रोत्साहित करते हैं । इस उपन्यास का मुरादअली अंग्रेज़ों की नीति का एक मोहरा है । नत्थु इसका शिकार बना है ।

'फूट डालो राज करो' का अंग्रेज़ नीति से हिन्दु, मुसलमान और सिक्खों के बीच द्वेष फैलाते हैं । यहाँ हम देखते हैं कि आज़ादी की तड़प में लोग कुर्बानियाँ दे रहे थे तो दूसरी ओर सांप्रदायिकता का ज़हर फैलाता है । मुरादअली का हिन्दु प्रतिरूप है वानप्रस्थजी और मास्टर देवव्रत । 'तम' गुणों से युक्त व्यक्ति बुरे से भी बुरा कार्य करता है । रिचार्ड, मुरादअली, वानप्रस्थी, देवव्रत जैसे पात्रों के माध्यम से इसका चित्रण मिलता है । बख्शीजी, देवव्रत, सोहनसिंह, जरनैल मीरदाद जैसे पात्र के माध्यम से सांप्रदायिक दंगा रोकनेवालों का भी चित्रण करते हैं ।

जनता के सामने केवल एक ही सवाल है हिन्दुस्तान की आज़ादी । सुअर मारने की प्रकरण से सांप्रदायिकता रूपी ज़हर मुहल्ले का भाईचारा नष्ट कर देता है । धार्मिक विद्वेष से सभी अलग हो जाते हैं । इसका जिक्र उपन्यास में हरनामसिंह और उसके परिवार से मिलते हैं । सांप्रदायिक दंगे के समय अपने ही गाँव में बेसहारा होकर हरनामसिंह निकल पडता है । शहर से गाँव तक फैली सांप्रदायिक दंगों की तीष्णता इस परिवार के द्वारा चित्रित है । केवल उनके ही नहीं सारे का सारा घर नष्ट हो चुके हैं । सांप्रदायिक दंगे के कारण मुसलमान के मुहल्ले

में हिन्दु और हिन्दुओं के मुहल्ले में मुसलमान को जाने की हिम्मत भी नहीं । लेकिन यहाँ कुछ भले मानस के लोग भी देखते हैं । राजो एक मुसलमान औरत है । भीषण सांप्रदायिक दंगे के अवसर पर भी वह हरनामसिंह और बंतो को पनाह देती है । यहाँ भीष्म जी ने स्पष्ट व्यक्त किया है कि मानवता एकदम मरती नहीं है । हरनामसिंह का बेटा इकबाल सिंह का इकबाल अहमद बनने का चित्र यथार्थ के धरातल पर तो ही साथ ही अत्यंत मार्मिक बन पडा है । मुसलमानों के आक्रमण से सिक्ख स्त्रियों का अपने बच्चे सहित कुएँ में आत्महुती करने का चित्र कितनी भयानक है । इसी घटना से स्पष्ट हो जाता है कि सांप्रदायिकता की भेदभाव नीति मानवीय भावना की हत्या कर देती है ।

एक राष्ट्र के नागरिक होते हुए भी हम विभिन्न धर्मों में बंटे होने के कारण सांप्रदायिकताओं को प्रश्रय देते हैं । यही सांप्रदायिक सोच न जाने कितने प्राणों को मृत्यु के मुख में धकेल देती है । सांप्रदायिक दंगों के पश्चात हिन्दु और मुसलमान अलग राष्ट्र की मांग भी की । जिस तरह इन्सानियत हैवानियत बन जाता है, उसका नज़र हम यहाँ देख सकते हैं । अपने निहित स्वार्थ के लिए सांप्रदायिकता की आग फैलाते हैं । हम यहाँ देखते हैं कि भीषण सांप्रदायिक दंगे के पश्चात् गाँव में अमन कमेटी बनाता है, इसका नेतृत्व मुरादअली भी करता है । कैसी विडंबना है यह । हमारे राष्ट्र की यही नियति है कि दंगे करानेवाले लोग पर्दे के पीछे है और दंगे करनेवाले आमने-सामने । नत्थू को जब सुअर मारने का यथार्थ बोध होता है वह पश्चाताप करता है । यहाँ एक निर्दोष व्यक्ति अपनी अद्विग्नता को, यातनाओं को असहाय, विवश बनकर जी लेता है ।

बख्शी जी एक ऐसा पात्र है कि सांप्रदायिक दंगे को रोकने के लिए बार बार आवाज़ उठाते हैं । लेकिन बाद में वह जानता है कि यह दंगा कभी रोक नहीं सकता । उसका

यह वाक्य कितना मर्मस्पर्शी है – "चीलें उडेंगी, अभी और उडेंगी ।"[10] यह सही है कि स्वतंत्रता के पहले हुई सांप्रदायिक दंगा पहले से ज़्यादा अब भी मौजूद है । हमारे राष्ट्र की इस नियति को हमें स्वीकारना पडा । यहाँ भीष्म साहनी 'तमस' के द्वारा तम से ज़्योती की ओर अग्रसर होने की चेतावनी देते हैं ।

स्वतंत्रता के इतने साल बाद भी सांप्रदायिक रूपी 'तम' से हम मुक्ति पा नहीं । निश्चय ही भीष्म साहनी कृत 'तमस' इस ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता रहेगा । इसमें उन्होंने जो आशंका प्रकट की थी वह दिन ब दिन संकीर्ण बनती जा रही है ।

2.2 ज़िन्दगीनामा

2.2.1 भूमिका

किसी भी रचना में रचनाकार का निजी व्यक्तित्व और उसकी संस्कृति की छाप अवश्य रहती हैं । रचनाकार अपने विवेक से, अपनी आँख से जिस यथार्थ की पहचान करते हैं वह अपनी रचना द्वारा प्रकट करता है । समकालीन कथासाहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर कृष्णा सोबती के शब्दों की तीष्णता भोगा हुआ यथार्थ की है । 'डार से बिछुडी', 'मित्रों मरजानी', 'सूरजमुखी अंधेरे के', 'दिलो दानिश', 'समय सरगम', 'ज़िन्दगीनामा' आदि उनके उपन्यास हैं । सोबती का जन्म विभाजन पूर्व पश्चिम पंजाब में हुआ था । उन्होंने अंग्रेज़ी शासन देखा और देश की आज़ादी को भी देखा । आज़ादी के साथ हुई देश विभाजन भी भोगा । उनका जन्म स्थान पंजाब अब पाकिस्तान की हिस्सा बन गया । ऐसा सोबती जी की कलम तलवार जैसी है । भोगा हुआ यथार्थ की तीष्णता सन् 1979 में प्रकाशित उनका उपन्यास 'ज़िन्दगीनामा' में मिलता है ।

अंग्रेज़ सरकार ने अपने शासन को बनाये रखने के लिए पहले पहल जनता में फूट डालने की शुरुआत की । अंग्रेज़ सरकार की कूट नीति से सांप्रदायिक तनाव उत्पन्न हो गया । इसके फलस्वरुप हिन्दु-मुसलमान दोनों धर्म के लोगों में अलगाव बढ गया । उनका परिवार उस त्रासदी का शिकार बन गया था – "एक वक्त । एक पीढी । एक खतरा । एक टूटन । एक तिडकन । एक त्रासदी । त्रासदी जो किसी एक जन की नहीं । दर्द जो किसी एक का नहीं । मौत किसी एक की नहीं । कल भी किसी एक का नहीं ।"[11] यही प्रेरणा से कृष्णा सोबती ने 'ज़िन्दगीनामा' का चयन किया । लेखिका का कहना है कि "ज़िन्दगीनामा को हाथ से लिखना भर नहीं था । उसे तो ज़िन्दगी की तरह ही जीना था ।"[12] भोगा हुआ यथार्थ को उन्होंने लिख बद्ध कर दिया ।

2.2.2 भावभूमि

सोबती का प्रसिद्ध उपन्यास 'ज़िन्दगीनामा' में पंजाब का ग्रामीण परिवेश है । इसमें स्वतंत्रतापूर्व पंजाब के यानी सन् 1905 से सन् 1915 तक का कालखण्ड जीवंत हो उठा है । पंजाब के झेलम और चिनाब नदियों के बीच बसे गुजरात गाँव का वर्णन करते हुए पंजाब में हुए क्रांतिकारी आन्दोलन को जोड़ने का सफल प्रयास किया है । लेखिका का बचपन यहाँ गुज़रा था । इसलिए उन्हें अपने गाँव के प्रति एक प्रकार का आंतरिक लगाव है, और अपनी मातृभूमि का ऋण उतारने के लिए ही उन्होंने इस उपन्यास का प्रणयन किया ।

कथा के केन्द्र में शाह परिवार है, उसी के इर्द-गिर्द से कथा बुनी गयी है । उपन्यास में चरित्रों की संख्या बहुत अधिक है । बडे शाह और उनके छोटे भाई काशीशाह के अलावा कई अन्य सदस्य और बंधुजन भी हवेली में रहती है । जैसे शाहजी की पत्नी शाहनी, उनकी देवरानियाँ और राबयाँ, माँ बीवी, चाची महरी आदि औरतें भी हैं । उन दिनों शाह

ज़मीनदारों का दब दबा कायम था । शाहजी गाँव के ज़मीनदार हैं । शाहजी दूसरे ज़मीनदारों के समान नहीं थे, वे हर व्यक्ति के कुशल-मंगल ही चाहते थे । एक ही घर में शाह भाई बहुत प्यार और मेल-झोल से रहते हैं । पारिवारिक समस्या होते हुए भी परिवार की सभी सदस्य मिलजुलकर एक दूसरे के सुख-दुख में शामिल होकर इज्जत के साथ ज़िन्दगी बिताते रहे । शाहों की हवेली की मजलिस से गाँववालों को सब तरह की खबरें मिलती है । गाँव में पढे लिखे लोग कम है। हवेली की मजलिस में छोटे शाह काशीशाह अखबार पढाकर सभी खबरें सुनाते हैं ।

उपन्यास में वर्णित समय प्रथम विश्वयुद्ध का है । 'ज़िन्दगीनामा' किसी एक व्यक्ति या परिवार की कथा नहीं, पंजाब के अंचल की कथा है । लेखिका ने अविभाजित पंजाब के लोकजीवन, डेरा जट्ट गाँव का, वहाँ की जन संस्कृति का चित्रण के साथ गाँव में पनपते सांप्रदायिक तनाव का चित्रण भी किया है । उपन्यास में न कोई नायक, न कोई खलनायक सिर्फ लोग और लोग हैं ।

2.2.3 सांप्रदायिक तनाव

गाँव में हिन्दु-मुसलमान-सिक्ख धर्म के लोग सदियों से भाई के समान रहते आए हैं । विभिन्न धर्म के लोग पारस्परिक सहयोग और एकता का जीवन व्यतीत करते रहे । रीति-रिवाज़ों में भी समानताएँ हैं । शाहजी के घर में गाँव के मुसलमान जब मस्जिद के निर्माण के लिए चंदा मांगते आये तो शाहजी मस्जिद और मन्दिर को एक मानते हुए सहर्ष चंदा देते हैं । शाहनी अपने गोद मरने के लिए बाबा फरीद से मन्तत मांगती हैं । गाँव के हिन्दु-मुसलमानों के धार्मिक विचारों में तो अंतर होता ही है लेकिन सामाजिक, सांस्कृतिक, आचार-विचारों में कोई अंतर दिखाई नहीं देता ।

यह अंग्रेज़ शासन का समय था । अंग्रेज़ों ने नये-नये कानून बनाये । इसका बहुत बुरा असर गाँव के जनता पर पड़ा । इसकी चर्चा मजलिस में होने लगी । इस खबर पर गाँववाले प्रतिक्रिया प्रकट करते हैं – "ज़्यादती है यह सरकार की । अपने खेत में खडे हों तो ज़रूरत-मज़बूरी से ही काटेगा न बन्दा ! सरकार के आगे हाथ फैलाएँ ! वह मडवी कौन !"[13] इसके विरुद्ध पंजाब में सरकार के खिलाफ आन्दोलन शुरु हुआ । ग्राम जीवन की आर्थिक स्थिति कृषि पर निर्भर है । इसकी पहली प्रतिक्रिया लाहौर में शुरु हुई ।

वहाँ के ज़मीनदारी वर्ग और खेतीहारी ज़ोर ज़ोर जुलसे बुलाये । लार्ड कर्जन इस समय के एक चतुर राजनीतिज्ञ थे । उन्होंने बंगाल विभाजन का प्रस्ताव रखा । जनता की ओर से इसका घोर विरोध हो गया ।

भारत विभिन्न जातियों और धर्मों का देश है । पंजाब में हिन्दु, सिक्ख और मुसलमान आदि धर्म के लोग रहते हैं । ये सारे धर्मावलंबी आपस में मिलजुलकर प्यार से रहते हैं । अंग्रेज़ सरकार ने अपना शासन बनाये रखने के लिए पहले पहल जनता में फूट डालने की शुरुआत की । उन्हें हिन्दुओं के विरुद्ध मुसलमानों को उनका समर्थन ज़्यादा मिला । इस तरह हिन्दुओं से मुसलमानों को अलग करने की रीति उन्होंने अपना ली । बंगाल प्रस्ताव से उभरा संघर्ष केवल बंगाल तक सीमित नहीं रहा । सारे मुल्क में इसके विरुद्ध आवाज़ उठी । अंग्रेज़ों ने सांप्रदायिकता का ज़हर फैलाना शुरु किया । जिसके कारण छोटे-मोटे कत्ल और दंगे छिड गये । रावलपिंडी और लाहोर में दिन-ब-दिन दंगे होते रहें । शाहजी एक अवसर पर कहते हैं कि – "चौधरीजी, यह भी सही है । कोई और नया कानून आ गया तो फिर आप शाह और हम मुजारे ।"[14] सदियों से भाई-भाई के समान रहनेवाले हिन्दु मुसलमानों के परंपरागत संबन्धों में इस तरह संघर्ष बढने लगे ।

स्वतंत्रता आन्दोलन में पंजाब का अपना अलग पहचान थी । इस आन्दोलन के दौरान जितनी लोग शहीद हो गये उनमें सबसे अधिक पंजाब के लोगों की हैं । पंजाब केसरी लाला लजपतराय के ओजस्वी भाषणों से पंजाब के युवक जागृत हो उठे । पूरे पंजाब में भीषण क्रांतिकारी घटनाओं के साथ अंग्रेज़ी माल का बहिष्कार और स्वदेशी प्रचार बडे तीव्र वेग से चला ।

अंग्रेज़ ने 'फूट डालो राज करो' की नीति से सांप्रदायिकता का ज़हर गाँव में फैलाने लगे । सारे मुल्क में कत्ल कर दिया – "खबरों में खबर शाहदाद के कत्ल की । अचानक पिंडों में ऐसी तरथल्ली मची कि रहे नाम रब्ब का ।"[15] सबसे पहले शाहदाद खां के कत्ल की खबर सारे गाँव में फैलाने लगे । वहीं दूसरी ओर गाँव के लोग सोए हुए ही कि अंधेरे में किसी ने दीवान सुनारे के पुत्र गुलजारी को गर्दन पर वार किया । गुजरात अड्डे पर शाहपुर के एक तहसीलदार नादिर हुसैन का कत्ल कर दिया गया । आलमगढ पर डाका पडा तो पुलीस गांव की भी दोरे करने लगी । इस प्रकार के वातावरण के कारण गाँव भर में खलबली मच गयी । यही अंग्रेज़ सरकार की कूटनीति थी । सांप्रदायिकता की आग फैलाने के उद्देश्य से अंग्रेज़ों ने यह कार्य किया । लेकिन ग्रामीणों ने इसके विरुद्ध आवाज़ उठायी । लोर्ड कर्जन को कत्ल करने की योजना की । उन्होंने निश्चय किया – 'खून का बदला खून' ।

जब जनता की ओर से इसका घोर विरोध हुआ तो इसे दबाने के लिए अंग्रेज़ों ने सांप्रदायिकता का हथियार अपने हाथों में ले लिया । सांप्रदायिकता का तनाव चारों ओर बढ़ गया । सारे मुल्क में अंग्रेज़ों ने अपने राज बनाने में गाँव के लोगों को आपस में जगड़ने का कार्य संभाला । दवा-दारू छोडकर उलटे खून खराब करने का आह्वान देते हैं । गाँव के भाईचारे में अलगाव बढ़ने लगे ।

सन् 1905 में बंगाल विभाजन करने का उद्देश्य केवल शासन का बोझ हल्का करना मात्र नहीं, बल्कि एक मुस्लीम प्रांत का निर्माण करना भी है, जहाँ इस्लाम को प्रमुखता होगी । लेकिन जनता ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया । उन्हें पता चला कि "हुकूमत-सरकार की अपनी करनियाँ है । कभी हिन्दुओं को भड़काए, कभी मुसलमानों को लशाए, कभी सिक्खों को ।"[16] गाँव में लोर्ड कर्जन द्वारा कलकत्ता और अमृतसर जैसे सारे के सारे इलाकों में भी आन्दोलन का विद्रोह भी हुआ । इस प्रकार मुल्क भर में इन्कलाबी मौसम छाया हुआ था । उपन्यास का पात्र नसीबसिंह सहम गया – "शाहजी, बंगले की तरह जो कर अपने पंजाब के भी दो टुकडे हो गए तो माहतड-साथों का क्या होगा ।"[17] ऐसी कई सवाल लोगों के बीच चर्चा का विषय बन जाता है ।

दिल्ली के चाँदनी चौक से निकले तो बडे लार्ड पर बम फेंका गया । इससे लार्ड जख्मी भी हुए थे । इसके कारण इन्कलाबियों के सिर पर इनाम की पेशकश हुई । इस स्वतंत्रता आन्दोलन के बीच गाँधीजी का आगमन हुआ । जनता में एक नई चेतना जागृत हो गयी । सरकार द्वारा हिन्दुस्तानियों पर किए जाने वाले अत्याचारों के विरुध्द कठिन संघर्ष करते हुए उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलन का विकास किया ।

आलोचक मधुरेश की राय है कि – "कृष्णा सोबती ने 'ज़िन्दगीनामा' के केन्द्र में भले ही शाहनी को रखा है, लेकिन यह पंजाब में हिन्दु-मुसलमानों की साझा-संस्कृति के बीच के लंबे कालखण्ड में घटित सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों को बहुत प्रामाणिक रूप में अंकित करता है ।"[18] डेरा जट्ट गाँव का परिवर्तित राजनीतिक माहौल का सच्चा दस्तावेज़ यहाँ मिलता है ।

उपन्यास की भूमिका में एक कविता दी गयी है । कविता इस तरह शुरु होती

है –

“गलबहियाँ-सी
उमडती, मचलती
दूधभरी छातियों-सी
चनाब और जेहलम की धरती
माँ बनी
कुरते के बनद खोलती
दूध की बूँदें ढरकाने को ।”[19]

जिसमें पंजाब की ज़िन्दगी का बहुत ही सुन्दर और खुश हाल चित्र प्रस्तुत किया है । ग्राम सौंदर्य का सही चित्रण यहाँ मिलता है । कविता इस प्रकार खतम होती है –

“कौन जानेगा
कौन समझेगा
अपने वतनों को छोडने
....
....
हम यहाँ नहीं होंगे ।
नहीं होंगे,
फिर कभी नहीं होगे,
नहीं ।”[20]

कविता के अंत में लेखिका उस घटना को याद दिलाती है जिसके कारण लाखों लोगों को अपना वतन छोडना पड़ा था ।

श्री परमानन्द श्रीवास्तव ने 'ज़िन्दगीनामा' के बारे में लिखा – "यह एक तरह के अनुभव का विस्तार है - एक गहरी जीवनदृष्टि का प्रमाण ।"[21] सच है कि विभाजन पूर्व पंजाब की धडकती ज़िन्दगी का सौंदर्य और अंग्रेज़ सरकार की नीति के विरुद्ध उठी ग्रामीण मानसिकता उपन्यास में है । जिसे लेखिका स्वयं भोगता है । उपन्यास का अंत गुरु गोविन्दसिंह की वाणी से होता है ।अत्याचार के विरुद्ध तलवार उठने को प्रेरित करनेवाली वाणी शाहजी मजलिस के सामने पेश करते हैं –

"चूँ कार आज हमाँ हीलते दरगुज़रत
हलालस्त बुर्दन ब-शमशीर दश्त !"[22]

मतलब यह है कि जब दूसरे सब रास्ते कारगर न हो सके, तो जुल्म के खिलाफ तलवार उठा लेना ही जायज है । 'वाह-वाह, गुरु साहिब, आपकी बहादुरी की वाह ही वाह ।' यहाँ लेखिका के क्रांतिकारी आह्वान भरपूर है । 'ज़िन्दगीनामा' में विभाजन पूर्व पंजाब की धडकती ज़िन्दगी का सौंदर्य के साथ-साथ अंग्रेज़ सरकार की दमनकारी नीति के विरुद्ध उठी ग्रामीण मानसिकता भी झलकती है ।

2.2.4 मूल्यांकन

अंग्रेज़ भारत में व्यापार करने के लिए आया । लेकिन धीरे धीरे उन्होंने अपने शासन बनाया रखना कोशिश की । तब पूरे भारत की स्थिति ही बिगड गई । कृष्णा सोबती जी का उपन्यास 'ज़िन्दगीनामा' में अंग्रेज़ी शासन का धमनकारी नीति का साजिश मिलते हैं । अंग्रेज़ों के कूटनीति से देश का विभाजन हुआ । विभाजन के भुगता भोगी लेखिका को अपने खानदान के लोगों के साथ पंजाब की अपनी धरती छोड़कर भारत आयी । हिन्दी में 'ज़िन्दगीनामा' एक ऐसी रचना है, जो विभाजन के पूर्व की ज़िन्दगी से संबंध रखती है, जिस समय

मुसलमानों के सामने पाकिस्तान जैसी कोई अवधारणा नहीं थीं ।

उपन्यास में पंजाब के डेरा जट्ट गाँव का सौंदर्य झलकता है । उपन्यास में कोई नायक नहीं है । कोई नपा-तुला कथानक भी नहीं है । अनेक पात्र और घटनाएँ आती है । फिर भी शाह परिवार केन्द्र में मिलते हैं । शाहजी के घर में मस्जिद निर्माण के लिए मुसलमान चंदा मांगते हैं और शाहनी अपनी गोद भरने के लिए बाबा फरीद से मन्नत मांगती है । इससे ज्ञात होता है कि गाँव के सभी धर्म एक दूसरे के सुख-दुख पर भागीदारी है ।

पाँच नदियों का राज्य पंजाब हरियाली से भरपूर है । खेतीबारी के अनुकूल वातावरण यहाँ है । लॉर्ड कर्जन, अंग्रेज़ सरकार का प्रतिनिधि है । अंग्रेज़ों के राज के लिए गाँव के भाईचारा बाधा बनी । इससे लोर्ड कर्जन बंगाल विभाजन का प्रस्ताव रखा । औपनिवेशिक शासन ग्रामीण जनता के भाईचारे और प्रेम को तोडने का प्रयास करते रहे । सांप्रदायिक तनाव से पवित्र झनाब और झेलम में मनुष्य का रक्त बहता रहा । दंगे-फिसाद और खींचातानियाँ बढ रही हैं । अपने जन्मभूमि से अलविदा कहने को मज़बूत पंजाबियों की हृदय पीडा उपन्यास में मर्मस्पर्शी ढंग से अंकित है । स्वातंत्र्योत्तर भारत की यही नियति है कि सौ वर्ष के पहले हुई इस सांप्रदायिकता का जिक्र हमारे समाज में स्वतंत्रता के इतने सालों बाद भी नज़र आता है । पहले अंग्रेज़ों ने इसका बीज बोया । लेकिन आज भारत के लोगों ने ही इसको हाथ में उठा ली । गाँववालों के मन में एक तरह की भयावहता नज़र आयी । हम भी आज इसी भय पर जीवित रहे हैं । क्योंकि आज दंगे-फसाद सभी ओर दिखाते रहें । भारत स्वतंत्र होकर साढे छह दशक चुके हैं, फिर भी हमें सांप्रदायिकता को झेलना पड़ता है ।

उपन्यास के आरंभ में दी गयी ये पंक्तियाँ कितनी मर्मस्पर्शी है –

"जहाँ खूनी और खून एक साथ माजूद हों वहाँ न दोस्तारी और न रिश्तेदारी "[23]

अंग्रेज़ों द्वारा फैलायी सांप्रदायिक जहर से सभी ओर खून टपकता है ।

उपन्यास में ग्रामवासियों ने सत्ताधिकारियों का घोर विरोध किया । यहाँ लेखिका ने धर्मान्धता और सांप्रदायिकता को प्रश्रय देनेवाली अंग्रेज़ी व्यवस्था की पोल खोलने का प्रयास किया है । मानवीय प्रेम को बनाये रखने के लिए सामाजिक अन्याय और अत्याचार के खिलाफ लडना है । उपन्यास के अंत में लेखिका ने गुरुगोविन्द सिंह के वचन को प्रस्तुत कर जुल्म के खिलाफ और सब रास्ते कारगर न होने पर, तलवार उठाने को घोषित करती है । यह सिर्फ पंजाब के संदर्भ में ही नहीं, पूरे भारत के संदर्भ में भी है ।

सन् 1947 ई. के सांप्रदायिक विध्वंस की सबसे त्रासदी थी दूध की जगह खून का टपकना । यह खून पंजाब निवासियों को अपनी धरती से, वेदना के साथ, विदा लेने को मज़बूर कर रहा है । अभी भारत सांप्रदायिक तनाव से मुक्ति नहीं मिल पाई है । अगर देखा जाए, तो आज़ादी की जिस लडाई को हमारे पूर्वजों ने लडकर एक लंबे संघर्ष के बाद ब्रिटीश साम्राज्यवाद को परास्त कर जीत हासिल की, वह अंततः हारकर भी अपनी चाल में सफल रहा । सचमुच ज़िन्दगी का पर्याय है ज़िन्दगीनामा । सांप्रदायिक तनाव पर केन्द्रित अनेक उपन्यास हिन्दी में ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं में भी मिलते हैं । 'ज़िन्दगीनामा' अपना अलग पहचान रखी क्योंकि लेखिका ने आँखों देखा भोगा सांप्रदायिक तनाव को बडी तीष्णता से चित्रित किया है। ऐसी सांप्रदायिक कट्ठरता आज भी देख पाते हैं । यही उपन्यास की प्रासंगिकता पर ज़ोर देता है ।

2.3 कितने पाकिस्तान

2.3.1 भूमिका

राष्ट्रीय आंदोलन को युग की अपनी विशेषताएँ थीं । राष्ट्र की स्वतंत्रता के

लिए मर मिटने के लिए उस युग के नेता तैयार थे । उनका जीवन समर्पण और त्याग का समेटा देता है । उस पीढी के कुछ लोग स्वतंत्रता प्राप्ती के बाद भी ज़िन्दा रहे । स्वतंत्रता प्राप्ती के बाद विदेशी दुश्मन को अलविदा कहकर अपने परिवर्तित विरोधी अंदरुनी दुश्मन से लडने की है, और वह संघर्ष अभी ज़ारी है । आज इस लडाई धर्म के नाम पर हो, चाहे देश की एकता के नाम पर, साहित्यकार तो इस छद्म आवरण को तोडने की कोशिश करता है । कमलेश्वर का उपन्यास ऐसे माहौल का सवाल करते हैं । 'एक सडक सत्तावन गलियाँ', 'डाकबंगला', 'लौटे हुए मुसाफिर', 'तीसरा आदमी', 'काली आंधी', 'रेगिस्तान', 'कितने पाकिस्तान' आदि उनके उपन्यास हैं ।

बरसों जो कुछ देखा है उसे लिखे बिना नहीं रहा जाता, अतः लिखकर ही मुक्ति पानी होगी । 'कितने पाकिस्तान' इसी आदर्श को लेकर लिखा गया उपन्यास है । उपन्यास की प्रेरणा स्रोत को समझने के लिए कमलेश्वर की यह टिप्पणी महत्वपूर्ण है – "यह समय का वह दौर था जब आसमान से खून की बारिश हो रही थी ... दिशाएँ आर्त्तनाद कर रही थीं । लाशें चल-फिर रही थी और श्मशानों-कब्रिस्तानों पर मेले लगे हुए थे ... गलियाँ, गाँव और बस्तियाँ दहशत और नफरत के विषैले धुओं में साँस ले रही थीं ... चीलें, गिद्ध और चमगादड चीखते हुए उड रहे थे ... नदियाँ अपने तट तोड चुकी थीं .... मृत्यु का तूफान चल रहा था ।"[24]

'कितने पाकिस्तान' सिर्फ एक प्रतीक है । बरसों चले हुए बंटवारा को याद रखते लिखा हुआ यह उपन्यास लिखने में सही रुप से दस बरस लगे । पिछले शताब्दियों में जो विभाजन होते रहे है, ये लगभग हर देश में आकर अपनी जडें जमा रही है । आज पाकिस्तानों की संख्या ज़्यादा है । ऐसी भयावह स्थिति में उत्पन्न सांप्रदायिक विद्रूपता इस उपन्यास में देखने को मिलता है । 'कितने पाकिस्तान' के यथार्थ को समझने के लिए उनका यह कथन स्पष्ट है

– "ये जो पूरी दुनिया में टूटने की दुखद प्रक्रिया है, देश में जो भीतर-भीतर टूटता सा दिखता है, उसी को केन्द्रित कर लिख रहा हूँ यह उपन्यास ।"[25]

'कितने पाकिस्तान' आधुनिक इतिहास लेखन की एक कला का नमूना बन सकता है, जिसे अधिक और पेशेवर इतिहासकार अपना सकते हैं । संभवतः इस पुस्तक के अब तक दस संस्करण छप जाने और दस भाषाओं – उडिया, मराठी, उर्दू, गुजराती, पंजाबी, बंगला, अंग्रेज़ी, स्पेनिश, फ्रेंच और जर्मन में अनूदित भी हुए हैं ।

2.3.2 भावभूमि

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास की कथा मुगुल काल से लेकर सन् 1999 के कारगिल प्रकरण तक है । इतने लंबे समय और पूरे विश्व में फैली भौगोलिक सीमा को लेखक ने बडी नई, कुशल और पैनी कथा-युक्तियों से समेटा है । उपन्यास वर्तमान सांप्रदायिक प्रश्नों और समस्याओं पर भी जिरह करता है । यह जिरह इतना विस्तार पाती है कि पूरा विश्व इसके दायरे में आ जाता है ।

उपन्यास का केन्द्रीय पात्र अदीबे अलिया है जो साहित्यकार और संपादक भी है । पूरा उपन्यास उस अदीबे अलिया का सत्य की खोज है । इस प्रयास में सबसे पहले वह इतिहास में पहूँचता है । क्योंकि वर्तमान की जडें अतीत में पाया जाता है ।

अदीब की अपनी एक अदालत है । अदीब की अदालत में जिसका न्यायाधीश स्वयं अदीब के रुप में कमलेश्वर है । उसकी अदालत का अर्दली महमूद विश्व के किसी भी देश के जीवित या मूर्त व्यक्तियों को हाज़िर कर सकता है । अदीब की अदालत में वैदिक काल, महाभारत काल, आदिकाल, भक्तिकाल और आधुनिक काल तक के सभी प्रमुख व्यक्तियों को

खडा कर देते हैं । वे भी अपने पक्ष रखते दिखाई देते हैं । यह सभ्यता के जाने माने शोषकों, लुटारों, अत्याचारियें के विरुद्ध उठ खडी हुई अदालत है । इस अदालत में आर्यों के देवता इन्द्र, यवन सभ्यता के जीयस, लुटेरे मीर कासिम, आकामक बाबर, औरंगज़ेब, ईस्ट इंडिया कंपनी के तमाम गवर्नर जनरल, वायसराय और जिन्ना, नेहरु, पटेल, अटलबिहारी वाजपेयी और आडवाणी भी कटघरे में खडे हैं । दूसरी ओर वे सारे लोग जो सदियों से इनके झूठे दंगों और शोषणों के शिकार रहे आए हैं । विद्या, जेनिबा, सलमा और आँसुओं को इकट्ठा करने वाला अश्रुवैद्य और अंधा कबीर आदि अदालत में है। वे इतिहास के पीछे युग में सफर करते हैं । वे हमेशा भविष्य की ओर देखते हैं । भविष्य में क्या होगा यही आकांक्षा अदीब के चरित्र के द्वारा कमलेश्वर ने पेश किया है ।

वर्तमान युग की ज्वलंत समस्या को उपन्यास में उगेरा दिया है । बाबरी मस्जिद ध्वंस, अणुबम बनाने की ज़हरीली नीति, काश्मीर के नाम पर भारत-पाक संघर्ष आदि वर्तमान की ज्वलंत समस्याएँ हैं । यह मानवीयता बनाए रखने के लिए घातक है ।

अदीब केवल अमूर्त पात्र या न्यायाधीश नहीं है, बल्कि एक आम इंसान है । उपन्यास का आरंभ अदीब और विद्या की अधूरी प्रेम कथा से होता है । इसका अंत पोखरान चगारे के अणुबम परीक्षण से होता है । कथावस्तु विभाजन के कुछ पहले से शुरू होती है जिसका अंत सन् 1999 में भारत-पाक द्वारा आणविक परीक्षण से होता है । उपन्यास में मानव के अस्तित्व को रक्तपात से बचाने की आवाज़ है और इतिहास जनित सभी समस्याओं या गुत्थियों को खेलने के लिए गलत तथ्यों को कटघरे में खडा करती है ।

2.3.3 सांप्रदायिक तनाव

सांप्रदायिक कट्टरता आज की सबसे बडी समस्या है । धर्म के नाम पर दुनिया

के हर मुल्क में विभाजन हो गया है वहाँ निश्चय ही त्रासदियाँ देखने को मिलती है । कमलेश्वर ने भारत-पाक विभाजन को आधार बनाकर पूरे विश्व में धर्म के नाम पर होनेवाले लडाईयों और विभाजनों पर प्रकाश डालने की कोशिश की है । कमलेश्वर के अनुसार यह बंटवारा भूमि का बंटवारा न था बल्कि भाई-बहन, पति-पत्नी, माँ-बेटा, प्रेमी-प्रेमिका का बंटवारा था ।

"इन बंद कमरों से मेरी साँस घुटी जाती है
खिडकियाँ खोलता हूँ तो ज़हरीली हवा आती है।"[26]

इन्हीं पंक्तियों से उपन्यास का आरंभ होता है । इससे मालूम होता है कि वे तत्कालीन व्यवस्था से काफी नाराज़ हैं । इसलिए है कि उपन्यास में उन्होंने अपनी वेदना और व्यथा को नये ढंग से प्रस्तुत किया है ।

सांप्रदायिकता एक ऐसा विध्वंसात्मक तत्व है जो आदमी को उसकी आदमीयत से काटकर केवल घृणा का प्रारुप बना देता है । स्वतंत्र भारत में सांप्रदायिक विघटन और विभाजन की ताकत बन चुकी है । सांप्रदायिक कट्ठरता से उत्पन्न विभाजन की नज़र उपन्यास में सर्वत्र दिखाई पड़ता है – "पंजाब से लेकर आसाम तक की नदियों का पानी खून से लाल हो गया... और करोडों लाशें जश्न मनाते हुए पैशाची नृत्य करने लगी .... अधमरे और घायल लोग वहशत, दहशत, और हैवानियत के शिकार होकर चीखने लगे । लाशों और घायलों के सीनों पर चढकर उधर जिन्ना आज़ाद पाकिस्तान का और इधर नेहरू आज़ाद हिन्दुस्तान का झंडे फहराने लगे ..."[27] पाकिस्तान एक नफरत का नाम है । नफरत के उसूलों पर पाकिस्तान बना है । पाकिस्तान बनने का कारण अंग्रेज़ थे और दूसरे यहाँ के राजनेता थे जो धर्म के नाम पर दो देश बनाना चाहते थे ।

अंग्रेज़ों ने ही धर्म के आधार पर देश का बँटवारा किया था । भारत विभाजन

का मूल कारण अंग्रेज़ों का द्विराष्ट्र नीति एवं मुस्लिम लीग और जिन्ना के कठमुल्लापन थी । विभाजन के समय माऊंटबेटन ब्रिटीश वयसराय थे । माउंटबेटन और उनकी पत्नी की बातचीत से इसका करुणाजनक रुप उभरकर आता है –

"माऊंटबेटन : तुम विभाजन के सताये, बरबाद हुए मारे गए लोगों की हिमायत मत करो.... साम्राज्यों के इतिहास में यह मामूली घटनाएँ है ....

एडविना : ब्रिटीश साम्राज्य के पास आँसू नहीं है ....यह मुझे मालूम है .... लेकिन लुईस ! विभाजन की जो त्रासदी, अमानवीय त्रासदी तुमने पैदा की है, उसे देखकर एल्प्स और प्रेरेनीज़ की पहाड़ी चट्टानें भी रो पडती ..."[28]

हमारे राष्ट्रपिता गाँधीजी सत्य, अहिंसा और स्नेह आदि मानवीय गुणों पर बल देनेवाले थे । इसलिए धर्म के नाम पर होनेवाले बँटवारा रोकना चाहा । वे भारत को अखंड रखना चाहते थे । इसका जिक्र उपन्यास में है । नेहरु, पटेल जैसे नेताऐं भी विभाजन को लेकर उदास थे । लेकिन उन्हें मज़बूरन होकर विभाजन को स्वीकार करना पड़ा । विभाजन की खबर सुनते ही एक साँस भरी बापू ने कहा कि गलत फैसलों से हिंसा उपजती है और हिंसा से अपसंस्कृतियाँ और रक्तपात । सच है कि ब्रिटीश सरकार के द्विराष्ट्र नीति के फलस्वरुप भारत के कोने-कोने में सांप्रदायिक दंगे छिड गये । फूट डालो राज करो नीति ने भारत को टुकडों में बाँट दिया । उस समय भारत में हुए भयानक दंगों का विवरण वायसराय लार्ड माऊंटबेटन के कथनों से ही पता चलता है – "एडविना... सच तो यह है कि इतना नरसंहार देखकर मैं भी विचलित हूँ ... दूसरे विश्व युद्ध में बर्मा के फ्रंट पर भी इतना खून-खराबा नहीं हुआ था, जितना इस विभाजन में हुआ और होने जा रहा है .... ।"[29]

भारत के लिए विदेशियों का आक्रमण और शासन कोई नई बात नहीं थी । ईसा पूर्व तीसरी सदी के सिकन्दर के अभियान से लेकर शक, हूण, अफगान और तुर्को ने भारत पर आक्रमण और शासन किया था । सिर्फ अंग्रेज़ों ने धर्म के आधार पर देश और संस्कृति का बंटवारा किया था ।

पाकिस्तान विभाजनों का एक प्रतीक मात्र है चाहे वह मूर्त हो या अमूर्त । पाकिस्तानों को बनाने का उपक्रम अनादिकाल से अब तक चल रहा है । देशों में अलग-अलग 'पाकिस्तानों' की माँग हो रही हैं । अदीब का कथन है कि, "लेकिन अब तो सब मुल्कों में नफरत का एक पाकिस्तान बनाने की कोशिशें ज़ारी है .... क्या हुआ है तब के टूटे सोवियत यूनियन और अब के बने रशियन फेडरेशन में । क्या हो रहा है आज के अफगानिस्तान में ? हर व्यक्ति नफरत के सहारे अपने ही लोगों के खिलाफ एक दूसरा पाकिस्तान ईजाद करना चाहता है ।"[30] नफरत एक ऐसी चीज़ है जो कि सारे के सारे को हमवार करती है ।

15 आगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ, लेकिन विभाजन के रूप में बडी कीमत चुकानी पड़ी । तब से लेकर आज तक भारत में सांप्रदायिकता की आग बुझी नहीं है । पूरी दुनिया में मानवाधिकारों का हनन हो रहा है, हिंसा, हत्या, कष्ट, उत्पीडन, यातना, बेईमानी- भाव उमड रहे हैं । हिंसात्मक सांप्रदायिक दंगों का डरावन चित्र उपन्यास में है । भारत में रक्त के तालाबों में कमल आएँ जा रहे हैं । अंग्रेज़ों ने स्वार्थ हित में अधीनस्त देशों को धर्म के आधार पर बाँटकर अपना अधिकार स्थापित करना चाहा । केवल भारत के ऊपर ही नहीं, यूरोप के सारे देशों को भी धर्म के आधार पर बाँटने की कोशिश इन सत्ताधारियों द्वारा हुई है । धर्म के नाम पर होनेवाले हिंसा और नफरत का माहौल दुनिया के भिन्न-भिन्न मुल्कों में नज़र आता है । उपन्यासकार ने इसकी ओर प्रकाश डालने की कोशिश की है । यहूदियों और

फिलिस्तीनियों में अपने-अपने पाकिस्तानों की दीवारों को बनाने की कोशिश ज़ारी है । बोस्निया में सर्बों और क्रोट लोगों ने मुसलमानों पर बर्बर अत्याचार किए है । युगोस्लाविया के क्रोट, सर्ब और मुसलमान लोग एक साथ रहना नहीं चाहते थे । अतः युगोस्लाविया में तीन अलग-अलग पाकिस्तान बन गये हैं । मिस्र, टयुनिसिया, तुर्की, अलजीरिया, सोमालिया, लेबनान और इराक में मुसलमान' मुसलमान से भिडता है, जो कि धर्मांधता की लडाई है, धर्म की नहीं ।

सन् 1999 में भारत और पाकिस्तान के बीच हुए कारगिल युद्ध से संपादक अदीबे अपना सफर शुरु करता है । जब विभाजन हुआ तब से दोनों राष्ट्रों के बीच मतभेद और संदेह पैदा हुए । धर्म के आधार पर हुए विभाजन के पीछे पाकिस्तान की साम्राज्य लिप्सा थी । सन् 1965 में इस बात को लेकर भयंकर युद्ध हुआ उसकी अगली कडी है सन् 1999 में हुए कारगिल युद्ध । इसमें कई लोग शहीद हो गये, कई घायल, लोगों के जान-माल का नुकसान हुए । कारगिल युद्ध में मारे गये जवानों के प्रति अदीबे अपनी संवेदना प्रकट करता है । एक के जीवित रहने के लिए दूसरे की मौत यहाँ बन गया ज़रुरी है । सारे युद्ध यही बताते हैं कि मौत ही जय-पराजय को तय करती है । सारा माहौल बिगड गया । धरती से प्रलयकारी झंझावात उठने लगे, काली आँधियाँ चलने लगीं और सारा आकाश अंधेरे में डूबने लगा ।

अयोध्या की समस्या विभाजन के समय से ही शुरु हुई थी । अंग्रेज़ों का मानना था कि बाबर द्वारा अयोध्या में राममंदिर का विध्वंस करके बाबरी मस्जिद बनवाने की कोशिश हो रही है । उस समय इस बात को लेकर कई दंगा हुए । लेकिन आज भारत स्वतंत्र होकर छह दशक के बाद ये समस्या ज्यों का त्यों हमारे सामने खडी हैं ।

समय की सबसे बडी त्रासदी को उपन्यास में शब्द बद्ध करते हैं – "जो घटित हो रहा है पर घटित होता हुआ दिखाई नहीं देता, जो सुनाई पडता है पर सुना हुआ प्रतीत नहीं

होता, जो सोचा जा रहा है पर सोचा हुआ मालूम नहीं पडता, जो समझा जाता है पर समझ में नहीं आता.... यही हमारे समय की त्रासदी है ... क्योंकि हम सब मूल्यबोध के बावजूद मूल्य हीनता की चपेट में है ।”[31] लोग सच को न पहचानकर धर्म के नाम पर आपस में लडते मरते हैं । आज हम ऐसे समाज में जी रहे हैं, जहाँ धर्म को हथियार के रुप में राजनीति में इस्तेमाल किये जा रहे हैं । वे लोग भारत को अनेक टुकडों में बाँटकर कई पाकिस्तानों की स्थापना करना चाहते हैं ताकि उनकी सत्ता स्थापित हो सकें ।

उपन्यास में देश विभाजन की त्रासदी से दर्दनीय ज़िन्दगी जीनेवालों का चित्रण भी है । विभाजन के बाद भारत में सिक्ख्र पति और मुस्लीम पत्नी का एकसाथ रहना न संभव था । यही कारण से जेनिब को पाने के लिए बूटासिंह को मुसलमान बनना पडा । और उसका नाम भी बदला । पाकिस्तान जाने के लिए विसा न मिलने पर राजस्थान की सरहप से छिपकर वह पाकिस्तान पहूँच जाता है । इतना कष्ट सहने के बाद भी वह जेनिब को हासिल नहीं कर पाता है । पाकिस्तान में उसके साथ जो दुर्घटना हुई वह अत्यत क्रूर एवं अमानवीय थी – “जमील अहमद उर्फ बूटासिंह को, मुसलमान होते हुए मुकद्दमा हारने के बाद पाकिस्तान के कब्रिस्तान में जगह नहीं मिली । उसे उसकी कब्र से ख्रोद कर बेदख्रल कर दिया गया ।”[32] यह मुहब्बत, कुर्बानी, लगन, बिछुडन, आस्था, अपमान और अर्धविक्षिप्त आसक्ति की महाकथा है ।

भारत-पाकिस्तान के कारण सामान्य व्यक्ति के घर परिवार उजड जाता है । यह बंटवारे सबको अलग कर देता है । विद्या और अदीबे इसके भुगतभोगी है । दोनों एक दूसरे को चाहते थें किंतु देश विभाजन के कारण एक दूसरे से बिछुडना पड़ता है । परिस्थितियों के क्रूर हाथों में फँसकर वह पाकिस्तान में पहूँचती है । वहाँ मुसलमान बनकर शादी करके विद्या

को तीन बच्चों की माँ बनकर जीवन बिताना पडता है । यह विभाजन केवल हिन्दू-मुसलमान का मामला नहीं है, मूल मानवीय पीड़ा है ।

सलमा और अदीबे को भी विभाजन की त्रासदी को भोगना पडता है । सलमा अदीबे की प्रेमिका है । वह एक मुसलमान स्त्री है । फिर भी विभाजन के बाद माँ-बाप के साथ हिन्दुस्तान में रहने का फैसला करती है । उनके प्रेम में देश, काल की सीमा आडे नहीं आती । दोनों प्रेम के लिए धर्म बदलने को भी सोचते हैं । सल्मा कहती है – "जीने के लिए मैं हिन्दू बन जाऊँ और आप मुसलमान हो जाओ ! क्योंकि मुसलमानों की जहनियत यह तो मंजूर कर सकती है कि कोई मुसलमान मर्द हिन्दु औरत को ब्याह ले, पर कोई हिन्दू मर्द मुसलमान औरत को बिस्तर तक ले जा सके, यह उन्हें मंजूर नहीं ..... तो क्यों न हम सिर्फ अपनी ज़िन्दगी जी सकने के लिए अपने मज़हबों को बदल लें । ताकि इन्हें चैन पड जाए । नहीं तो नईम जैसे लोग हमें जीने नहीं देंगे ।"[33]

आज के ज़माने में मानव मूल्य नष्ट होते हैं । मानव पशुओं के समान कई तरह के निरर्थ काम करते हैं । हिरोशिमा और नागसाकी में हुए परमाणु बम विस्फोट मानव जाति पर किया गया आक्रमण थे । अदीबे इस दुर्घटना पर प्रहार करते हैं – "माँओं की कोख में विकलांग हो गई अजन्मी संतानों को ... प्रचण्ड तापमान में पिघल कर बाष्प की तरह उड़ जानेवाले लाखों मनुष्यों को .... जल-जल कर खण्ड-खण्डों में टूट-टूट कर गिरनेवाले शरीरों को .... मुँह तक आकर न निकल सकनेवाली मृत्यु की चीत्कारों को .... घुटती साँसों में दम तोडती बेबस उसाँसों को.... हिचकी लेती हिचक-हिचक कर मरती ज़िन्दगी को...."[34] हिरोशिमा और नागसाकी में हुए अणुबम विस्फोट मानव विनाशकारी है । आज भी लोग इसका भुगतभोगी है ।

अमृता प्रीतम की यही राय है कि, "कमलेश्वर की यह रचना बीसवीं सदी का हासिल है, साथ ही यह अपने अन्दर की सच्चाई और गहराई होती है ।"[35] मानव और मानवीयता की रक्षा के लिए लोगों के मन से बंटवारे की ख्वाहिश का खत्म करना है । हिरोशिमा और नागसाकी में हुए अणुबम विस्फोटन और भारत में हुए पोखरान चगाई के अणुबम परीक्षण की विभीषिका इतिहास में हुई सबसे बडी अमानवीय घटनाएँ हैं । मानवता के इतिहास का यह एक घोर अंधकार काल था । दूसरों को मौत देने के लिए अमरीका, जर्मनी, इंग्लैंड और रूस के तमाम वैज्ञानिक मृत्यु के अन्वेषण में जुटे हुए थें ।

वर्तमान समय में विभाजनों की संख्या अर्थात् पाकिस्तानों की संख्या रोज़ाना बढ रही है । आज हर जगह पाकिस्तान बनते जा रहे हैं या बनने के लिए षड्यंत्र रचे जा रहे हैं । इन्हीं वर्तमान वास्तविकताओं को उपन्यास में जिक्र करने के साथ कमलेश्वर ने शांती के लिए भी तलाश करते हैं । उपन्यास के अंत में कमलेश्वर अंधा कबीर द्वारा पोखरान और चगाई में बोधिवृक्ष लगाना चाहते हैं । बोधिवृक्ष जो है नीलकण्ठ के समान सारा विष पी लेता है । जिसके द्वारा उनकी आशावादी दृष्टिकोण नज़र आते हैं । मानव मुक्ति की आवाज़ उठनेवाला अंधा कबीर गा उठता है – 'वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जान रे ।' यहाँ मानवता तथा सहिष्णुता का संदेश मिलता है । मध्यकाल में फैले धर्मांध पागलपन के खिलाफ आवाज़ उठानेवाला संत कबीर इक्कीसवीं शताब्दी की दहलीज पर पुनः अवतरित हुआ है । क्योंकि सांप्रदायिकता का पाशविक रूप और बर्बरता ज्यों का त्यों हमारे सामने उपस्थित हैं । उपन्यास के अंत में आज का कबीर ऐलान करता है – "पहला बोधिवृक्ष मैं पोखरन में लगाऊँगा, फिर सरहद् पार करके दूसरे वृक्ष मैं चगाई की पहाडियों में लगाऊँगा ..."[36] क्योंकि बोधिवृक्ष की जडें नीलकंठ के समान सांप्रदायिकता का जहज पी लेंगी । उनका एकमात्र उद्देश्य दोनों देशों

में ज़हर की तरह फैले सांप्रदायिक कट्टरता और घृणा के वातावरण को प्रेम-करुणा और अहिंसा के आदर्श राज्य में बदल डालना है ।

'कितने पाकिस्तान' के बारे में राजेन्द्र यादव ने लिखा है कि – "इसमें भूगोल और इतिहास, देश और काल की सीमाओं को तोडने की कोशिश की है । वे काल के विस्तार से बहुत दूर तक पीछे गये हैं और बहुत दूर तक सभ्यता और संस्कृति का विमर्श है । घृणा, नफरत और विभाजन की मानसिकता का परीक्षण करता हुआ एक उपन्यास जिसमें पाकिस्तान नाम मात्र एक रूपक है ।"[37] स्वतंत्र भारत में सांप्रदायिक विघटन और विभाजन की ताकत बन चुकी है । 'कितने पाकिस्तान' सिर्फ एक प्रतीक है । वर्तमान इतिहास में हिन्दु-मुस्लीम संघर्ष, पाकिस्तान के रूप में देश का विभाजन आदि घटनाओं को विस्तार से लिया है । इसके माध्यम से देश के भविष्य को देखने की कोशिश की है ।

2.3.4 मूल्यांकन

भारत की आज़ादी की सबसे बडी विपत्ती देश के विभाजन है । विभाजन, धर्म के विचित्र आधार पर हुआ । लाखों लोगों की जानें गई और वे अपने घरों से उखड गए । 15 अगस्त सन् 1947 की रात में भारत हिंसा की चपेट में आ गए । महीनों तक चलती रही हिंसा की काली छाया में लोग भारत से पाकिस्तान और पाकिस्तान से भारत चले गए । स्वतंत्रता के समय हुए यह विभाजन आज भी मौजूद है । स्वतंत्रता के कई सालों बाद भी और भी कितने पाकिस्तान को देखना पड़ेगा । इसका जिक्र उपन्यास में सर्वत्र है । उपन्यास में कोई नायक या महानायक सामने नहीं था । इसलिए कमलेश्वर ने समय को ही नायक-महानायक और खलनायक बना ।

'कितने पाकिस्तान' में लेखक यानि अदीब की कचहरी में बैठाकर दुनिया भर

की सभी सभ्यताओं में होनेवाले संघर्ष की समस्याओं को उठाते हैं । अंग्रेज़ों की कूटनीति की वजह से पाँच हज़ार पुराना भारत देश अपने इतिहास में पहली बार विभाजन का शिकार हुआ। पूरा भारत सांप्रदायिक दंगे की आग में जलने लगा । धर्म के नाम पर अंग्रेज़ों ने ही इसकी नींव डाली । लेकिन यह सांप्रदायिक दंगे के विविध रूप वर्तमान युग में भी नज़र आया । विभाजन धर्म के आधार पर हुआ । इसके पीछे पाकिस्तान की साम्राज्य लिप्सा भी थी । सन् 1965 से लेकर कई बार भारत-पाक युद्ध हुआ । उसकी अगली कडी है सन् 1999 में हुए कारगिल युद्ध।

हिन्दुस्तान की कौमी तकदीर एक है – 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूँगा।' आज़ादी का लालकिला मोहब्बत की बुनियाद पर खडा होगा, नफरत की बुनियाद पर नहीं । लेकिन स्वतंत्रता के बाद हम जो देखा वे भयानक था । नफरत की आग सब ओर देखने को मिलती थी । बंबई मस्जिद विध्वंस, कारगिल युद्ध, पोखरान और चगाई में हुई अणुबम विस्फोट आदि इसका ज्वलंत प्रमाण है । यह हमारे राष्ट्र की नियती है कि स्वतंत्रता प्राप्ती से बीसवीं का दसवाँ दशक बाद भी सांप्रदायिक समस्याओं का विकास हो रही है । उपन्यास में इसका जिक्र मिलता है ।

सन् 1947 में हुई भारत विभाजन कई लोगों को हानदारी पहुँचाया । सबों को अपने घर, परिवार छोडना पडा था । कई लोगों ने हिन्दुस्तान से पाकिस्तान की ओर, कई पाकिस्तान से हिन्दुस्तान की ओर पालायन किए । बूटासिंह और जेनिब की कहानी कितनी हृदयभंग है । विभाजन के साथ मनुष्य की आत्मा को विभाजित हो जाने की दारुण कहानी । सिर्फ वे ही नहीं सलमा, अदीबे, विद्या आदि कितने लोग इसके शिकार बन गये थे ? वे बेसहारा लोग खुद अपनी जीवन खो बैठे थे । भारत-पाक विभाजनों को विभिन्न किस्म के विभाजनों से जोडकर देखने का प्रयास किया । क्योंकि आज दुनिया भर में अलग-अलग पाकिस्तानों की माँग बढती जा रही थी । इसका जिक्र उपन्यास में है । यह वर्तमान भारतीय समाज की नियति

है ।

उपन्यास में एक ओर भाग में यह बताते हैं कि, "गलत बंटवारे हुए हैं, उन्हें खत्म करना ज़रूरी है, नहीं तो दुनिया में कत्ले आम और खून खराब बन्द नहीं होगा ।"[38] यह सच है कि गलत फैसले से खून खराब होगा । विभाजन के बाद हुए सारी समस्याएँ हल करने के लिए सोचना ज़रूरी है । आगे के युग में इस विष को खत्म करना चाहिए नहीं तो पूरी दुनिया टूट जायेगे ।

आज के युग में विभाजन की पाकिस्तान बनने की नीति हर जगह अपनायी । उपन्यास में कबीर नाम का एक भीखमंगे का चित्रण है । उसके माध्यम से मानव कल्याण का आह्वान करता है । यहाँ कमलेश्वर पूछना चाहते थे कि अगर इसी तरह विश्व में संघर्ष चल रहे तो विश्व को कितने पाकिस्तान को देखना पड़ेगा ? इससे विश्व को कैसे बचायेंगे ? उपन्यासकार की आकांक्षा यहाँ व्यक्त है ।

दुनिया के हर हिस्से में अपने-अपने पाकिस्तान बनने की चाले चली, कभी ये चाले सफल हुई तो कभी असफल । स्वातंत्र्योत्तर भारत की इस नियति को समझना आवश्यक है । स्वतंत्रता के पहले ज़माने में हुए विभाजन आज भी मौजूद था और आगामी समय में भी विभाजन होगा । इस उपन्यास के माध्यम से वर्तमान युग को चेतावनी भी देती है कि बँटवारे की पाकिस्तान बनाने की ख्वाहिश खत्म होनी चाहिए । मानव और मानवता की रक्षा के लिए यही विचार अनिवार्य है । यह उपन्यास समकालीन इतिहास की दस्तावेज़ है ।

2.4 भूले बिसरे चित्र

2.4.1 भूमिका

भारत जब अंग्रेज़ों की गुलामी सह रही थी उस समय कई उपन्यासकार रचनारत

थे । उस पंक्ति में आनेवाले एक उपन्यासकार है भगवतीचरण वर्मा । उस समय भारत में राष्ट्रीय चेतना का प्रसार समग्र गति से हो रहा था । इस प्रवाह से उनका अटूट संबंध था । स्वतंत्रता आन्दोलन में उन्होंने सक्रिय भाग लिया । साथ ही अपनी रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना का स्वर मुखरित हो उठा । उनका प्रसिद्ध उपन्यास है – 'पतन', 'चित्रलेखा', 'तीन वर्ष', 'टेढे -मेढे रास्ते', 'अपने खिलौने', 'आखिरी दाव', 'भूले बिसरे चित्र', 'रेखा', 'थके पाव', 'सामर्थ्य और सीमा', 'प्रश्न और मरीचिका', 'वह फिर नहीं आये', 'सबहि नचावत राम गोसाई', 'सीधी सच्ची बातें' आदि ।

'भूले बिसरे चित्र' भगवतीचरण वर्मा का मध्यवर्ती उपन्यास है । उपन्यास सन् 1885 से लेकर सन् 1930 तक के राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन के एक काल खण्ड की प्रस्तुति है । एक परिवार की चार पीढियों की उत्थान-पतन के माध्यम से इसका जिक्र उपन्यास में मिलता है ।

2.4.2 भावभूमि

उपन्यास में पाँच खंड है । एक परिवार की चार पीढियों का उत्थान-पतन का चित्रण है । कथा की पहली पीढ़ी मुंशी शिवलाल से प्रारंभ होती है । वे विधुर थे । लेकिन नौकर की तीसरी पत्नी छिनकी से अवैध्य संबंध जोड लेते हैं । शिवलाल अर्जीनवीस है । उनका इकलौता पुत्र ज्वाला प्रसाद अंग्रेज़ी पढे होने के कारण अंग्रेज़ कलक्टर की कृपा से नायब ताहसीलदार हो जाता है । वह अपनी पत्नी के साथ घाटमपुर चला जाता है । इससे संयुक्त परिवार का विघटन होना स्वाभाविक है ।

ज्वालाप्रसाद का पुत्र गंगाप्रसाद अंग्रेज़ी की कृपा से कलक्टर बन जाता है ।

गंगाप्रसाद का पुत्र नवल किशोर चौथी पीढ़ी का नवयुवक है । वह पैतृक नौकरशाही को तोड़कर राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय भाग लेकर जेल जाना पसंद करता है । इस संयुक्त परिवार के कथा के साथ प्रभुदयाल और बरजोरसिंह के संघर्ष को लेखक ने सामंतवाद और पूँजीवाद के संघर्ष के रूप में चित्रित किया है । नवल और उसकी प्रेयसी विद्या स्वतंत्रता-सेनानियों के साथ नमक बनाओ आन्दोलन में भाग लेने के लिए चले जाने के वर्णन के साथ उपन्यास समाप्त होता है ।

2.4.3 राजनीतिक संघर्ष

अंग्रेज़ शासन के विरुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन का विकास उपन्यास में चित्रित है । लगभग अर्द्धशती तक की परिधि में फैले हुए उत्तरी भारत के जीवन की राजनैतिक परिदृश्य चित्रित करने का प्रयत्न है ।

उपन्यास में पहली पीढ़ी का शिवलाल अंग्रेज़ों के साथ अड़िग संबंध रखते हैं । वे अंग्रेज़ शासन का समर्थन करते हैं । उस समय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन का आरंभिक काल था । मुंशी शिवलाल कचहरी के बाहर बैठकर अर्जीनवीसी करते हैं । चालाकी, मक्कारी और अर्थलोलुपता सब उनमें हैं । सामंती समाज की विलासिता और संयुक्त परिवार की चेतना उस काल में अधिक थे । शिवलाल की पीढी में संयुक्त परिवार को अधिक महत्व देते हैं । उस संयुक्त परिवार पर उनके छोटे भाई राधेलाल की पत्नी का शासन था । देश की राजनीतिक संघर्ष से ज़्यादा पूंजीपतियों के साथ उठना बैठना की तरीका शिवलाल के पीढी में देखते थे । शिवलाल के अंग्रेज़ी पढ़ा लडका अंग्रेज़ कलक्टर की कृपा से नायब ताहसीलदार बन जाते हैं । यह मध्यवर्ग के उत्थान की पहली प्रक्रिया है । इसका तात्कालिक प्रभाव शिवलाल के संयुक्त कुटुंब पर पडता है। वे दूसरी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं । ज्वालाप्रसाद पूँजीवाद का समर्थक है ।

ज्वालाप्रसाद पूंजीवाद का समर्थन करते हुए अपने पिता से कहता है कि यह नया ज़माना है । कोई खुद बढईगिरी थोडी ही करनी है । गंगाप्रसाद लकडी के काम का कारखाना खोलेगा । मशीन की मदद से काम होगा । नये फैशन का सामान बनेगा । नयी दुनिया का नया रुप होगा। नयी दुनिया के पक्षपाती है ज्वालाप्रसाद । दूसरी पीढी तक आते संयुक्त परिवार का विघटन भी देखते हैं । वह संयुक्त परिवार पर विश्वास नहीं रखता है । संयुक्त परिवार का एक सदस्य आर्थिक दृष्टि से प्रगति प्राप्त करता है, इस स्थिति में पूरा परिवार उनपर निर्भर रहता है । राधेलाल का परिवार ज्वालाप्रसाद की संपत्ति, पद, प्रतिष्ठा सभी का दुरुपयोग करता है । इस पर ज्वालाप्रसाद और पत्नी यमुना उनसे दूर रहने को कहा । छिनकी शिवलाल के परिवार के अभिन्न अंग है । वह भी चाहती है कि उनकी संपत्ती किसी भी स्थिति में दूसरों को न मिले । और वह यमुना को चेतावनी भी देती है । ज्वालाप्रसाद के साथ और यमुना के घाटमपुर जाता इस संयुक्त परिवार प्रथा की पहली दरार है । बढती हुई कलह शिवलाल के मृत्यु का कारण बन जाता है । वे ईमानदार रहने के इच्छुक होने के बावजूद भी अपवित्र मार्गों से पैसा कमाने लगते हैं । उन दोनों के मन में अंग्रेज़ों के विरुद्ध आवाज़ उठाने की शक्ति भी नहीं ।

तीसरी पीढ़ी का प्रतिनिधि है ज्वालाप्रसाद का बेटा गंगाप्रसाद । वे भी अंग्रेज़ों की सहायता से कलक्टर बन जाते हैं । उस समय देश में स्वतंत्रता आन्दोलन का संघर्ष जारी रखते हैं । युगीन परिस्थितियों की माँग के अनुरुप गंगाप्रसाद भी स्वतंत्रता संग्राम का विरोधी और विदेशी दमननीति का सफल प्रयोक्ता रहा था ।

उपन्यास के चतुर्थ खण्ड में ज्ञानप्रकाश के आगमन से भारतीय राजनीतिक चेतना का प्रादुर्भाव देखते हैं । कांग्रेस ने इसका नेतृत्व किया । ज्ञानप्रकाश कलकत्ता कांग्रेस गठन में सक्रिय थे । वे गंगाप्रसाद को भी अपने साथ लाने का परिश्रम करते हैं । गंगाप्रसाद

अधिकार के नशे में मस्त हैं । विदेशों में अपमानजनक स्थिति से अपरिचित हैं । गंगाप्रसाद चाहते हैं कि ज़्ञानप्रकाश कांग्रेज़ छोड दें, इस पर ज़्ञानप्रकाश की प्रतिक्रिया है – "हम लोग गुलाम हैं, हम लोग असभ्य हैं, हम लोग अछूत हैं । तुमने यह सब अनुभव नहीं किया, क्योंकि तुम्हें हिन्दुस्तान से बाहर निकलकर यह सब अनुभव करने का मौका ही नहीं मिला ।"[39] ज़्ञानप्रकाश विदेश से शिक्षाप्राप्त देश में आये थे । इसलिए उनको अंग्रेज़ नीति का ज़्ञान थे ।

स्वतंत्रता आन्दोलन के दौर में देश के कोने-कोने में जागरण की आवाज़ उठी । जोशीले भाषण हुए । कलक्टर गंगाप्रसाद का मन अंग्रेज़ों के प्रति घृणा से भर जाता है और वे सरकारी नौकरी से इस्तीफा देना चाहते हैं पर ऐसा संभव न हो पाया । एक और अवसर पर गंगाप्रसाद कहते हैं कि, "हमारे देश में चेतना का अभाव है। यदि हम लोगों में चेतना होती तो यह इतना बडा देश हज़ार वर्ष तक गुलाम न रहा होता । और जहाँ तक भावना का प्रश्न है, भावना तो हर जगह है । लेकिन व्यक्तिगत भावना केवल चेतना के सहारे सामूहिक भावना बन सकती है ।"[40] यहाँ गंगाप्रसाद के द्धारा वर्माजी ने अपना राष्ट्रीय कर्तव्य को समझकर प्रकट करते हैं । जोशीले भाषण से गंगाप्रसाद के मन में अंग्रेज़ों से घृणा उभरी । फिर भी वे अपनी नौकरी छोडने की कोशिश न की । उनमें पिछली पीढी की अपेक्षा अहंकार, आत्मलीनता और अतृप्ती अधिक हैं । वे वासना एवं मदिरा के प्रवाह में बह उठते हैं । अधिकारी वर्ग में, अंग्रेज़ों की अपेक्षा स्वयं को हीन पाकर वे मन ही मन घुटते हैं । अत्यधिक मदिरा-पान के कारण उसकी क्षय रोग से मृत्यु होती है ।

उपन्यास के चौथे प्रकरण में गाँधीजी के अदर्शों के प्रति ज़्ञानप्रकाश का लगाव प्रकट होता है । भारत की सांप्रदायिक कट्टरता की समस्या भारतीय राजनीति की प्रमुख्र समस्या रही । अंग्रेज़ों की कूटनीति के कारण भारत में सांप्रदायिक समस्या उठी । गाँधीजी

ने सांप्रदायिक सद्‌भाव का स्वर ऊँचा उठाया । इसके फलस्वरुप हिन्दु और मुसलमान एक साथ लाकर भारतीय राजनीति में आ गये । दोनों एक होकर अंग्रेज़ों से लड़ते थे ।

गंगाप्रसाद का पुत्र नवल किशोर चौथी पीढी का नवयुवक है । आइ.सी.एस की पढाई के लिए विलायत जाने का सुअवसर उसके सामने है । और एक धनी परिवार से विवाह संबंध जुडाने का अवसर भी । किंतु देश-प्रेम से उत्तेजित होकर अंग्रेज़ी सभ्यता पर तीखा प्रहार किया । स्वतंत्रता संग्राम में कूद पडता है । उसका सामर्थ्य और आत्मविश्वास भविष्य के लिए अनिवार्य है । वह वकालत करने से इनकार कर देता है । क्योंकि झूठ, खुशामद और मक्कारी उसके बस की बातें नहीं है । वह कहता है कि निराश होकर जेल नहीं जा रहा हूँ । जो रास्ता उसने अपना ली उसी की यही परिणति है – जीवन भर संघर्ष । हिन्दुस्तान की इकतीस करोड की आबादी ब्रिटीश साम्राज्य की सबसे बडी शक्ति है । राष्ट्रीय आन्दोलन से ये शक्ति को धीरे -धीरे तोड़ने का प्रयास हो रहा है । मद्रास में खिलाफत परिषद हुई थी, उसमें देश के मुसलमानों ने असहयोग आन्दोलन के सिद्धांतों को स्वीकार कर लिया है । सब कहीं जुलूस निकलते रहे। बडी तेज़ी के साथ – एक अजीब ढंग से आन्दोलन चल रहा था । हिन्दु और मुसलमान एक साथ होने से अंग्रेज़ों के लिए हिन्दुस्तान का शासन चलाना और हिन्दुस्तान में रहना भी असंभव बन गये ।

आन्दोलन का नारा सब ओर बुलंत हुआ । हडताल हो रही थी, चरखा चलाया जा रहा था, खादी और स्वदेशी का प्रचार हो रहा था, विदेशी माल का बहिष्कार किया जा रहा था । जुलूस निकलते थे और सरकार की निन्दा की जाती थी । अंग्रेज़ों को गालियाँ दी जाती थी । लेकिन अंग्रेज़ों ने इसे दबाने की कोशिश की । अंग्रेज़ी अफसर ने गंगाप्रसाद को आन्दोलन दबाने की ज़िम्मेदारी दे दी थी । इसके फलस्वरुप जेल भर गई थी, लोगों पर लम्बे-

लम्बे जुरमाने किए गए थें । लेकिन सरकार जितना इस आन्दोलन को दबाने का प्रयत्न कर रही है, उतना ही यह आन्दोलन बढ़ता जा रहा है ।

आन्दोलन में महिलाएँ भी शामिल है । नवल की बहिन विद्या स्वतंत्रता आन्दोलन में कूद पड़ी । विद्या जैसी पढी-लिखी सुसंस्कृत युवती ससुराल से अपना अपमान सह नहीं सकती । ससुरालवालों से घृणा करने लगी । प्रेम के अभाव में गृहस्थी निभाना असंभव समझती है । पति के साथ हमेशा के लिए संबंध्द तोड देती है । आखिर वह नौकरी करने लगी । स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी बनी । विद्या के नेतृत्व में महिलाओं का एक दल भी सामने आयी । स्त्रियों का आवाज़ गूंज उठी – हम लोग स्वराज्य चाहती है, और ब्रिटीश हुकूमत को जड से उखाड देना हमारा धर्म है । विद्या नई पीढी के नारी समाज का प्रतिनिधित्व करती है ।

ब्रिटीश सरकार जुल्म पर जुल्म करती जाती थी । जालियाँवाला बाग का हत्याकाण्ड, चौरी-चौरा हत्याकाण्ड और बम्बई की निहत्थी जनता की भीड पर गोलियाँ चलाना ऐसे कई जुल्म अंग्रेज़ों ने किया । सभी ओर नारे मुखर रहे थे – "हम लोगों को जेल भेजिए, हम सरकार की दया नहीं चाहती ।"[41] इस आन्दोलन के दौरान जेल में कांग्रेस कार्यकर्ता की मृत्यु हो गई थी । लोगों का मानना है कि जेल अधिकारियों के अत्याचार के कारण मृत्यु हुई । जेल में ऐसी कई घटनाएँ हो रही थीं । अधिकारी लोगों ने ब्रिटीश हुकूमत से ऐसा कार्य किया । फिर भी आन्दोलन बन्द नहीं हुआ ।

उपन्यास में बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से लेकर नमक सत्याग्रह आन्दोलन तक के परतंत्र भारत का विस्तार है जिसमें अंग्रेज़ी शिक्षा के आगमन से विकसित होनेवाले नवीन शिक्षित मध्यवर्ग के राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन का सच्चा चित्र वर्मा जी ने बख़ूबी से किया ।

गाँधीजी और उनके अनुयायियों के नेतृत्व में नये-नये रूपों में आन्दोलन आगे बढा । कानपूर में विदेशी वस्त्रों की होली जलायी जाती है । उत्तेजनापूर्ण भाषण दिये जाते हैं । गाँधीजी का यह आदर्श – प्रेम, अहिंसा और त्याग – घृणा मत करो, लेकिन भयानक विरोध करो, हिंसा मत करो, लेकिन जीवन-मरणवाला युद्ध करो, सब कुछ छोड दो, लेकिन अपने अधिकारों को ज़बरदस्ती ले लो । सभी आन्दोलनकारी ऐसी आदर्श से आन्दोलन में भाग लेते हैं । देश के कोने-कोने में गिरफ्तारियों के समाचार मिल रहे हैं । डॉ. देवीशंकर अवस्थी उपन्यास के बारे में कहते हैं कि – "पचास वर्ष के समय-फलक पर फैले हुए भारतीय समाज का चित्र राजनीतिक परिदृश्य में देने की चेष्टा की गई है ।"[42]

इलाहाबाद में सर्वदलीय सम्मेलन होता है । जिससे नवयुवक समुदाय अधिक क्षुब्ध हो उठता है । युवावर्ग ने अंग्रेज़ों से घोर विरोध किया । युवा वर्ग का नेतृत्व जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस के हाथ में था । इस आन्दोलन में नवल किशोर भागीदारी बन गया। देशव्यापी नमक सत्याग्रह आन्दोलन होता है । उनमें एक नई दृढ़ता और अडिग संकल्प है । जुलूस के साथ वह नमक कानून भंग करने के लिए चल देता । नवयुवक की यही सोच है – "न जाने कितने नवयुवक नेता मारे-मारे घूम रहे हैं । उन्हें कोई कौडी के मोल भी नहीं पूछता । गाँधी ने पीठ पर हाथ रख्र दिया तो जवाहरलाल बन गया । देख्रना है कितने तीसमारख्राँ है ।"[43] उस आन्दोलन में देश के नवयुवकों की आवश्यकता होगी इसलिए जवाहरलाल नेहरू के हाथ में कांग्रेस का नेतृत्व सौंप रहे हैं । हज़ारों स्त्री-पुरुष सब कुछ छोडकर त्याग और बलिदान का जीवन अपनाने के लिए कटिबद्ध है । 'नमक बनाओ आन्दोलन' नवल और विद्या के नेतृत्व में होती हैं । देश के नवयुवक अपनी आज़ादी के लक्ष्य को सामने रख्रकर त्याग, बलिदान करने को प्रस्तुत थे और कर भी रहे थें ।

स्वतंत्रता आन्दोलन के कालखण्ड में सृजनशील होने के कारण आन्दोलन का सविस्तार वर्मा जी के उपन्यास में देख पाते हैं । ज्वालाप्रसाद को उपन्यास के आरंभिक भाग में नये युग का आदमी बताया गया था । पचास साल बाद यानि उपन्यास के अंत में नई दुनिया के सामने सब कहीं बदलाव महसूस हुआ है । ज़िन्दगी के उतार-चढ़ाव, सुख-दुख, जन्म-मृत्यु सभी अपनी आँखों से देखे हैं । उपन्यास के अंत में ज्वालाप्रसाद अपने ईमानदार सेवक और सखा भीखू से कहते हैं कि – "हाँ भीखू कुछ समझ में नहीं आ रहा हूँ आज पचास साल में क्या से क्या हो गया । सबकुछ बदल गया, एकदम बदल गया ।"[44] सन् 1880 से सन् 1930 तक के इस अवधि में ये दो बूढे ज़िन्दगी के अनेक उतार-चढाव देखे थे । जिनके पास अनुभवों का भंडार था । दूर हज़ारों, लाखों, करोडों आदमी एक नई दुनिया की रचना करने के लिए उमंग और उत्साह से चले जा रहे थें । उपन्यासकार ने बीती हुई अर्द्धशती के चित्रों को पुनः याद के सहारे अंकित किया है । इसके पृष्ठभूमि में भारत की राजनीतिक जीवन की हलचलों की गूंज सुनते हैं । स्वतंत्रता आन्दोलन के कालखण्ड में सृजनशील होने के कारण आन्दोलन का सविस्तार भगवतीचरण वर्मा जी के उपन्यास में देख पाते हैं ।

2.4.4 मूल्यांकन

साहित्यकार वर्माजी का समय उस काल में था कि गाँधीजी एक आदर्श पुरुष के रूप में आये थें । उनके आदर्शों को वर्मा जी अत्मसात करते हैं । साहित्य के क्षेत्र में या राजनीति के क्षेत्र में जो भी हो उनमें वह आदर्श देख पाते हैं । वर्मा जी ने स्वतंत्रता सेनानी आन्दोलन में भाग लिया था । वे विकृत प्राचीन परंपराओं को ध्वस्त करके नवीन समाज की रचना करना चाहते हैं । इसी उद्देश्य से 'भूले बिसरे चित्र' की सृष्टि की ।

एक परिवार के चार पीढियों के उत्थल-पुत्थल से उभरते और बिखरते हुए मूल्यों

की, मानवीय रिश्तों के द्वन्द्धों और बदलाव की कहानी उपन्यास में सविस्तार से है । उपन्यास में अंग्रेज़ शासनकाल का जिक्र है । शिवलाल और ज्वालाप्रसाद में पराधीनता का एहसास का अभाव है । संयुक्त परिवार पर शिवलाल अपनी जडें जमा ली और महत्व देते हैं । ज्वालाप्रसाद इसी परिवार को आत्मसात करते फिर भी उन्होंने अपने चाचा से दूर चलने को कहा । तीसरी पीढी के गंगाप्रसाद पराधीनता का असुविधा महसूस करते हैं । फिर भी अंग्रेज़ों से संघर्ष करने की हिम्मत नहीं । वे संयुक्त परिवार पर कोई महत्व नहीं देते हैं । स्वाधीनता के युद्ध में कूद पडने की मानसिकता नवल की पीढी में जन्म ले सकती थी । राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी रहने का हिम्मत उस युग के नई पीढी में देख पाते हैं । ज्ञानप्रकाश, नवल, विद्या जैसे पात्रों के माध्यम से स्वतंत्रता आन्दोलन में युवावर्ग के आत्मगौरव का चित्रण मिलते हैं । ये नवयुवक देश में उमंग और उल्लास लेने और एक नई दुनिया की रचना करने के लिए चले जा रहे हैं । नवल में हुए ये संघर्ष उसके पहले की पीढी में न देख पाते हैं । यहाँ उपन्यासकार की दृष्टि जीवन की बदलती परिस्थितियों के साथ बदलते जीवनमूल्यों का चित्रण करना है । उपन्यास में ज्वालाप्रसाद चार पीढियों के उतार-चढ़ाव देखते हैं । वे अनुभव करते हैं कि उसके युग की मान्यताएँ बदल गयी हैं और दुनिया तेज़ी से बदल रही है ।

हिन्दी उपन्यास में नियति वाद का आगमन वर्मा जी के उपन्यासों से शुरू होते हैं । वे घोर नियतिवादी हैं । उपन्यास के अधिकांश पात्रों में इसका जिक्र हमें मिलता है । कांग्रेज़ी नेता ज्ञानप्रकाश भी नियति के प्रभाव से आतंकित रहता है – “जो हो गया उसे रोक नहीं जा सकता था, जो होनेवाला है, उसे रोका नहीं जा सकेगा ।”[45] ज्वालाप्रसाद को वर्मा जी ने नायक के रुप में चित्रित किया है । जो परिस्थितियों का दासत्व स्वीकार न करते हुए भी

उन्हें सहज भाव से स्वीकार करता चलते हैं ।

उपन्यास में अंग्रेज़ों द्वारा फैलाया सांप्रदायिक समस्या देखती है। स्वतंत्रतापूर्व के यह समस्या गाँधीजी के आगमन से एक सीमा तक सुलझाते हैं । स्वतंत्रता संघर्ष के समय सभी धर्मों के लोग एक साथ होकर लडते थें । लेकिन यह समस्या स्वतंत्रता के इतने सालों बाद भी भारत में मौजूद है । आज यह राजनीति की एक बडी समस्या बन गयी । डॉ. शशिभूषण सिंह उपन्यास के बारे में यह बताते हैं कि – "आज कालांतर में हम जिस युग और परिस्थिति के 'भूल-बिसर' चुके है, उसके कुछ चित्र प्रस्तुत करना उपन्यासकार का उद्देश्य है ।"[46] आज की पीढी, पुरानी पीढियों की मान्यताएँ और धारणाएँ भूल चुकी है । स्वतंत्रतापूर्व भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की कठिनाइयाँ भी आज की पीढी भूल चुकी हैं । राष्ट्रीय आन्दोलन के समय हुए बलिदान, त्याग आज अधूरी बात है । स्वातंत्र्योत्तर भारत की यही नियति है । इस नियति को जानकर पुराने मूल्यों और आदर्शों को आत्मसात करना है । इससे राष्ट्र की उन्नति होगी । उपन्यास का शीर्षक भी इसी दृष्टि से सार्थक बन जाता है ।

2.5 रागदरबारी

2.5.1 भूमिका

मनुष्य जिस समाज, परिवेश और वातावरण में रहता है, उनका प्रभाव निश्चित रुप से उस पर पडता है । श्रीलाल शुक्ल ने स्वातंत्र्योत्तर भारत को खुली आँखों से देखा, सुना और अनुभव कर दिया । उनका साहित्य मानव जीवन की उन वास्तविक और यथार्थ स्थितियों का मौलिक चित्रण है, जो जीवन में प्रतिदिन घटित होता है । साहित्यकार के रुप में श्रीलाल शुक्ल का आर्विभाव जिस काल में हुआ था वह राजनीतिक दृष्टियों में मूल्य संक्रमण की स्थिति

से गुज़र रहा था । उनका कथन हैं कि – "यह भी न भूलना चाहिए कि भारतीय समाज की जिस दुर्दशा का मैंने अभी जिक्र किया, आज बहुत हद तक उसका कारण राजनीतिक और उसके द्वारा रची गयी संस्थाओं से ही संभव है ऐसी स्थिति में जो साहित्य भारतीय जीवन के यथार्थ का संचयन करेगा, वह राजनीति की जटिलताओं से अछूता नहीं रह सकता ।"[47] वे एक आई.ए.एस अफसर थें । राज्य के प्रशासनिक कार्य करते थे । इसलिए है कि उनकी रचनाओं में स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीति का एक तीखा चित्रण भरपूर मिलता है । उनका उपन्यास है – 'सूनी घासी का सूरज', 'अज्ञातवास', 'रागदरबारी', 'सीमाएँ टूटती हैं', 'आदमी का जहर', 'मकान', 'पहला पडाव', 'बिस्रामपुर का संत', 'राग विराग' आदि ।

उपन्यासकार के रूप में उनकी रचनाओं में तीसरा उपन्यास है 'रागदरबारी' । श्रीलाल शुक्ल ने 'रागदरबारी' में 'शिवपालगंज' गाँव का चित्रण बडी खूबी से किया । उनके पहले की रचनाकारों ने जैसे प्रेमचंद 'गोदान' में 'बेलारी' गाँव का चित्रण और फणीश्वरनाथ रेणु 'मेरीगंज' गाँव का चित्रण किया । लेकिन उन सबों से शिवपालगंज गाँव एक अलग रहता है । गाँव के विकास के बदले यहाँ भ्रष्टाचार व्याप्त है । आज़ादी के बाद का भारत सिर्फ व्यक्ति केन्द्रित होता है, 'रागदरबारी' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है । इस उपन्यास को सन् 1970 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला ।

'रागदरबारी' के संबंध में लेखक की घोषणा है कि – "इसका संबंध एक बडे नगर से कुछ दूर बसे हुए गाँव की ज़िन्दगी से है, जो इतने वर्षों की प्रगति और विकास के नारों के बावजूद निहित स्वार्थों और अनेक अवांछनीय तत्वों के सामने छिसट रही है । यह उसी ज़िन्दगी का दस्तावेज है ।"[48] उपन्यास गाँवप्रधान है । लेकिन इसे आंचलिक उपन्यास की कोठी में नहीं रखा। क्योंकि 'रागदरबारी' गाँव की ज़िन्दगी का उतना बडा दस्तावेज़ नहीं है

जितना निहित स्वार्थों एवं अवांछनीय तत्वों का हैं जो शहर और गाँव का फर्क मिटाते हुए हर कहीं मौजूद है ।

2.5.2 भावभूमि

'रागदरबारी' उपन्यास की कथा का मुख्य क्षेत्र शिवपालगंज है, जो उत्तरप्रदेश का एक काल्पनिक गाँव है । शिवपालगंज के विविध क्षेत्रों की कुछ झांकियाँ यहाँ प्रस्तुत हुई है । छंगामल विद्यालय इंटरमीडिएट कॉलेज, पुलीस थाना, को-ओपरेटीव सोसाइटी, गाँव पंचायत तथा गाँव की स्थितियों का चित्रण से श्रीलाल शुक्ल कथा का ताना-बाना बुनते हैं । साथ ही भारतीय गाँव का एक विशाल महासागर का चित्रांकन करते हैं ।

उपन्यास का प्रारंभ रंगनाथ के अपने मामा वैद्य जी के गाँव शिवपालगंज को निकलने से शुरु होता है । वैद्य जी इस उपन्यास का केन्द्रीय पात्र है, जो को-ओपरेटीव यूनियन के मैनेजिंग डायरेक्टर से लेकर छंगामल विद्यालय इंटरमीडियट कॉलेज के मैनेजर तक सभी कुछ हैं । वे गाँव के सभी संस्थाओं के चेयरमैन हैं । उन्हें केन्द्र में रखकर कथा आगे बढती है। रुप्पन बाबू, बद्री पहलवान, छोटे पहलवान, शनीचर, जोगनाथ आदि उपन्यास के अन्य प्रमुख पात्र है ।

2.5.3 राजनीतिक गतिविधियाँ

स्वातंत्र्योत्तर भारत के राजनीतिक माहौल का चित्रण करने में श्रीलाल शुक्ल ने शिवपालगंज गाँव को लिया । वैद्यजी एक कुशल राजनीतिज्ञ हैं । असल में शिवपालगंज वैद्य जी की बैठक में हैं ।

उपन्यास के केन्द्र में छंगामल इण्टरमीडिएट कॉलेज है । कॉलेज के मैनेजर है

वैद्यजी । कॉलेज में गुटबन्दी, भ्रष्टाचार, रिश्वत, सरकारी पैसों का दुरुपयोग आदि चल रहे हैं । छात्रों में पढ़ने के लिए रुचि नहीं है । कॉलेज के प्रिंसिपल वैद्यजी के सामने दुम हिलानेवाले कुत्ते हैं । अपना वर्चस्व बनाये रखने के लिए बाहर के गुण्डों का भी उपयोग किया जाता है । कॉलेज में वही अध्यापक रह सकते हैं जो प्रिंसिपल और वैद्यजी के आदेशों का आँख मूदकर पालन करते हैं । पाँच साल से कॉलेज के मैनेजर का चुनाव नहीं हुआ है । कुछ लोगों के प्रयत्न से कॉलेज की मैनेजरी कमेटी और मैनेजर का चुनाव होता है तो वैद्य जी फिर निर्विरोध कॉलेज के मैनेजर चुन लिये जाते हैं । क्योंकि लोगों में उनका विरोध करने का साहस नहीं है । चुनाव में विरोधी गुट के लोगों को आने से रोक दिया जा सकता है । आये हुए लोगों को तमचे से भगाया जा सकता है । मैनेजर की चुनाव देखकर रंगनाथ चकित हो उठा । उसे ऐसा राजनीतिक परिवेश का ज्ञान नहीं है । रंगनाथ को ऐसा लगा कि, महाभारत की तरह जो कहीं नहीं है, वह शिवपालगंज में है । जो यहाँ नहीं है, वह कहीं नहीं है । खन्ना और मालवीय जैसे अध्यापक रंगनाथ की पक्षधरता और कानूनी लडाई लडने के बावजूद भी नौकरी से इस्तीफा देनी पड़ी ।

वैद्य जी का छोटा बेटा रुप्पन बाबू इस कॉलेज के छात्र नेता है । भारतीय राजनीति में वंशपरंपरा देख सकते हैं । आज देश के लगभग सभी राजनीतिक दलों में यह देखते हैं । नेताओं के स्वार्थ के कारण ही राजनीति में ऐसा परिवर्तन आया । उनके संबंध में लेखक की यह टिप्पणी है कि, “वे पैदायशी नेता थे क्योंकि उनके बाप भी नेता थे । उनके बाप का नाम वैद्यजी था ।”[49] पैदायशी नेता आज देश के हर क्षेत्र में देखे जा सकते हैं । कॉलेज के छात्र रुप्पन बाबू के नेतृत्व में गुट बनाकर राजनैतिक आन्दोलन का पाठ पढते हैं, और वैद्यजी के विरोधी गुट के लोगों को काबू में रखते हैं ।

जिस ट्रक पर बैठकर रंगनाथ शिवपालगंज आता है, वर्तमान शिक्षा पद्धति पर उसी ट्रक ड्राइवर की टिप्पणी है – "वर्तमान शिक्षा पद्धति रास्ते में पडी हुई कुतिया है, जिसे कोई भी लात मार सकता है ।"[50] वर्तमान शिक्षा संस्था का एकमात्र उद्देश्य धन कमाना है । वैद्य जी प्रिंसिपल के माध्यम से सरकारी पैसे को तथा प्राद्यापकों के वेतन को हडप लेते हैं । रिश्वत, गुटबंदी, भ्रष्टाचार, सरकारी पैसों का दुरुपयोग आदि प्रिंसिपल द्वारा चलाते हैं । पढाई ठीक से नहीं होती, इम्तहान में नक्ल करायी जाती है, सारा हिसाब-किताब गडबड हैं ।

मास्टर मोतीराम कक्षा में विज्ञान नहीं, आटाचक्की का कारोबार सिखाते हैं। इसपर छात्रों की शंका दूर करने में वह कहता है कि किताब में आपेक्षिक घनत्व का अध्याय ज़रूरी है । इम्पोर्टन्ट है, पढ लेना । खन्ना मास्टर के क्लास चलाते समय छात्रों सिनेमा की पत्रिकाएँ पढते हैं । वे पढाई पर ध्यान नहीं देते । मोतीराम जैसे अध्यापकों को हम सभी शैक्षिक संस्थाओं में देख पाते हैं ।

अध्यापकों की राजनीति के कारण कॉलेज का वातावरण और दूषित हो गया । वहाँ अध्यापक और प्रिंसिपल दो दलों में बाँटकर आपस में बहस करते हैं, न कि छात्रों को पढाने में । वैद्य जी उन छुट भैया नेताओं का प्रतिनिधि हैं, जो कॉलेज के लिए अपना मनपसंद प्रिंसिपल नियुक्त कर शिक्षकों और छात्रों का शोषण करते हैं तथा अपने निजी फायदे के लिए अनेक प्रकार की मनमानियाँ करते हैं । शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त राजनीतिक माहौल की यथार्थ चित्रण यहाँ मिलते हैं ।

वैद्यजी ऊपर के आदेश के कारण को-ओपरेटीव से हटे तो उनका बेटा बद्री पहलवान उनकी जगह बैठ गया ।

आधुनिक नेताओं में मौजूद स्वार्थप्रियता, भ्रष्टाचार, गुटबंदी, झूठे आश्वासन आदि वैद्य जी में देख पाते हैं । श्रीलाल शुक्ल इसपर व्यंग्यात्मक ढंग से कहते हैं – "हर बडे राजनीतिज्ञ की तरह अपनी राजनीतिक पार्टी में उन्होंने कोई पद नहीं लिया था क्योंकि वे वहाँ नये खून को प्रोत्साहित करना चाहते थे; पर को-ओपरेटिव और कॉलेज के मामलों में लोगों ने उन्हें मज़बूर कर दिया था और उन्होंने मज़बूर होना स्वीकार कर लिया था ।"[51] सत्तालोलुप नेताओं की तरह वे भी उम्र से बूढे होने के उपरांत सत्ता से चिपके हुए हैं ।

अवसरवादी राजनीति का मुकाबला वैद्यजी के माध्यम से व्यक्त करते हैं – "अंग्रेज़ों के ज़माने में वे अंग्रेज़ों के लिए श्रद्धा दिखाते थें । देसी हुकूमत के दिनों में वे देसी हाकिमों के लिए श्रद्धा दिखाने लगे ।"[52] ऐसी नेताओं के लिए पद धनार्जन का माध्यम है । कथनी और करनी में बहुत अंतर पाते हैं ।

को-ओपरेटीव सोसाइटी के डायरेक्टर वैद्य जी द्वारा को-ओपरेटीव यूनियन में गबन करवाया जाता है । गबन करने के बाद नेता अपने आपको निर्दोष साबित करने के लिए तरह तरह की चालें चलते हैं । ऐसी नेता अपने से निम्न अधिकारियों पर गबन की ज़िम्मेदारी डालकर बच सकते हैं । वैद्य जी के इशारे पर यूनियन का सूपरवाईसर रामस्वरुप ने यह कार्य किया था । यहाँ वैद्य जी अपने से निम्न अधिकारियों पर गबन की जिम्मेदारी डालकर बच सकते हैं । जब वैद्य जी को ग्रामप्रधान का अधिकार त्यागना पडता है तो वे मूर्ख शनीचर को प्रधान का पद भार सौंपते हैं । वैद्य जी जानते हैं कि वह नालायक है । ग्रामप्रधान शनीचर है तो निर्णय लेने का अधिकार वैद्य जी पर है । यहाँ श्रीलाल शुक्ल आजकल के जनतांत्रिक व्यवस्था को हास्यास्पद रूप को अनावृत करते हैं ।

राजनीति में व्यक्ति अपना पद त्यागना नहीं चाहते । लेकिन यह नेतागण जनता

के मत को जानने की कोशिश नहीं करते और जनता को अभिव्यक्ति का अवसर भी न देते हैं । आम आदमी की निराशा 'रागदरबारी' के पात्र गयादीन के माध्यम से व्यक्त किया है – "जो जहाँ है, अपनी जगह गोह की तरह चिपका बैठा है । टस-से-मस नहीं होता । उसे चाहे जितना कोंचो, चाहे जितना दुरदुराओ, वह अपनी जगह चिपका रहेगा और जितने नाते-रिश्तेदार हैं, सब उसकी दुम के सहारे सडासड चढते हुए ऊपर तक चले जाएँगे ।"[53] सत्ता आज के राजनीतिक नेताओं का लक्ष्य है । जनतंत्र में जनता निराश होकर अपना जीवन जी रहा है ।

विशिष्ट वर्ग के बोलबाला राजनीति में देख्र सकते हैं । विशिष्ट परिवार ही राजनीति में सत्तासीन होते हुए दिख्राई देते हैं । वैद्य जी और उनके पुत्र बद्री पहलवान और रुप्पन बाबू धोख्रेबाजी के बल पर सारे गाँव में अपना अधिकार दबा दिया । रंगनाथ इसपर अपना क्रोध व्यक्त करते हैं । रंगनाथ से रुप्पन बाबू का यह कथन – "देख्रो दादा, यह तो पॉलिटिक्स है । इसमें बडा-बडा कमीनापन चलता है । यह तो कुछ भी नहीं हुआ । पिताजी जिस रास्ते में हैं उसमें इससे भी आगे कुछ करना पडता है । दुश्मन को जैसे भी हो, चित्त करना चाहिए । यह न चित कर पाएँगे तो ख्रुद चित है । और फिर बैठे चूरन की पुडिया बाँधा करेंगे और कोई टका को भी न पूछेगा ।"[54] सत्ता और अधिकार का दुरुपयोग इन नेताओं से भी ज़्यादा इसकी संतानों ने किया है ।

आज नेता लोग गुण्डे पालते हैं । छात्रों, यूनियनों से लेकर बडे-बडे नेताओं तक गुंडागर्दी फैला हुआ है । वैद्य जी कॉलेज और को-ओपरेटीव यूनियन के चुनावों में गुण्डागर्दी का सहारा लेते हैं । प्रिंसिपल, ख्रन्ना मास्टर, रामाधीन और इनके अनुचरों में गुटबंदी की कमी नहीं थी । इसके बारे में लेख्रक लिख्रते हैं – "अंग्रेज़ी राज में अंग्रेज़ों को बाहर भगाने के झंझट में कुछ दिनों के लिए हम उसे भूल गए थे । आज़ादी मिलने के बाद अपनी और परंपराओं के

साथ इसको भी हमने बढावा दिया है ।"[55] यह गुटबंदी मानव को चरित्रहीन बनवाता है । जो दिनों दिन बढता जा रहा है । गुटबंदी के कारण देश में मार-पीट का रास्ता दिखा रहा है ।

शिवपालगंज को वास्तविकता का एक पक्ष वहाँ के पुलीस थाने के माध्यम से चित्रित किया गया है । दारोगा जी की यही धारणा है कि शिवपालगंज में रहना है तो वैद्य जी के साथ संबंध ठीक होने चाहिए । थानेदार वैद्य जी के साथ घनिष्ठ संबंध रखते हैं । वैद्य जी के पास गुण्डों का समूह रखना पडता है । यह गुण्डों की पुलीसवालों से, जेल से रक्षा भी करनी पड़ती है ।

रचनाकार ममता कालिया 'रागदरबारी' के महत्व को इस प्रकार समेटा कि "उन्हें पढते हुए यही लगता है कि अरे यह तो हूबहू हम हैं, हम जो डिग्रियों से लैस, कर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र कूद पडने को आतुर और कृतसंकल्प है, हमारा मोल आज़ादी की इस अंधेर नगरी में टके सेर भी नहीं है ।"[56] सच है कि आज हर क्षेत्र में अत्याचार का ज़हर फैला है । रंगनाथ बाहर से आया हुआ नौजवान इन सबको देखता है और उद्विग्न होता है । रंगनाथ देखता है कि चारों ओर अनैतिकता ही अनैतिकता का साम्राज्य है । वह इससे संघर्ष भी करना चाहता है पर इसे अपनी सामर्थ्य से परे पाता है । उसने वैद्य जी का, अपने मामा का विरोध किया, कुछ शिक्षकों को संघर्ष के लिए प्रेरित किया । वैद्य जी के बेटे रुप्पन को साथ करने में सफलता हासिल की । लेकिन अंत होता है, वैद्य जी का विजय और बाकी सबका अपमानजनक पराजय। सत्ता की राजनीति यहाँ विजय हासिल करती है ।

एक दिन प्रिंसिपल उसे वर्तमान राजनीति को समझाने की प्रेरणा देता है । अध्यापक खन्ना के स्थान पर नियुक्त करने की वादा देते हैं । इस प्रस्ताव पर रंगनाथ को लगता है कि खन्ना की जगह मास्टरी ? उसके सामने उसे कैसे निकाला गया है ? लेकिन प्रिंसिपल

का अपना तर्क है – "जहाँ जाओगे तुम्हें किसी खन्ना की ही जगह मिलेगी ।"[57] यह वस्तुतः एक अन्य प्रसंग में रुप्पन को कही गयी बात का ही विस्तार है कि शिवपालगंज पूरे मुल्क तक फैल जाता है ।

साहित्यकार रामदरश मिश्र की राय है – "आज की राजनीति ने भारतीय गाँव की ज़िन्दगी को कितना तोड दिया है, उसमें कैसे कैसे कदम अजनबी स्वर उभार दिए है, लेखक ने बहुत सहज भाव से इस यथार्थ को मूर्त किया है ।"[58] वर्तमान राजनीतिक माफिया जिस उर्वर भूमि की उपज है, शिवपालगंज उसका एक लघु प्रतिरुप है । कॉलेज की प्रबंध समिति के चुनाव में अपनायी गई प्रक्रिया पर रंगनाथ से बहस करते हुए रुप्पन पिता और प्रिंसिपल की कारवाई का समर्थन करता है । रंगनाथ पढने और स्वास्थ्य सुधारने के लिए गाँव शिवपालगंज में आता है । लेकिन यहाँ फैली कीचड में फंसने के कारण अंत में वापस जाता है । उपन्यास के अंत में लेखक पालायन संगीत आलापते हैं – "कीचड से बचो । यह जगह छोडो । यहाँ से पालायन करो ।"[59] वैद्य जी से पूंजीवादी राजनीति की कुटिलता सामने आ जाती है । वे अपने स्वार्थ से काम करते हैं । अंततः वे यही दिखाते हैं कि जो रागदरबारी नहीं गायेगा, उसे पालायन संगीत गाना पड़ेगा । यह पूंजीवादी जनतंत्र का नमूना है ।

श्रीलाल शुक्ल ने 'रागदरबारी' में जिस दरबारी राग को प्रस्तुत किया है, वह स्वातंत्र्योत्तर भारत के इक्कीसवीं सदी का यथार्थ है ।

2.5.4 मूल्यांकन

राजनीति देश को स्वस्थ और सुन्दर बनाने का एक माध्यम होता है । स्वतंत्र होने पर हम ने जनतांत्रिक व्यवस्था अपनायी, जिसके केन्द्र में प्रतिनिधियों का चुना जाता । लोग

मतदान करते रहे । किंतु लोगों की ज़िन्दगी में कोई परिवर्तन नहीं आ रहे । स्वाधीन भारत ने जितने भी सपने देखे थे वे सारे सपने धीरे धीरे टूटते गये । इसी टूटन का राग श्रीलाल शुक्ल के 'रागदरबारी' में देख सकते हैं ।

उपन्यास का केन्द्रीय पात्र वैद्य जी को आज के सत्तालोलुप राजनेता के रूप में चित्रित करते हैं । स्वाधीनता प्राप्ति के इक्कीसवीं वर्ष बाद प्रकाशित इस उपन्यास में वैद्य जी विभिन्न संस्थाओं में शनीचर जैसे कठपुतलों को बैठाते हैं और अपने पुत्र बद्री पहलवान को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करते हैं । यह आज के बडे-बडे राजनैतिक दलों के एकाधिकारी नेता की राजनैतिक तंत्र है । शिवपालगंज के विभिन्न संस्थाओं पर जैसे छंगामल इंटरमीडियट कॉलेज के मैनेजिंग डयरक्टर, को-ओपरेटीव सोसाइटी का मैनेजर, ग्रामप्रधान सभी पद तमंचा और गुटबंदी के बल पर उन्होंने हासिल की । उपन्यासकार ने वैद्य जी के माध्यम से आज के स्वार्थी, सत्तालोलुप, चोरी डकैती करनेवाला राजनीतिज्ञ का चित्रण कुशलतापूर्वक चित्रित किया है । कॉलेज, को-ओपरेटीव यूनियन, पंचायत आदि के चुनावों में भ्रष्ट राजनीति का इस्तेमाल करते हैं । सत्ता पर जने और बैठे लोग सत्ता के स्वार्थ में कितने बर्बर हो जाते हैं, यह वैद्य जी के माध्यम से व्यक्त करते हैं ।

उपन्यास में कॉलेज के प्रिंसिपल, छोटे पहलवान, रुप्पन बाबू, बद्री पहलवान, जोगनाथ, शनीचर सभी पात्र वैद्य जी के चमचागिरी करते हैं । इन पात्रों के माध्यम से आज के भारतीय समाज और उसपर शासन करनेवाली राजसत्ता के चरित्र का पर्दाफाश करते हैं । छंगामल इंटरमीडियट कॉलेज के अध्यापकों की नियुक्ति, परीक्षा में नकल करना, छात्रों की गुटबंदी, अध्यापन कार्य आदि से शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार का यथार्थ रूप मिलता है । लेखक ने इस कॉलेज को समकालीन कैंपस का प्रतीक माना ।

भारत दुनिया का सबसे बडा लोकतांत्रिक देश है । लेखक ने यहाँ स्वातंत्र्योत्तर भारत में फैली भ्रष्ट राजनीति को गाँव शिवपालगंज के माध्यम से लाने की बखूबी कोशिश किया है । यह स्वातंत्र्योत्तर भारत की नियति की ओर सूचित करता है । शिवपालगंज स्वतंत्र भारत का प्रतीक है इसी तरह उपन्यास के विभिन्न पात्र भी प्रतीक है जैसे रुप्पन बाबू, बद्री पहलवान पैदायशी नेता के प्रतीक है और वैद्य जी स्वातंत्र्योत्तर भारत के कुटिल राजनीतिज्ञ का प्रतीक है । उपन्यास में रुप्पन बाबू, रंगनाथ से कही यह बात "दादा, यह शिवपालगंज है । यहाँ यह बताना मुश्किल है कि क्या सच है क्या झूठ है ।"[60] अधकचरे विकास का प्रतीक शिवपालगंज मात्र एक कस्बा नहीं पूरा भारत है । स्वतंत्रता के बीस साल बाद लिखी यह उपन्यास स्वतंत्रता के पैंसठ वर्ष बाद भी उसमें कोई विशेष अंतर नहीं आया है । 'रागदरबारी' का महत्व यह है कि जो शिवपालगंज गाँव में सब कहीं मौजूद है वहीं आज देश के सभी कोनों में फैलता और भी विकराल रुप में हमारे सामने आते हैं । स्वतंत्रता के दो दशक के बाद लिखा यह उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर भारत की नियति को उजागर करता है ।

आलोचक गोपालराय 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' में 'रागदरबारी' को एक 'असफल कृति' माना । नैमीचन्द्र ने 'अधूरे साक्षात्कार' में 'रागदरबारी' को 'असन्तोष का खटराग' कहा । लेकिन इसे एक असफल कृति मानना उचित नहीं क्योंकि स्वातंत्र्योत्तर भारत में फैली भ्रष्ट राजनीति का दस्तावेज़ शिवपालगंज के माध्यम से श्रीलाल शुक्ल कुशलतापूर्वक चित्रण किया है।

उपन्यास के अंत में लेखक पालायन संगीत गाता है । क्योंकि स्वास्थ्य सुधारने से शहर से गाँव में आया रंगनाथ सब कहीं अत्याचार महसूस करता है । यहाँ लेखक ने रंगनाथ से गाँव में फैली कीचड से बचने को कहा है।

रागदरबारी रात में गाया जानेवाला राग है । अंधेरापन की भयावहता को दूर करके सुखद सुबह का आह्वान करता है यह राग । यहाँ चारों ओर फैली अंधेरा, अराजकता, लूट, भ्रष्टाचार को दूर कर सुनहली भारत का आह्वान करने में श्रीलाल शुक्ल ने भी रागदरबारी का आलाप किया है । स्वतंत्रता प्राप्ति के दो दशक के बाद लिखा यह उपन्यास आज पैसठ वर्षों के बाद भी सार्थक बना है । इसी से इस उपन्यास की प्रासंगिकता सिद्ध होती है ।

2.6 मेरी तेरी उसकी बात

2.6.1 भूमिका

यशपाल स्वाधीनता आन्दोलन से सीधे और बहुत घनिष्ठ रूप से जुडे थे । लेखक बनने के पहले ही सशस्त्र क्रांतिकारी आन्दोलन का हिस्सा बने, तो भारत के आज़ाद होने तक उससे उनका नाता कायम रहे । स्वतंत्रता संग्राम की दो धाराएँ थी, एक अहिंसात्मक रीति नीतियों को अपनाकर आगे बढ रही थी, दूसरी सशस्त्र क्रांति की धारा थी । भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव के साथ यशपाल इस धारा में सक्रिय भागीदार बन गये थे । हिन्दुस्तान सोष्यलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी के वे सक्रिय सदस्य थे । बुल्लट, बम-विस्फोट के मार्गों को अपनाकर वे स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते थे । इस सक्रिय भागीदारी से प्राप्त अनुभवों को आधार बनाकर उन्होंने बाद में लिखना शुरु किया । उन्हीं के अनुसार पहला चरण बुल्लट खाता बाद में बुल्लटिन का ।

'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'दिव्य', 'पार्टी कमरेड', 'मनुष्य के रूप', 'अमिता', 'झूठा सच', 'बारह घण्डे', 'अप्सरा का शाप', 'क्यों फँसे', 'मेरी तेरी उसकी बात' आदि उनके उपन्यास हैं । 'मेरी तेरी उसकी बात' यशपाल के साहित्य के अंतिम चरण की कृति है । इसका

प्रतिपाद्य एकदम नया नहीं है उनके आरंभिक उपन्यास 'झूठा-सच' का विस्तार हम 'मेरी तेरी उसकी बात' में देख सकते हैं । स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय भाग लेते यशपाल का कथन है कि, "इस देश के 99 प्रतिशत आदमी भूखे, नंगे रह कर किस प्रकार निर्जीव और निरुत्साह हो रहे हैं और उन्हें अपनी अवस्था सुधारने का कोई अवसर नहीं । उनके प्रयत्नों पर आपके विदेशी शासन की गुलामी का शिकंजा कसा हुआ है । इस विदेशी शासन से मुक्ति के लिए ही हमारा यह प्रयत्न है ।"[61]

यशपाल का रचनाकाल पराधीन भारत को अपने दायरे में लेते हुए आज़ाद भारत तक अपना विस्तार पाता है । 'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास की समर्पण में यशपाल ने लिखा है कि, "मैं तुम वो स्वतंत्रता के लिए जूझकर, अपने विचार में स्वतंत्र होकर भी छटपटा और सिसक रहे हैं ।"[62] उपन्यास की गहराई को समझने में यह टिप्पणी महत्वपूर्ण है । यह अकेले यशपल की निजी अनुभव नहीं है, मेरा तुम्हारा उसका सबका अनुभव है ।

2.6.2 भावभूमि

राष्ट्रीय आन्दोलन 'मेरी तेरी उसकी बात' का प्रमुख विषय है । उपन्यास के प्रारंभ में सन् 1919 की राष्ट्रीय आन्दोलन की घटनाओं का संदर्भ है । सन् 1919 से 1946 तक की राजनीतिक गतिविधियों और राष्ट्रीय आन्दोलन की भूमिका का विस्तार से चित्रण करते हैं । उपन्यास की कथा पिछली पीढी से होती है । पहला वर्ग उस बुजुर्ग पीढी का है जो 'मेरी' है जिसमें सेठ रतनलाल, धर्मानन्द पंडित आदि आते हैं । दूसरा वर्ग उस युवापीढी का है जो 'तेरी' है जिसमें सेठ अमरनाथ, उषा पंडित, नरेंद्र कोहली, अहमद राजा, रुद्रदत्त पाठक आदि हज़ारों युवक हैं और तीसरा वर्ग उस बचकानी पीढी का है जो 'उसकी' है, आनेवाले भविष्य की है जिसका संकेत मात्र है । इस प्रकार 'तेरी मेरी उसकी बात' विगत, आगत और अनागत तीनों

से संबद्ध है क्योंकि वह मेरी, तेरी, उसकी – उन सबों की बात है जिन्होंने परतंत्र भारत के अन्धकार को स्वतंत्रता का सूरज दिया ।

कथानक का कार्यक्षेत्र आदि से अंत तक लखनऊ में ही होता है । अमर उपन्यास का प्रमुख पात्र है । बचपन से उनके मन में क्रांतिकारी बनने की इच्छा जागृत होती है । उपन्यास की नायिका उषा है । अमर की प्रेरणा से राजनीति में आ चुकी है । उपन्यास अमर और उषा की राजनीतिक गतिविधियों से आगे बढते हैं । यह उपन्यास राष्ट्रीय आन्दोलन के व्यापक फलक पर प्रस्तुत करते हैं ।

2.6.3 राजनीतिक संघर्ष

उपन्यास के प्रारंभ में सन् 1919 में विदेशी सरकार द्वारा ज़ारी किया रोलेक्ट अक्ट की घटनाओं का संदर्भ है । गाँधीजी और कांग्रेस ने इस काले कानून के विरोध में देशव्यापी हड़ताल का आह्वान दिया । गाँधीजी के नेतृत्व में संचायित अहिंसात्मक आन्दोलनों के द्वारा देश स्वाधीनता प्राप्ति के लिए निरंतर प्रयत्नशील था । एक तरह से संपूर्ण देश की गाँधीजी एवं कांग्रेस में गहरी निष्ठा थी – "जनता में एकता हो गयी, जनता एक प्राण होकर एक मोर्चे पर जूझ रही है ।"[63] पर शिक्षित नवयुवकों का एक छोटा सा ऐसा वर्ग भी था जो गाँधीजी के अहिंसात्मक आन्दोलनों की तत्कालीन असफलता से क्षुब्ध था । अमर ऐसा एक पात्र है । उसमें अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद के प्रति नफरत है । अमर के अलावा नरेंद्र, पाठक आदि आन्दोलन के भागीदारी है । अमर की प्रेरणा से उषा भी राजनीति में प्रवेश करती है । बीच में अमर और उषा का घनिष्ठ संबंध विजातीय वैवाहिक बन्धन में बांध देता है । दोनों राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय रहते हैं । ये क्रांतिकारी वर्ग सशस्त्र डकैती और राजनीतिक हत्याओं का सहारा लेकर देश को विदेशी शासन से मुक्ति दिलाना चाहते थे ।

अंग्रेज़ों के कूटनीति के विरुद्ध युवा जनों के मन में अंग्रेज़ और अंग्रेज़ी शासन के प्रति गहरी घृणा और क्रोध उपन्यास में सर्वत्र देखते हैं । जो लोग अंग्रेज़ों के शासन के विरुद्ध काम करते हैं उनकी हाल का सच्चा चित्रण मास्टर जी अमर से कहते हैं – "इन लोगों ने प्रजा को नहीं लूट, चलती गाडी रोककर सरकारी खजाना लूटा । स्वार्थ के लिए नहीं, देश सेवा के कार्य के लिए । यह लोग क्रांतिकारी थे, देश की आज़ादी के लिए सरकार पर बम-पिस्तौल से हमला करने वाले क्रांतिकारी । सरकार ने इन खूरवीरों पर डकैती-कत्ल का इल्जाम लगाकर इन्हें फाँसी की सज़ा दे दी । इनके दूसरे साथियों को काला-पानी-उम्र कैद ।"[64] दूसरी ओर देश का बहुत बडा नेता अंग्रेज़ी सरकार की पुलिस की लाठियों से मर गया, पूरा देश शोक में है । स्वतंत्रता आन्दोलन के अवसर पर ऐसी कई घटनाएँ भारतीय राजनीति में आ चुकी है । इसकी झलक उपन्यास में मिलती हैं ।

हरिभैया कांग्रेस के राजनैतिक कार्य में सक्रिय थे । इसलिए उन्हें बार-बार जेल जाना पड़ा । यह हरिभैया की ही नहीं जो लोग स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेते थे उन्हें बार-बार कारावास की सज़ा मिली । ये भारत की राजनीति में दोहराया करते थे । द्वितीय विश्व युद्ध के उग्रवादी राजनीतिज्ञ अमर की राजनीतिक गतिविधियों को सरकार विरोधी मानकर उसे गिरफ्तार किया जाता है । स्वतंत्रता संग्राम के सेननियों को अपना परिवार और पत्नी-बच्चों को छोडकर जेल जाना पड़ा । अमर की अनुपस्थिति में उसके घर की देखभाल नरेन्द्र कोहली करता है। जेल से मुक्त होने पर उसे नरेंद्र और उषा के संबंध को लेकर संदेह उत्पन्न होता है । उनका दांपत्य जीवन संदेह के कारण तनावपूर्ण हो जाते हैं । तनावभरी अवस्था में साइकिल चलाते हुए अमर दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है । अमर की मृत्यु पर उषा विक्षिप्त सी हो जाती है । अमर के पिता सेठ यह चोट सहन नहीं कर सके तथा उनके भी जीवन का अंत हो

जाता है ।

उषा अपने बेटे प्रताप को लेकर ससुराल रहने लगती है । इन्हीं दिनों स्वतंत्रता आन्दोलन ज़ोर शोर से शुरु हो जाता है । सन् 1942 के आन्दोलन में वह राजनीति में सक्रिय रुप में हिस्सा लेती है । पति के प्रति अपने व्यवहार के प्रायश्चित के रुप में वह स्टुडेंट कांग्रेस की सहायता करती है । वह अपने बेटे को दादी के पास छोडकर सन् 1942 के 'भारत छोडो आन्दोलन' में कूदती है । वह बनारस, बलिया, इलाहाबाद आदि विभिन्न स्थानों में जाती है । पुलीस उसकी खोज में निकली । पार्टी का एक साथी रुद्रदत्त पाठक इस समय उषा की सहायता करता है । विवशतावश दोनों को एक साथ रहना पड़ता है । और इसी बीच से विवाह की भी सोच लेते हैं । लेकिन अपने बालक की सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रश्न को लेकर वह पुनर्विवाह के निश्चय को तोडती है ।

'भारत छोडो आन्दोलन' को आगे बढ़ानेवालों में हरि भैया सक्रिय भाग लेते हैं । उन्होंने उषा और विश्वविद्यालय के छात्रों को सम्मिलित कर अंग्रेज़ों और उनके कूटनीति को दबाने की घोषणा की । सेन उस आन्दोलन को आगे बढते हुए कहा – "आज भी हम उसी तरह निर्भय, कर्तव्यपरायणता और ईमानदारी से परिस्थितियों के अनुसार सही मोर्चा ले रहे हैं । हम अपनी मातृभूमि पर आये खतरे के सामने कबूतर की तरह आँख बंद करके निर्भय नहीं हो सकते ।"[65]

स्वतंत्रता आन्दोलन के समय कांग्रेस के बीच पर हुए दरार इस सयम प्रतिफलित होते हैं । त्रिवेदी कहते हैं – "उग्रपंथियों ने बोस का समर्थन उनकी नीति से सहमति के कारण किया । गाँधीजी क्या इतने अन्जान कि बोस की नीति और कार्यक्रम का अनुमान नहीं कर सकते । गाँधीजी ने असहयोग नहीं किया । बोस और उनके समर्थकों को पूरा अवसर और

उनके मार्ग में अडचन न बनने का आश्वासन दिया है ।"[66] स्वतंत्रता पूर्व के युग में भी राजनीति में अलग-अलग दल देख सकते हैं और आज भी है । एक ही दल के बीच भी बहस बहुत घोर रूप से दृष्टिगत होती है । स्वतंत्रता पूर्व की यह स्थिति आज भी राजनीति में ज्यों का त्यों प्रकट होती है ।

भारत छोडो आन्दोलन के अवसर पर चारों ओर 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद !' 'महात्मा गांधी की जय !' 'अंग्रेज़ों, भारत छोडो !' का नारा गूँज रहा है । लेकिन इस अवसर पर जिन्ना का हुक्म है कि, मुसलमान न की कांग्रेस के साथ, न अंग्रेज़ों के साथ। मुसलमान न्यूट्रल हैं, उन्हें हड़ताल से वास्ता नहीं । वे अपने से एक अलग रास्ता देखना चाहते थे । आज़ादी की निकट आने पर भी हिन्दु-मुसलमान संघर्ष का एक छोर हमें दृष्टिगत होते हैं । अंग्रेज़ों के 'फूट डालो राज करो' के नीति के परिणाम है यह । अंग्रेज़ों से मुक्त होकर एक स्वतंत्र भारत का सपना देखने के दिल में यही एक समस्या उभरकर आयी ।

उषा के नेतृत्व में चारों ओर इंकलाब गुजरा । वह गाँधीजी और हमारे राष्ट्रीय नेताओं के रास्ते पर आ खड़ने का आह्वान देती है – "इस संघर्ष का अंत हमारी स्वतंत्रता से होगा या हमारे अंतिम श्वासों और हमारे रक्त की अंतिम बूँदों से । गांधी का आदेश स्पष्ट है - हमें लाशों और खून के दलदल को लाँघकर आगे बढ़ना है या उसमें डूब जाना है ।"[67] उषा का स्वर और ऊँचा उठा कि इस संघर्ष में हमारे नेता सबसे पहले सिर पर कफन बाँधकर आगे बढे हैं और अपना उत्तरदायित्व हमारे कंधों पर सौंप गये हैं । और हम लोग भी सिर पर कफन बांधकर, कदम पीछे न हटाने के प्रण से आगे बढ़े । उसके भाषणों का औचित्य युवकों को राष्ट्रीय आन्दोलन में कूदने की प्रेरणा देते हैं । राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के कारण उसकी वैयक्तिक ज़िन्दगी में कई बिखराव हमें देख पाते हैं । अमर की संदेह दृष्टि, बेटे को छोडना

आदि उसकी ज़िन्दगी का एक घनिष्ठ अनुभव है ।

पुलीस उषा की खोज में निकलते वक्त भी उसने गुप्त रूप से आन्दोलन चलायी । उषा ने गुप्त कांग्रेस सर्कुलर के निर्देश भीड को दे दिया– "साथियों, यह संग्राम है, आन्दोलन नहीं । हमें अपनी गुलामी की पूरी मशीन, अपने दमन की व्यवस्था कचहरियों, तहसीलों, थानों, यातायात और संपर्क के सभी साधनों को समाप्त कर देता है । फासिज्म से लडने के लिए ब्रिटेन जो कुछ कर रहा है, ब्रिटीश फासिज्म से लडने के लिए हमें उससे अधिक करना होगा । हमारा लक्ष्य और नारा है, अंग्रेज़ों को भारत से निकालो ! करो या मरो !"[68] इस लडाई में सफल पाकर भी विभिन्न धर्मावलंबियों के बीच के तर्क देखने को मिलते हैं । स्वाभाविक है कि आज की राजनीति में भी यह बहस सुनते हैं – "आज़ाद होकर हम फासिज़्म के समर्थक नहीं जनतंत्र के समर्थक हैं । अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमारा सहयोग जनतंत्र और समाजवादी पक्ष के साथ संभव ।"[69] स्वतंत्रता के बाद देश की सबसे निकट राजनीतिक समस्या सांप्रदायिक या हिन्दु-मुस्लीम द्वन्द्व को सुलझाने का हैं । एक स्वतंत्र भारत के सपना देखने के दिल में यही एक समस्या उभरकर आयी ।

भारत में नये चुनाव के समय देश भर में चुनावों की उत्तेजना और कांग्रेस और मुस्लीम लीग जो एक दूसरे से बढ़ाकर चुनाव का प्रचार करते थे । शिवाजी के सैनिक भी इसमें शामिल थे । सभी प्रांतों में चुनावों के लिए कांग्रेस के प्रत्याशियों की सूचियाँ बनायी जा रही थी । कांग्रेस राजनैतिक मंच उषा को असेम्बली की उम्मीदवारी का टिकट देने का निश्चय किया । लेकिन रुद्र और उषा का सिविल मैरेज के बारे में जानते वक्त उग्र दल चुनाव के लिए उषा को कांग्रेस उम्मीदवार का टिकट देने से इनकार किया । उषा की पूरी मज़बूरी राजनैतिक कार्य केलिए था । ईमानदारी से काम करते उषा की यही हालत है । तत्कालीन राजनीतिक

परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण यशपाल ने यहाँ किया है । यशपाल जी स्वयं राजनीतिज्ञ थे, उनका एक व्यक्त राजनीतिक दृष्टिकोण उपन्यास में सर्वत्र मिलते हैं ।

श्री धनञ्जय वर्मा ने 'मेरी तेरी उसकी बात' की टिप्पणी इस प्रकार की है – "यह उपन्यास समकालीन इतिहास के मानव अनुभव का एक ऐसा दस्तावेज है जिसमें सिर्फ व्यक्ति की अनुभूतियों और संवेदनाओं की लीला नहीं है, बल्कि उन सब सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक ताकतों का भी खेल शामिल है जो इस मानवीय अनुभव को रुपायित और निर्देशित कर रहा है।"[70] 'मेरी तेरी उसकी बात' में यशपाल ने समाज के यथार्थ का पर्दाफाश करने के लिए हमारे निकट अतीत की कुछ घटनाओं का समावेश किया है । भारत की राजनीति के विभिन्न पहलुओं के विस्तृत वर्णन यहाँ हुआ है ।

2.6.4 मूल्यांकन

राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करने के लिए इतिहास प्रसिद्ध स्वतंत्रता संग्राम के वरिष्ठ नेताओं को उपन्यास में लिया गया है । अंग्रेज़ों ने देश की फूट से लाभ उठाकर भारत में राज किया । विदेशी शासन से मुक्ति के लिए भारत के कई नेताओं का मोर्चा शुरू किया ।

गाँधीजी का अहिंसात्मक आन्दोलन और लाला लजपतराय, भगतसिंह, राजगुरु आदि उग्रवादियों का आन्दोलन का जिक्र उपन्यास में है । यशपाल स्वयं उग्रवादी थे । ये उग्रवादियाँ देशस्नेही थे । अपने स्वतंत्रता के लिए अपने देश के लिए जीवन त्याग करने में तैयार थे । लेकिन आज के उग्रवादियाँ देशद्रोही थे। वे देश को सर्वनाश की ओर ले जाते हैं। स्वतंत्रता समय के उग्रवादियाँ कांग्रेस के एक अलग दल के था । लेकिन उन सब की रास्ता एक थी – स्वतंत्रता ।

यशपाल यहाँ इतिहास की घटना को काल्पनिक पात्रों द्वारा सम्मिलित कर उपन्यास को आगे बढ़ाते हैं । सामाजिक जीवन की समस्याओं और विसंगतियों को उभारने में ये पात्र सक्षम रहे हैं । पुरुष पात्रों में अमर, नरेंद्र, पाठक आदि प्रमुख हैं । नायिका के रूप में उषा का चरित्र उभरकर आती है । अमर जीवन की सुख सुविधाओं के होते हुए भी राजनीति के कठोर मार्ग पर अग्रसर होता है । लेकिन उसकी व्यक्तिगत ज़िन्दगी तबाह हो जाता है । उपन्यास में ऐसे कई प्रसंग हम देख सकते हैं । हरि भैया को अपनी परिवार को छोडकर जेल जाना पड़ा । अमर की पत्नी उषा की ज़िन्दगी बिखर गयी । यह केवल अमर और उषा की स्थिति मात्र नहीं, जो लोग राजनीति में ईमानदार होकर काम करते उनकी यहीं नियती हैं । यहाँ यशपाल राजनीति के इस खोखलेपन को प्रस्तुत करते हैं ।

स्वतंत्रता के निकट आने पर भारत की राजनीति में मुसलमान एक अलग राष्ट्र मांगने लगे । दो खण्डों में विभक्त होकर भारत को आज़ादी मिली । इस स्थिति में सन् 1947 अगस्त पन्द्रह के सुबह को भारत ने अपना तिरंगा फहराया । भारत की राजनीति में हुई यह विभाजन हमारे राष्ट्र की नियति है । स्वातंत्र्योत्तर भारत में हमें इस नियति को स्वीकारना पडा।

उषा का व्यक्तित्व युवकों में झांसी की रानी के रूप में स्वतंत्रता की चिंगारी फूंकता है । राष्ट्रीय आन्दोलन में पुत्र का वात्सल्य भी उसे रोक नहीं पाता। आन्दोलन में सक्रिय भाग लेते उषा को असंब्ली में सीट भी न दिया । धार्मिक कट्‌ठरता का एक चित्रण यहाँ मिलता है । उषा-पाठक का सिविल मेरैज कांग्रेसियों के बीच की एक समस्या थी । धार्मिक सद्‌भावना की समस्या स्वतंत्रता आन्दोलन के समय भी हम देख सकते हैं । आज भी यह समस्या ज़ारी है ।

उषा केवल राजनीतिक क्षेत्र की क्रांति नहीं लाती अपितु सामाजिक क्रांति में भी

योग देती है । एक अवसर पर उषा कहती है कि, "निरर्थक मान्यताओं और संस्कारों को स्वीकार नहीं कर रही हूँ, परंतु समाज को एक झटके से नहीं बदल दे सकती ..."[71] यह सच है समाज को एक झटके से बदल देना मुश्किल है । भारतीय राजनीति में कई जादुएँ देख सकते हैं । यह हमारे युग की सबसे ज्वलंत सचाई है कि मानव नियति को बनाने बिगाडने में राजनीति एक निर्णायक भूमिका अदा कर रही है । व्यक्ति, परिवार, समाज, संप्रदाय और जाति के आचरण और व्यवहार में राजनीति का कितना आतंक है इसकी पहचान यहाँ मिलता है ।

आलोचकों ने इसे नायिका प्रधान, नारी-पुरुष के द्वन्द्ध या सामाजिक उपन्यास कहा है । जो कुछ भी हो इस उपन्यास के शुरु से अंत तक भारत की स्वतंत्रता आन्दोलन के विभिन्न घटनाएँ प्रामाणिक रुप से प्रस्तुत की गई है । अतीत की घटनाओं को समकालीन संदर्भ में लाने की प्रयास यहाँ है । समकालीन इतिहास के मानव अनुभव का एक दस्तावेज है 'मेरी तेरी उसकी बात' । यह मेरी तेरी और सबकी ज़िन्दगी की दास्ताँ है ।

2.7 नीलाचाँद

2.7.1 भूमिका

देश की स्वतंत्रता प्राप्ती के बाद साहित्य के क्षेत्र में कदम रखनेवाले एक रचनाकार है शिवप्रसाद सिंह । आज की साहित्यक धाराओं से उनका लेखन एक अलग पहचान रखता है । शिवप्रसाद जी बनारस की धरती से जुडे साहित्यकार हैं । काशी के रग-रग को जानकर ही उन्होंने साहित्य रचना की है । 'अलग अलग वैतरणी', 'गली आगे मुडती है', 'नीलाचाँद', 'शैलूष', 'मंजुशिमा', 'औरत', 'कुहरे में युद्ध', 'दिल्ली दूर है', 'वैश्वानर' आदि उनके उपन्यास हैं । काशी के अतीत और वर्तमान उनके उपन्यास का मुख्य विषय रहा है ।

काशी तीन 'गली आगे मुडती है' जिसमें आधुनिक काशी है । काशी दो 'नीलाचाँद' है जिसमें मध्यकालीन काशी है । काशी एक 'वैश्वानर' जिसमें प्राचीन काशी है।

बनारस की मध्यकालीन संस्कृति को उजागर करने के लिए 'नीलाचाँद' की रचना की है । मध्यकालीन काशी को जानने के लिए इतिहास में जाना आवश्यक है । फिर भी उपन्यास सैद्धांतिक अर्थ में ऐतिहासिक नहीं है । शिवप्रसाद जी की यही राय है कि, "नीलाचाँद में मैंने अपनी सांस्कृतिक धरोहरों को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दिखाने की कोशिश की है । हमारी सारी संस्कृति विनष्ट है जिसे लोग खोज नहीं पा रहे हैं ।"[72] उपन्यास की यही विशेषता है कि इतिहास की पृष्ठभूमि में वर्तमान की समस्याओं का चिंतन है । काशी भारत की सस्कृति का झांकी है । ग्यारहवीं सदी की काशी की पहचान नीलाचाँद में है । लेखक के शब्दों में – "मैं मध्यकाल की वह काशी देखना चाहता था जो विदेशी आक्रांताओं के पहले थी। मुझे तदनुरुप किसी ऐसे समय को ढूँढना या जिसने त्रिकंटक को भी हिला दिया हो, जहाँ धगद्-धगद्-धगद् ज्वलम् के भीतर नन्दीश्वर के ज्योलिंग ने विशाल स्तंभ की तरह धारा और आकाश को जोड़ दिया हो । वह समय मिल गया, जब कर्ण कलचुरी ने देववर्मा चन्देल की हत्या की। पूरी जुझौती को रौंद कर कर्णमेरु प्रसाद में अपने चरणों द्वारा नयी विरुदावली ....लक्ष्मीकर्ण ने अपने पिता की ही तरह गाहडवालों को मामूली सामंत मानकर हमेशा दबाये रखा । उस समय की काशी है यह यानी – ईसवी 1060 की ।"[73] उपन्यासकार मध्यकालीन काशी के माध्यम से प्रतीकात्मक रूप से अपनी भावनाओं को रुपाकर देता है । नीलाचाँद आशा और संघर्ष के अतिरिक्त शक्ति का प्रतीक है । इसे इच्छाशक्ति से जोडा जाता है ।

2.7.2 भावभूमि

शिवप्रसाद जी काशी त्रयी की घोषणा के अनुसार 'नीलाचाँद' का चयन किया

है । इसमें मध्यकालीन काशी की जनता को, समाज का पूरी तरह चित्रण किया है । सबसे निचले वर्ग के सर्व बहिष्कृत चंडालों और डोमों से लेकर महिमाशाली ब्राह्मण, राजन्य, महाजन और सेठों का चित्रण भी उपन्यास में मिलता है ।

चन्देल राजा नानुक के वंशज सम्राट विध्याधर देव के पौत्र कीर्तिवर्मा की संघर्ष गाथा है 'नीलाचाँद'। उपन्यास में केवल कीर्तिवर्मा का संघर्ष ही नहीं, मध्यकालीन काशी का समग्रता से चित्रण हुआ है । कलचुरी गांगेय देव के पुत्र लक्ष्मीकर्ण ने देववर्मा की हत्या कर चन्देलों की राजधानी खजुराहों में आग लगा दी । यही से कीर्तिवर्मा का संघर्ष शुरु होता है । भाई के हत्या के साथ भाभी सती हो गयी थी । प्रजा में आतंक फैला । कीर्तिवर्मा के पास न सैनिक थे न शस्त्र थे, न रोटी थी । बस दृढ़ इच्छाशक्ति उसकी सहायता के लिए है । कीर्तिवर्मा चुपकर कीरत बनकर अपने साथियों के साथ काशी पहूँचता है । इसमें सहायक है श्रीमाँ, गोपाल भट्ट, कन्याकुब्ज के राजा सोमेश्वर की कन्या गोमती, सेनापति अनंत, सूरज गोंड, कवि कृष्णमिश्र, लोचन, आर्य रज्जुक गाहडवाल, अनंत की पत्नी चंपक, बब्बरनट, तमाम आदिवासी कबीले तथा जुझौती की पूरी प्रजा । सब में इच्छाशक्ति की दृढता है । अंत में यह इच्छाशक्ति सफल हो चुकी है ।

2.7.3 राजनीतिक संघर्ष

उपन्यास का आरंभ ही जुझौती का राजा कीर्तिवर्मा की गतिविधियों से है । कीर्तिवर्मा का भाई देववर्मा प्रशासन से उदासीन था । परिणाम यह निकला कि कर्ण कलचुरी ने ध्यानस्थ देववर्मा की हत्या कर दी और सारे खजुराहो अग्निस्नान कर देता है । कीरत के ही शब्दों में – "मेरे भ्राता देववर्मा की हत्या इसलिए हुई, क्योंकि वे दस वर्षों तक प्रजा से कटे रहे । उन्होंने गाँव, पुर, नगर, जंगल, उद्यान, नद-नाले सबसे अपना संबंध तोड लिया । ऐसे

निष्क्रिय राजा की प्रजा यदि स्वयं हत्या कर देती तो भी मुझे आश्चर्य न होता ।"[74] जिस देश का शासक प्रजा से हटे जाता है वह शासन में पराजित होता है । अपने खोये हुए देश की प्राप्ती में कीर्तिवर्मा को कई संघर्षों को झेलना पडता है । पराजय की स्थिति में कीर्तिवर्मा अपनी गलतियों को स्वीकार करते हैं । यही तद्‌युगीन राजा के कर्तव्य को सूचित करता है । यदि आज के नेता इस प्रकार अपनी गलती को मानते तो वर्तमान की राजनीति का स्वरूप ऐसा न होता । कीर्तिवर्मा महत्वाकांक्षी राजा है । वे न केवल अपनी राज्य की रक्षा करना चाहते हैं अपितु अपहन राज्यों को मिलाकर एक विस्तृत राष्ट्र का निर्माण करने का प्रयास करते हैं ।

कीर्तिवर्मा के पितामह विध्याधर देव संपूर्ण उत्तरापथ के सम्राट थे । वे कीरत से एक पीढी पहले हो चुकी हैं । एक जगह कीरत कहता है – "विध्याधर देव, विध्याधर देव सुनता-सुनता मैं ऊब गया हूँ । मेरे पितामह विध्याधर संपूर्ण उत्तरापथ के सम्राट थे । उद्‌भांड से लेकर पाटलिपुत्र तक और हिमालय की उत्तुंग श्रेणियों से लेकर विध्य मेखला तक उनका एक छत्र साम्राज्य था और मैं पददलित, पराजित, अपमानित, एकाकी और असहाय व्यक्ति हूँ ।"[75] विध्याधर देव जनता से जुडे हुए शासक थे । अतः उनका साम्राज्य संपूर्ण अत्तरापथ तक फैला था । लेकिन विध्याधर ने जिस गांगेयदेव का पालन किया उसका पुत्र कर्ण ने सब अपहृत किया । लेकिन घोर इच्छाशक्ति से प्रतिद्वन्द्धि कर्ण को नष्ट करने में कीरत आगे बढ़ते हैं ।

कीर्तिवर्मा यह जानते हैं कि निवास स्थान में ही शत्रु को पराजित करना है । इसलिए अपने साथियों के साथ कर्ण की राजधानी काशी की ओर बढे । कर्ण के अत्याचारों से काशी के जनता दुःखी थी । वे एक ऐसे शासक थे कि अपनी जनता पर घोर अत्याचार करते थे । हिंदु राजा होकर भी कर्ण मंदिरों पर आक्रमण करते थे । हत्या, षडयंत्र, स्त्रियों के साथ बुरा आचरण, धोखेबाजी, अकृतज्ञता – कर्ण और उनके समस्त सहायक लोग हर तरह से दुर्गुणी

थे । उस समय के काशी में अन्याय, अत्याचार और आतंक अपनी चरम सीमा पर थी । अपनी साधना के लिए वज्रयानी सुन्दर युवतियों का अपहरण कर लेते थे । इसी वज्रयानी राजा सोमेश्वर देव की पुत्री गोमती का भी अपहरण किया था । लेकिन कीरत उसे बचा लेता है । कलानेत्री सुनन्दा आत्महत्या ही कर लेती अगर कीरत उसकी इज्जत न बचाती । कर्ण के राज में यही हालत है । कर्ण के बारे में कीरत का यह कथन कितना सार्थक है कि, “वह श्वान से भी अधिक असभ्य और भेडिये से भी अधिक निर्मम है ।”[76] कर्ण के सैनिकों का नाम सुनते ही वैशिक वीथिका में घबराहट निर्माण हो जाती है ।

काशी में दो राजा थे –कर्ण कलचुरी और सोमेश्वर गाहडवाल । लेकिन कर्ण ने सोमेश्वर को पराजित कर अपने अधीनस्त में बाँध ली । चन्देलों का और गाहडवालों का एक ही शत्रु था – कर्ण कलचुरी । कीरत जानता था कि अहिंसा शत्रु से घिरे व्यक्ति के लिए नहीं है । वे सवाल उठते हैं – “हमारी संस्कृति हमें सिखाती है कि धोखा मत दो, पर क्या यह भी कहीं लिखा है कि आक्रांता के हमले की प्रतीक्षा करनी चाहिए, और अपनी सैन्यशक्ति को खण्डशः नष्ट होने के लिए बर्बरों के सामने झोंक देना चाहिए ।”[77] संस्कृति और कुछ नहीं लेकिन हमारे अतीत का वह अंश है जो अच्छा है, जो हमें मानव बनाता है । जो आज के संदर्भ में उपयोगी है । आर्य रज्जुक का यह कथन – “एक ओर विदेशी है जो सब कुछ लूटकर अपना कोषगर भर रहे हैं । दूसरी ओर स्वदेशीय है जो अपने अहंकार को तुष्ट करने के लिए एक दूसरे के खून के प्यासे हो गये हैं । विदेशी लूटी हुई धनराशी से एक नयी सभ्यत को जन्म देंगे ।”[78] जिसमें वर्तमान की चिंता झलकती है । जो होना था उसके लिए हम स्वयं उत्तरदायी है । आज के लोकतंत्र के युग में राजतंत्र की यह गाथा चलती रही है ।

प्रजा से कटने का अर्थ कीरत जानता था । उनके पास कुछ भी नहीं था, पर

प्रजा का अटूट स्नेह था । आदिवासी सूरज गोंड को वह काका कहता है, बब्बर नट को चाचा कहता है । लोचन को वत्स कहता है । प्रजा के दुःख को उन्होंने अपना दुःख बनाया – "राजा का आकर्षण भूमि से नहीं, प्रजा से जुडना होता है । तुम्हारी अपनी प्रजा अगर तुम्हारे साथ नहीं है तो तुम्हारी रक्षा कोई नहीं कर सकता ।"[79] प्रजा का दुःख उन्होंने अपना दुःख समझा । तभी तो प्रजा राजा से कहती हैं – "तू हमारे निकट आकर देख, हमारी झोंपडियों में रात बिताकर अनुभव कर कि जुझौती के लिए प्राण देने वाले पहाडी के कोने-अंतरे में बैठे तेरा इन्तज़ार कर रहे हैं ।"[80] जुझौती प्रजा के लिए माँ है । विध्याधर देव और कीरत प्रजा से जुडे हुए शासक थे । वे हमेशा भारत का भविष्य बनाना अपना उत्तरदायित्व समझते हैं ।

भारत के विराट इतिहास में कभी भी ऐसा नहीं हुआ कि किसी हिन्दु राजा ने मंदिर को भ्रष्ट करने का प्रयत्न किया हो । कर्णदेव ने पाँच सहस्र घुड सवारों को लेकर नन्दीशर भगवान के मंदिर पर आक्रमण किया था । इन अत्याचारों के विरुद्ध नगर में भीषण आक्रोश फैला था । काशी की जनता के सामने केवल एक लक्ष्य है कि कर्ण को आग की लपटों में झोंक दो । काशिवासियों के लिए कर्ण राक्षस है ।

कीरत अपनी भाभी का सती होने की उस जलती हुई चिता के सम्मुख प्रतिशोध की शपथ ले थी । कीरत के पक्ष में सबसे बडी शक्ति काशी के प्रजा है । कीरत का अपना अश्व प्रचंड को रणनीति को बदल जाने की अभूतपूर्व क्षमता है । शिवरात्री के दिन स्वयं को सप्तम चक्रवर्ती घोषित करने में कर्ण तैयार रहे । यह जानकर कीरत पूरी तैयारी से विरोध करते हैं । कीरत का सेनापति गोपाल भट्ट जुझौती की प्रजा को लेकर शत्रु से लडते थे । श्री शीलभद्रा माँ जो भविष्य द्रष्टा है, समाज सेविका है । राजनीतिक परिस्थितियों का पूर्ण विवरण वे कीरत को देती हैं । कीरत को विध्याधर जैसा वीर साहसी शासक बनाने का प्रयास करती

है । सेनापति रज्जुक, गोविन्द चन्द्र, शीलभद्र माँ आदि के पूर्ण सहयोग से कीरत अपने राजनीति संघर्ष में सफल होते हैं । प्रजा का प्रेम पानेवाला कीरत जैसा राजा निश्चय ही योग्य शासक है । आज योग्य शासक की कमी है ।

राष्ट्रीय चेतना का स्वर श्री माँ में देखते हैं । वे अनेक गरीब दुखियों के संहारकारिणी दुर्गा हैं । ऐसी नारी मानव उत्थान के लिए, राष्ट्रीय जागरण के लिए अपना बलिदान तक दे डालती है । वे काशी की जनता में अपनी संस्कृति को बचाने रखने के लिए संघर्ष की अनंत शक्ति देती हैं । योगिनी शीलभद्रा माँ समाज सेविका के रुप में आते हैं – "भगवान बुद्ध की तरह अपने चरित्र पर लगाये गये मिथ्य आरोपों को उन्होंने सह लिया । प्रभु यीशु की तरह उन्हें शूली पर चढा दिया गया । यह बहुत दुख की बात है, काशिवासियो, कि श्री माँ ने दोनों महान् पुरुषों से भी अधिक यातनाएँ झेली ।"[81] समाज स्त्री को अबला कहता है । एक अबला का यह उत्सर्ग देखना ही चाहिए । कर्ण के द्वारा श्री माँ के शव को अपमानित करते समय युवकों ने अपना रोष इस प्रकार प्रकट किया । वे प्राण देकर भी माता शीलभद्रा के शव की रक्षा करने के लिए तैयार थे । चाहे कर्ण हो, चाहे दुर्योधन, हम अपने कपिध्वज को झुकने नहीं देंगे । ऐसी समाज सेविका के लिए प्राण देने को भी प्रजा तैयार है । राजकुमारी गोमती भी कीरत की लडाई में सहभागिनी है । कीरत गोमती से कहते हैं कि - "मैंने सत्ताइस वर्षों की इस लंबी आयु में बार-बार देखा है कि संकट में न भगवान् का नाम-जप काम करता है, न ग्रहावरोधी अंगूठियों से कुछ सिद्ध होता है, न तो रुद्राक्ष की, स्फटिक मालाएं सहायक होती है, न तो तंत्र-मंत्र कुछ बदल पाते हैं, न तो बाबा, सिद्ध पुरुषों का आशीर्वाद कवच बन पाता है । बस सहायक केवल एक वस्तु होती है । वह है इच्छाशक्ति की दृढ़ता ।"[82]

सूरज काका का यह कथन – "मैं अपने रक्त की अंतिम बूंद तक राजेश्वर कीरत

की सेवा का व्रत ले चुका हूँ । आप यदि आज्ञा देंगे तो मैं अभी अपना शीशा उतार कर श्रीचरणों में रख दूँगा ।"[83] एक राजा के रूप में प्रजा का यह स्वीकृति महनीय है ।

आलोचक डॉ. राजेन्द्र खेरनार का कथन है कि – "कीरत की संघर्ष गाथा का दूसरा नाम है दृढ इच्छाशक्ति । उपन्यास में चित्रित कीरत पक्ष के सभी पात्र – रज्जुक, गोविन्द, गोमती, अनंत, गोपाल – कम अधिक मात्रा में दृढ़ इच्छाशक्ति के साधक हैं । इनके जीवन में एकाध प्रसंग ऐसा ज़रूर आया है कि जब वे हताश, उदास और निराश हो गये हों । परंतु अपनी दृढ इच्छाशक्ति के बल पर वे अपने लक्ष्य तक पहूँच ही जाते हैं ।"[84] यह इच्छाशक्ति अकेले लडने में सहायक होता है । और विजय भी प्राप्त होती है ।

डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी का यह कथन कितना सार्थक है कि – "कीर्तिवर्मा ही 'नीलाचाँद' की सबसे बडी शक्ति भी है और सीमा भी – चाँद भी और उसकी नीलिमा भी ।"[85] 'नीलाचाँद' एक नये प्रकाश पुंज के रूप में उपन्यास जगत में हमारे सामने उपस्थित है जिसका आधार इतिहास है । किंतु इतिहास के बीच से शिवप्रसाद जी आधुनिकता का खोज करते हैं । जिसमें एक राज्य की संगठन के सूत्र है, शक्तिशाली राज्य स्थापना के मंत्र है और एक संघर्षशील व्यक्ति का भावचित्र भी है ।

2.7.4 मूल्यांकन

शिवप्रसाद जी ने 'नीलाचाँद' में मध्यकालीन काशी के संस्कृति को वर्तमान परिदृश्य में लाने की कोशिश की है । कीरत और कर्ण जैसे मध्यकालीन राजाओं के ज़रिए शिवप्रसाद जी ने धर्म और अधर्म को प्रतीक के रूप को चित्रित करते हैं । उपन्यास में प्राचीन की सामग्रियों का प्रतिपादन होती है, लेकिन ऐतिहासिक उपन्यास का मक़सूद नहीं । उपन्यास में शिवप्रसाद जी अतीत के वर्तमान समय के साथ टकराते हैं ।

उपन्यास में अधर्मी राजा है - कर्ण । उस राजा ने ध्यानस्त देववर्मा की हत्या की, कलानेत्रियों का अपहरण किया । देववर्मा की पत्नी को चाहते हैं । इसी अत्याचारी कर्ण को उपन्यासकार वर्तमान परिदृश्य में प्रस्तुत करते हैं । इसके द्वारा आज की राजनति में प्रचलित गलत और गंदे रास्ते की ओर उपन्यासकार संकेत करते हैं । जनतांत्रिक व्यवस्था के इस काल में भी कर्ण जैसे अत्याचारी शासक स्वातंत्र्योत्तर भारत की नियति का अंग है ।

मूल्य विघटन के वर्तमान काल में स्वयं शिवप्रसाद जी नई प्रकाश किरण के रूप में कीरत जैसा नेता का चित्रण करते हैं । यहाँ उन्होंने कीरत के द्वारा इच्छाशक्ति से असंभव को संभव बना दिया है । कर्ण की सेना से प्रतिरोध करने में कीरत के साथ सब काशीवासी सम्मिलित है । क्योंकि कीरत जातीयता के भेदभाव को मिटाकर सभी एकसूत्र में पिरोकर राजसत्ता की मुख्यधारा से जोड़कर चलता है । प्रजा उसकी निधि है । उसके द्वारा कीरत सर्वस्व बनाता है । मध्यकालीन राजा कीरत को लेखक आज के संदर्भ में प्रस्तुत करते हैं । अतीत से वर्तमान में मिली यह राजा निश्चय ही प्रौढ़ की बात है ।

कीरत और उसके साथियों की घोर इच्छाशक्ति से विजय प्राप्त कर चुकी हैं । यहाँ हमें यह सिखाना है कि हम एक दूसरे से दूर होकर नहीं, बल्कि मिलकर, कंधे से कंधा मिलाकर ही परतंत्रता से बच सकते हैं । जन से सदा जुटे होने के कारण उनके लिए जनसाधारण प्राण देने के लिए तैयार थे । समकालीन संदर्भ में देखे तो ऐसा आदर्श शासक और प्राण देनेवाला जन अधूरी बात है । स्वातंत्र्योत्तर भारत की इस नियति को हमें स्वीकारना हैं । यहाँ उपन्यासकार की दृष्टि अतीत से होती वर्तमान तक एकसाथ दौड़ रही है । आज के युग में जातीयता के भेदभाव को पला नेताओं को हम देखते हैं । जनतांत्रिक भारत की यही नियति है ।

महिलाओं की सामाजिक सेवा का नमूना उपन्यास में मिलता है । 11वीं शताब्दी की शीलभद्रा ने समाज सुधार और राष्टीय चेतना के क्षेत्र में बडी भूमिका निभायी थी । उस ओर उपन्यासकार ने अपना ध्यान विशेष रूप से केन्द्रित किया है । स्त्री को अबला मानने के वर्तमान युग में भी ग्यारहवीं सदी के श्री माँ जैसा स्त्री पात्र का उत्साह हम देखते हैं । गोमती कीरत के लडाई में सहभागिनी है । इक्कीसवीं सदी के इस दौर में स्त्री शोषण का मुकाबला है । स्त्री को समाज में ऊँचा स्थान मिला था । उसमें उत्साह है फिर भी उपेक्षिता का रोल भोगना पडा।

उपन्यास के अंतिम वाक्य 'नीलाचाँद' की सार्थकता को रेखांकित करता है – "हर व्यक्ति के अन्दर एक आंगन है, एक तुलसी चौरा है, वैसे ही सबके छोटे-छोटे आकाश में एक नीलाचाँद भी होता है । ढकोसलों से नहीं, नियति को जानने वाले दांभिकों की भविष्य वाणियों से नहीं, तू खुद कालिमा में डूबकर अपने मन के आंगन में जगमगाता नीलाचांद देख लेगा, उसका नाम है अमोघ इच्छा-शक्ति ।"[86] यह इच्छाशक्ति नीलाचांद की चमक है ।

कर्ण की हार हर अत्याचारी शासक के लिए एक सभक है । वर्तमान के जनतांत्रिक युग में ऐसे अत्याचारियों के नियंत्रण में शासन कभी कभी फंस जाता है । इसपर अकंशु डालना ज़रूरी है । इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर शिवप्रसाद जी ने उपन्यास में कीरत जैसा शासक का चित्रण किया है । संस्कृति की रक्षा, प्रजा की रक्षा, धर्म की रक्षा के साथ-साथ कीरत विजय के सूत्र को भी खोजते हैं । कीरत पराधीनता से नहीं पतन से राष्ट्र को बचाते हैं । समकालीन संदर्भ में लिखा यह उपन्यास जनता के लिए विचारोत्तेजक है । उपन्यास में मध्यकालीन काशी की प्रस्तुति हुई है । लेकिन उपन्यास का एक अंर्तपाठ है और आज के संदर्भ में वर्तमान को भी मार्गदर्शन दे सकेगा । लेखक की यही अभिलाषा है ।

2.8 क्याप

2.8.1 भूमिका

मनोहरश्याम जोशी स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध लेखक थे । उनका लेखन इक्कीसवीं शताब्दी का हैं । उन्होंने समकालीन समय के विद्रूप, विसंगति और अतिरंजित अनास्था को परखने का काम किया । 'कुरु कुरु स्वाहा' (1980), 'कसम' (1981), 'हरिया हरकुलीस की कहानी' (1994), 'हमजाद' (1996), 'क्याप' (2001), 'कौन हूँ मैं', 'टा-टा प्रोफसर' आदि उनके प्रमुख उपन्यास हैं । पहला उपन्यास 'कुरु कुरु स्वाहा' (1980) से लेकर 'क्याप' (2001) तक की रचनायात्रा उसका उत्कृष्ट प्रमाण है । उनके उपन्यासों में वैविद्य देखते हैं । 'क्याप' उनके परवर्ती उपन्यास है ।

जोशी जी कम्यूनिस्टों के सोहबत में उठने बैठने था । राजनीति की निर्णायक भूमिका को वे पहचानते थे। 'क्याप' राजनीति को केन्द्र में रखकर लिखा उपन्यास है । सन् 1991 के बाद के दौर में हुए बदलावों को जिन उपन्यासों ने बिल्कुल समय के तेवर, समय के ढाँचे में पकडने की कोशिश की 'क्याप' उनमें प्रमुख है । 'क्याप' के बारे में उपन्यासकार की यही राय है कि – "मेरा उपन्यास जो कि मेरे अनुसार काफी सपाट है, लोगों के लिए पहेली बन जाता है ।"[87]

2.8.2 भावभूमि

'क्याप' की मूल कथा कथावाचक 'मैं' की कहानी है । पहाड़ी अंचल कस्तूरीकोट का पूरा इतिहास उपन्यास में है । उपन्यास की शुरुआत रहस्यमय ढिणमिणाण काण्ड़ पर कथावाचक के शिष्य कूर्माचली द्वारा लिखे कहानी का संदर्भ से होती है ।

'कस्तूरीकोट के इतिहास', 'भूगोल', 'हैरिसन की कहानी', 'दाज्यू खीमराम की कहानी', 'भारत तथा कम्यूनिस्ट पार्टी के इतिहास' आदि कथाएँ भी उपन्यास में है । उपन्यास में एक साथ कई कथाएँ हैं, जो आपस में जुडी हुए हैं ।

2.8.3 राजनीतिक संघर्ष

उपन्यास में कस्तूरीकोट यानी आज की वाल्मीकीनगर के आज़ादी के पूर्व और आज़ादी के बाद की तस्वीरें व्यक्त हुई है । उपन्यास की कथा कथावाचक 'मैं' द्वारा सुनाई गई है । कथानक का प्रारंभ डब्ल्यू.जी.हैरिसन नामक एक अंग्रेज़ के कस्तूरीकोट में आने से होता है । वे इक्कीसवीं सदी में कस्तूरीकोट में आया । यहाँ के राजाओं की मूर्खता का लाभ उठाकर अंग्रेज़ उनके राज्य में मंत्री बने और ईसाई धर्म का प्रचार की । ऐसे ही हैरीसन आया । इसी बीच हैरीश्सन नर्तकी हल्ली पर रीझ गये । वे उसे पाने के लिए नाडी ठहोलनेवाले स्थानीय ज्योतिषी दिवाकरज्यू की शरण में जाता है । दक्षिणा मांगकर दिवाकरज्यू ने हैरिसन को हल्ली तक पहूँचने की प्रयास को हल किया । इस देश में पंडे-पूजारियों की भूमिका कितनी कलंककारी रही । अपने पुराने संरक्षक सैण्डहर्स्ट के निर्देश से हैरिसन कस्तूरीकोट आया । वे कस्तूरीकोट रियासत के राजा का मित्र और मंत्री होते हैं ।

हैरिसन की शोषक प्रवृत्ति का उद्घाटन उपन्यास में है । प्रकृति को पूजनेवाले फस्कियाधार वासियों को हैरीसन ने प्रकृति को दुहना सिखाया । उसने उन्हें कस्तूरीमृग और मुनाल पक्षी को बन्दूक से मारना सिखाया । विलायती सुन्दरियों के इत्र के लिए कस्तूरी का और हैटो के लिए मुनाल के रंगीन परों का उसने यहाँ से निर्यात करवाया । यहाँ के राजाओं की मूर्खता का लाभ उठाकर अंग्रेज़ों ने उनके राज्य में राज किया । हैरीसन ने यहाँ से खूब माल कमाया । गाँवववालों को भी थोडी बहुत आमदनी हुई । राजा साहब को पता लगने पर सालाना

नज़राना देकर खुश कर लिया । दिवाकरज्यू उसके दीवान बन गये । हैरीसन के आने के पश्चात् यहाँ के लोग खुशहाली और भोगविलास को समझने लगे । किंतु उनकी मृत्यु के बाद पुनः दरिद्र होते हैं । हैरीसन के मृत्यु के बाद दिवाकरज्यू ने हैरिसन का खोला स्कूल बंद कर दिया । स्कूल को प्राइमरी से मिडिल बनाने के लिए हैरिसन जो पैसे छोड गया था, उसे भी उन्होंने लूट लिया । लोगों को ऐसा लगे कि वो फस्किया और जुगाडिया नहीं रह - क्याप बन गए ।

कस्तूरीकोट पहाड़ी अंचल है । वहाँ अधिकतर लोग डूम जाति का है या अछूत । अंग्रेज़ों का राज हो जाने में स्थानीय लोग उनके साथ हमदर्दी प्रकट की । कस्तूरीकोट के राजा के सेनापति मनोरथज्यू अंग्रेज़ों के साथ उठना बैठना था और अंग्रेज़ों का राज होने में सहायक सिद्ध होती है ।

कथानक का दूसरे कथाखण्ड में हैरिसन के बेटा हैनरी द्वारा मार्क्स का संदेश कस्तूरीकोट में पहूँचा । 'मैं' का काका खीमराम भी मार्क्स का संदेश लेकर कस्तूरीकोट आया। लेकिन उन दिनों स्थानिक निवासी गाँधीजी का संदेश हृदयंगम कर चुके थे । काका ने कस्तूरीकोट को कम्यूनिस्ट नहीं बना पाया । 'मैं' चरित्र गाँधी के संदेश के प्रति नकार का स्वर व्यक्त हुआ है । कम्यूनिस्ट विचारधारा के प्रति आग्रह दिखाई देता है – "गरीब होने का नाटक कर-कर के और सादगी के गुण गा-गा कर वह हम गरीबों को सिर्फ यही सिखा रहा है कि अपने नसीब से खुश रहो, अमीरों से छीन लेने की बात कभी मन में न लाओ । उधर मेरा वाला महात्मा यह कह गया है कि अरे गरीबों अपने नसीब से लडो, तुम्हारा यह नसीब किसी ऊपरवाले का नहीं, इन्हीं नीचे वाले, अपने को ऊँचा समझने वाले नीच अमीरों का दिया हुआ है । तो इनसे लड़ो और एक ऐसी दुनिया बनाओ जिसमें कोई अमीरी-गरीबी होगी ही नहीं, बस बराबरी ही बराबरी होगी ।"[88] इसी मार्क्स पर नायक मैं भी विश्वास रखते हैं ।

उपन्यास में कांग्रेसी, गाँधीवादी, मार्क्सवादी विचारधाराओं का अंकन है । भवानीदत्तज्यू कांग्रेसी नेता है । फम्कियाधार के बादशाह भवानीदत्तज्यू को कस्तूरीकोट में कांग्रेसी विचारधारा फैलाने के लिए 'मैं' का पिजाती का सहारी मिली – "राजनीति में सक्रिय हो जाने के बाद भवानीदत्तज्यू ने मेरे बौज्यू को अपना दाहिना हाथ बना लिया था । महात्मागाँधी के चेले होने के नाते उन्होंने मेरे बौज्यू समेत तमाम डूमों को एक प्यारा-सा नया नाम दे डाल – हरिजन । मानो मात्र इतने से ही हम उनके परिजन भी बन गये हों ।"[89] यहाँ कांग्रसियों के व्यवहार और उनकी नीतियों को व्यक्त करते हैं । भवानीदत्तज्यू काका का विरोध नहीं करते थे क्योंकि काका कमरेड पी.सी. जोशी के चेले थे । कमरेड पी.सी. जोशी जवहरलाल नेहरू के दोस्त थे । काका पर प्रभावित नायक मार्क्स का सिद्धांत कस्तूरीकोट में पहुँचाने में कोशिश करता है । लेकिन असमर्थ हुई ।

स्वतंत्रता के पहले ही देशी राजा जनता को लूटने का काम करते हैं । अपना राज कायम रखने में प्रयत्नरत है । स्वार्थी नेताओं का जिक्र उपन्यास में है – "भवानीदत्तज्यू और दूसरे ब्राह्मण हमारे हमदर्द बने केवल इसलिए घूम रहे हैं कि हमारे वोट पा सकें ।"[90] काका की यही राय है कि भारी लडाई खतम होने के बाद अंग्रेज़ी हम को आज़ादी देंगे । लेकिन तब भवानीदत्तज्यू जैसे अमीर लोग हमारी ही सहायता से हम पर राज करने की कोशिश करेंगे ।

राजनीतिक स्वार्थ के साथ-साथ घरेलू स्वार्थ भी देखते हैं । पिता की मृत्यु के बाद भवानीदत्तज्यू ने 'मैं' चरित्र का संरक्षक बना । इसके पीछे का यही कारण है कि मुफ्त रुप में घरेलू नौकर का नया जीवन । भवानीदत्त का चिट्टी लेकर नायक उर्बादत्त के पास गया और कहा कि, 'मैं डूम हूँ' उर्बादत्त ने कहा – 'हम ऐसी बातें नहीं मानते' । लेकिन उबादत्त के

पास मुफ्त रहने खाने के एवज में घर का काम भी करना पडा । कांग्रसी नेताओं की उस वैचारिकता को उद्घाटित किया है जिसमें वे दलित वर्ग की जनता को समानता का दर्जा देने की बात तो कहते हैं । लेकिन व्यवहार के रूप में खुद नहीं दे पाते हैं । राजनेताओं की कथनी और करनी के उद्घाटन यहाँ व्यक्त हुई है । कांग्रसी विधायक उर्बादत्त जोशी शूद्रों के वोटों से जितवाया था । इसके द्वारा समकालीन राजनीति में घुसा हुआ नेताओं की वास्तविकता का अंकन मिलते हैं । 'मैं' चरित्र को दलित होने की पीडा बार-बार आता है । उर्बादत्त ज्यू अपनी बेटी उत्तरा को ट्यूशन देने का काम 'मैं' पर सौंपा । इसी बीच दोनों प्रेम में फंसा । एक डूम का ब्राह्मण के प्रति प्रेम ।

समकालीन दौर में राजनेताओं की आपधापी और प्रतिद्वन्द्विता दिखाई पडती है । कम्यूनिस्ट नेता डाक्साब 'मैं' चरित्र से कहते हैं कि, – "इसी तरह अगर मैं तुम्हें उर्बादत्त को खुश करके कांग्रसियों के बीच जगह बन लेने की नेक सलाह देता आया हूँ तो इसलिए कि पार्टी तुम्हारे जैसे विश्वसनीय और प्रत्यथ्यन्नमति युवाओं को खुफिया कामों के लिए तैयार करती आयी है । आइन्दा तुम कभी कोई ऐसा काम न करो जिससे पुलीस की निगाह में आ जाने की या तुम्हारे कम्यूनिस्ट होने का भेद खुल जाने की ज़रा भी आशंका हो । हम तुम्हें कांग्रस में अपना इनफोर्मर और क्रातिकारी गतिविधियों में अपना कूरीयर बनाना चाहते हैं ।"[91] पार्टी के भीतरी खबरें मिलने के लिए मैं चरित्र बाकयादा कांग्रसी बन गये । आज के राजनीति में यह चाल ज़्यादा दिखते हैं । यह रणनीति परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है ।

राजनीतिक इशारों पर होनेवाले पुलीस अत्याचार का नशा उपन्यास में मिलता है । पुलीस द्वारा जनता का शोषण, पीडा एक प्रकार से शासकीय शोषण के अंतर्गत आता है। मैं पुलीस के इस अत्याचार का सबूत है । प्रेमिका उत्तरा की आत्महत्या के आरोप से पुलीस

उसे पकडा – "तो उन्होंने बेंत और लाठी के अन्यान्य प्रयोग मेरे शरीर के अन्यान्य हिस्सों पर करते हुए यातना-क्रम शुरू किया ।"[92] उसको बयान देने का मौका भी पुलीस नहीं देते । पुलीस यातना देते हुए थक चुके थे । उर्बादत्त जैसे बडा नेता के इशारे पर पुलीस यह सब करते हैं । नायक को दुनिया क्याप जैसे लगी । आज राजनीति में यह सब खूब चालते दिखाई देते हैं ।

भारतीय राजनीति में आरंभ से नेता और आम जनता के बीच भेद चला आ रहा है । यह विद्रूपता कभी खतम नहीं होती, विकास और समय के साथ बढता जा रहा है । उपन्यास में पैदायशी नेता उर्बादत्त का पुत्र स्वेच्छाचारिता व्यक्त करता है – "आप भीतर जाइस बाबू, इस नीच डूम से मैं निपट लूंगा ।"[93] पैदायशी नेता स्वार्थी और स्वेच्छाचारी है । उत्तरा का आत्महत्या का आरोप 'मैं' पर डालकर वे लोग उसे खूब मारते हैं ।

इसके बाद 'मैं' सभी विचारधाराओं को गालियाँ देते रहा था । मार्क्स विचारधारा के प्रति एक नकार सा व्यक्त किया – "मैं समझता था कि कम्यूनिस्टों को गरीबों के बीच और गरीबों की तरह रहना चाहिए । लेकिन पार्टी अमीर होती जा रही थी ।"[94] गरीबों को उनका दर्द समझने वालों की ज़रुरत है । लेकिन आज सब क्याप सा लगता है । कमरेड सेमिनारों में जा-जा कर मोटा रहे थे । उनमें से हर किसी ने अपना मानसिक संतुलन बनाये रखने का कोई न कोई तरीखा खोज निकाला है । लेकिन डाक्साब उसे समझाता है ।

क्रांति का पाठ जनता तक पहूँचाने के लिए फिर 'मैं' नायक कस्तूरीकोट में आश्रम खुला । उस आश्रम में भर्ती हुए लडकों का पढने लिखने का कार्य भी 'मैं' करते थे । रामध्यानु, हरकू, मेधातिथि जोशी आदि आश्रम के प्रभावशाली छात्र थे । आगे छापामार दल संगठित नेता बन गये रामध्यानु । हरकू शक्तिशाली मज़दूर संगठन बनाने की नेता और मेधातिथि

जोशी आई.पी.एस बना।

भ्रष्ट प्रशासन व्यवस्था के चलते होनेवाला अवैध खनन व भू माफियाओं को समकालीन राजनीति में देखते हैं – "मैंने देखा वाल्मीकी नगर उर्फ कस्तूरीकोट में माफिया युद्ध शुरू हो गया है । गैर कानूनी ढंग से जंगल-काटने, खनिज निकालने, जडी-बूटियाँ बेच देने और जंगलात की ज़मीनों पर कब्जा कर लेने का धंधा चल निकला है और आपस में गोलियाँ भी चलने लगी है ।"[95]गोली से खेली जा रही । इस होली में रामध्यानु का बडा बेटा मारा गया । किसी ने मेधातिथि के बहनोई की हत्या कर दी । ब्राह्मण मेधातिथि के साथ जोडकर खसिया हरकू माफिया बना ली है जो कानूनी से कहीं ज़्यादा और कानूनी उद्योग धन्धे चल रही है ।

खुदीराम ने 'मैं' के राजनीतिक कार्यों में मदद किया । रामध्यानु के गिरोह में शामिल होने में खुदीराम चलता है । बाद में उसके मौत का खबर सुना । माफियाओं ने मिलकर खुदी की हत्या की । खुदीराम के मृत्यु के बारे में रामध्यानु का कहना है कि, "खुदिया को पुलिसिया पिल्ले मेधातिथि और खसिया खबीश हरकू ने मिलकर मारा है । उनकी समझ में आ गया था कि आपका कम्प्यूटर-हम्प्यूटर सब जानने वाले वह भतीजा हम दलितों का भविष्य जैसा था । इसलिए खतम कर दिया सालों ने ।"[96] इसके बाद मेधातिथि और हरकू मिलकर बयान व्यक्त की कि, "खुदीराम को रामध्यानु ने मारा है और इसलिए मारा है कि स्थानिक दलितों में एक वही बचा था जो आगे चलकर उसके नेतृत्व को चुनौती दे सकता था ।"[97] जातिगत राजनीतिक संघर्ष का सच्चा चित्रण यहाँ मिलता है । राजनीतिक लडाई में मार्क्स की जगह अम्बेडकर का नाम जपनेवाली बडे नेता ने उनकी राजनीतिक शक्ति की हत्या करने के लिए यह कार्य किया । जातिगत राजनीतिक संघर्ष में कई दलित लोग पुलीस द्वारा मारे गये । साथ ही माफिया की लडाई में कई डूम लोग भी मारा ।

जिले बनाकर वोट जीतने की राजनीति के अंतर्गत बनाये गये जिले वल्मीकीनगर यानि कस्तूरीकोट में दूकानें लूटी, सरकारी वाहन फूंके, लोग हताहत हुए और मेधातिथि का तबादला कर दिया गया । इस तरह कस्तूरीकोट के क्रांतिकारी दल की ऐसी-तैसी करके गुण्डों का माफिया युद्ध शुरु हो गया । इस घटना से मिलमिलाया रामध्यानु राम-नाम जपनेवाले पार्टी में चला गया । संसद सदस्य का चुनाव लडने की टिकट भी मिल गई ।

हरकू और रामध्यानु जैसे दो गुण्डे ही चुनाव में खडे होते हैं । दोनों झूठी बातों से चुनाव जीतने का प्रयत्न करते हैं । उनके लिए क्रांति नये डकैती तैयार करने का है और गुण्डागर्दी चल रही हैं । बाद में रामध्यानु ने गुण्डागर्दी से चुनाव जीत गया। रामध्यानु की 'उत्तरा' राज बनवाने की कोशिश सफल । रामभक्त पार्टी ने मेधातिथि को कस्तूरीकोट के डिआई.जी बनाकर भेज दिया है । रामभक्त अंबेडकर की भक्तों को दबा सके ।

मेधातिथि के आते ही दलित फिर मुठभेडों से मारे जाने लगे हैं । जातिगत राष्ट्रीयता की नशा यहाँ देखते हैं । उपन्यास के आरंभ में ही उपन्यास की आंत की कथा का संकेत मिलता है – "फस्कियाधार नामक चोटी के रास्ते में स्थित ढिणामिणाण यानी लुढकते भैरव के मन्दिर के पास एक दूसरे की जान के प्यासे पुलीस डी.आइ.जी मेधातिथि जोशी और माफिया सरगना हरध्यानु बटलागी की लाशें पडी मिली ।"[98] पहला रहस्य यह है कि वे दोनों वहाँ क्या कर रहे थे ? दूसरा रहस्य यह है कि वे कैसे मरे ? डॉक्टर से अस्वाभाविक मृत्यु का संकेत नहीं मिलते हैं । ये दोनों दुश्मन हैं, जो एक अरसे से एक दूसरे को मारने की कोशिश में लगे हुए थे । इकट्ठा कैसे मर गये ? अगर सिर्फ मेधातिथि की लाश मिली होती तो समझ लिया जाता कि सरगाना की करतूत है । अगर सिर्फ सरगाना की लाश मिलती तो कहा जाता कि मेधातिथि की करतूत है। रहस्यमयी ऐसे कहानियाँ समकालीन दौर में निकलते हैं ।

उपन्यास के ब्लर्ब पर पुरुषोत्तम अग्रवाल ने लिखा – "जोशी जी के विलक्षण गद्य में कहीं गई यह 'फसक' (गप्प) उस अनदेखे को अप्रत्यक्षित ढंग से दिखाती है, जिसे देखते रहने के आदी बन गए हम जिसका मतलब पूछना और बूझना भूल चले हैं ..."[99] उपन्यास बीसवीं शताब्दी का दिल दहला देनेवाला दस्तावेज़ है । उपन्यास में मार्क्सवाद तथा भारतीय राजनीति के इतिहास को कथावाचक की कहानी के साथ अनावृत किया है । एक तरह से यह आज की जीवन परिस्थितियों के कोलाज के तौर पर हमारे सामने आता है । जिसमें बीसवीं सदी के अंत में मूल्यों और आदर्शों पर पैदा हुए संकट को बखूबी चित्रित किया है ।

2.8.4 मूल्यांकन

'क्याप' में ब्रिटीश भारत और समकालीन भारत की स्थितियों को आमने-सामने रखकर राजनीति की घृणित विडम्बनाओं का पडताल करते हैं । इसके लिए उन्होंने पहाड़ी परिवेश को कथाभूमि बनाया । उपन्यास घटनाप्रधान है । आत्मकथात्मक शैली में उपन्यास की रचना की । उपन्यास में कई छोटे आख्यान से कथा को गठन किया है । चरित्रों की झांकी आकर्षक है जैसे – हैरीसन-हल्लि हो, मेधातिथ - रामध्यानु हो या मैं और उत्तरा हो । हर चरित्र का अपना-अपना व्यक्तित्व है ।

उपन्यास के पहले टुकड़े में अंग्रेज़ कितना तेज़ दूर्त व्यापारी है । यह हैरीसन के माध्यम से उपन्यास में चित्रित करते हैं । प्रगति और विकास के तौर पर उसने वहाँ के जनता की मति भ्रष्ट की थी । यह मति भ्रष्टवाला पाठ भारतीय आज इक्कीसवीं शताब्दी में भी चल रहा है । देशी नेताओं ने अंग्रेज़ों का मदद किये हैं । दिवाकरज्यू, मनोरथज्यू इसका उत्तम उदाहरण है । दिवाकरज्यू दक्षिणावादी बनकर न निकले तो विदेशी सुन्दर होल्लियों को जानवरों की तरह नहीं भेज पाता ।

स्वार्थी कांग्रेज़ी नेता के रुप में भवानीदत्तज्यू, उर्बादत्त और उर्बादत्त का बेटा का जिक्र उपन्यास में है । स्वतंत्रता आन्दोलन के समय भवानीदत्तज्यू और उर्बादत्तज्यू झूठा आश्वासन देते जनसाधारण को साथ लेने की कोशिश करते हैं । लेकिन स्वाधीनता के बाद ये पूंजीपतियों जनसाधारण से दूर रखते दिखाई देते है । डूम जाति के वोट से जीत उर्बादत्त उत्तरा-मैं के प्रसंग में उसके विरुद्ध आवाज़ उठाते दिखाई देते हैं । नेताओं के कथनी और करनी में अंतर यहाँ देखते हैं । आज के समकालीन तौर में भी यही हम देखते हैं । उर्बादत्त की बेटी से प्रेम करते नायक को पुलीस खूब मारा । यहाँ जनता की रक्षा के लिए बनायी गयी पुलीस जनता से विद्रोह करती है । पूंजीपतियों के साथ रहकर पुलीस ने शासन किया । राजनीति के इस कटु यथार्थ को पहचानने से पाठकों को लगे कि किसी भी दल के नेता हो, सभी अपने स्वार्थ से काम करते हैं । कांग्रेसी उर्बादत्तज्यू, मार्क्सवादी डाक्साब इसका साबूत है ।

समकालीन राजनीति में माफिया युद्ध, भ्रष्टाचार, जातिगत संघर्ष, ऊँच-नीच भेद आदि का बखूबी चित्रण मिलते हैं । आइ.पी.एस मेधातिथि के साथ जोडकर खासिया हरकू ने माफिया बना ली है । इन माफियाओं ने भूमि, जंगल, खनिज, उद्योग, जटी-बूटी, व्यवसाय – सभी क्षेत्रों पर कब्जा करने का धंधा चलाया । ऐसी ही स्वतंत्रता के पहले भारत में हैरीसन ने भी किया । रामध्यानु ने दलित-राजनीतिक संघर्ष चलाया । जातिगत राजनीतिक संघर्ष में कईयों ने मारा – खुदीराम, मेधातिथि की बहिन, रामध्यानु का बडा बेटा इसका सबूत है । सबसे बडी विडंबना यह है कि गुण्डागर्दी से रामध्यानु ने संसद सदस्य बना और मेधातिथि ने डी.आइ.जी बना । स्वातंत्र्योत्तर भारत की यही नियति है ।

आलोचक कृष्णदत्त पालीवाल का कथन है कि – "क्याप आधुनिक - उत्तर आधुनिक भारत की राजनीति का नरक सामने लानेवाला उपन्यास है ।"[100] ठीक है कि

राजनीति में चली भ्रष्टाचार, शोषण, जातिगत संघर्ष, जातिभेद, गुण्डागर्दी, माफिया युद्ध आदि का सबूत है 'क्याप' । उपन्यास के आरंभ से ही दो लाशों का कदर नाटकीय है । मेधातिथि जोशी और माफिया सरगाना की लाशें गाँव में पडी । यहाँ पाठक प्रश्नों के चक्रव्यूह में घिरता हुआ पाते हैं । रहस्यमयी कहानी के भीतर कई रहस्यमयी कहानियाँ । मन में प्रश्न आता है कि इस नवपूंजीवादी संस्कृति में मानव के साथ ऐसी नीच ट्रेजडी क्यों ? कब तक चलेगा माफिया युद्ध ? धन से धुत हत्यारी राजनीति ? पराजय और व्यर्थता का यह बोध जोशी जी ने आज से पन्द्रह साल पहले चित्रित किया था ।

पहाड़ी भाषा में 'क्याप' का मतलब 'कुछ भी नहीं', 'अर्थहीन', जिसकी परिभाषा न दी सके । सभी आदर्शों, पवित्रताओं, धर्मों का अंत यहाँ होता है । क्याप में इस घृणित राजनीति को उजागर करने का प्रयास है। जनतांत्रिक समाज में यह सब चलते हैं । उपन्यासकार की यही आशंका है – "कांग्रेस ने अपने मूल सिद्धांत की बलि देकर जो स्वाधीनता प्राप्त की है वह 'क्याप' है ।"[101] सच तो यह है कि, स्वाधीनता जनसाधारण के लिए क्याप हुई । 'क्याप' शीर्षक यहाँ सार्थक बन गया है। स्वतंत्रता के पहले बुने सुनहरे सपनों का बिखराव स्वातंत्र्योत्तर युग में होगा । स्वातंत्र्योत्तर भारत की यही नियति है कि स्वतंत्रता 'क्याप' लगे । उपन्यास में हैरिसन के आने से पूर्व 'क्याप' हुई । लेकिन आज के इक्कीसवीं सदी में सब क्याप लगा । इस दृष्टि से देखे तो उपन्यास प्रासंगिक है ।

2.9 इन्हीं हथियारों से

2.9.1 भूमिका

अमरकांत स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य के सशक्त रचनाकार हैं । उन्होंने दसवीं

कक्षा में पढते समय सन् 1942 के भारत छोडो आन्दोलन में भाग लेने के लिए पढ़ाई छोड़ी और आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया । अमरकांत ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अपनी रचनाओं द्वारा संघर्ष का चित्रण किया । उनका उपन्यास है – 'सूखा पत्ता', 'ग्रामसेविका', 'आकाशपक्षी', 'काले उजले दिन', 'सुखजीवी', 'बीच की दीवार', 'काँटीली राह के फूल', 'खुदीराम', 'सुन्नर पाण्डे की पताह', 'इन्हीं हथियारों से' आदि ।

अमरकांत स्वतंत्रतापूर्व की हलचलों को और स्वतंत्रता के बाद के अनुभवों को भोग रहे थे । स्वतंत्रता के बाद भारत के सामाजिक और राजनीतिक मूल्यों में अत्यंत तेज़ी से बदलाव आये । उन बदलावों से कोई भी अप्रभावित हुए बिना नहीं रह सका । अमरकांत ने अपनी रचनाओं के माध्यम से इसका तीखा प्रहार किया । उनके उपन्यास 'इन्हीं हथियारों से' सन् 1942 की क्रांति का दस्तावेज़ है ।

'इन्हीं हथियारों से' में निकट अतीत का उल्लेख किया है । उपन्यास के बारे में लेखक की यही राय है कि – "यह रचना उत्तरप्रदेश के एक छोटे से जनपद पर केन्द्रित स्वाधीनता आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर लिखी गई है । सन् 1942 ई. में भारत छोडो जनक्रांति के दौरान कुछ दिनों के लिए बलिया में ब्रिटीश शासन समाप्त हो गया था । गाँवों में पंचायत सरकारें कायम हुई थीं । परंतु यह ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है, बल्कि उस आन्दोलन से जुड़े व्यक्तियों के निजी अनुभवों, ऐतिहासिक घटनाओं तथा बयालीस से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ती तक के समय की एक यथार्थवादी परिकल्पना है ।"[102] बलिया में जन्में अमरकांत इस आन्दोलन का भागीदारी और दर्शक भी है । इससे उपन्यास अधिक महत्व है ।

2.9.2 भावभूमि

सन् 1942 से लेकर आज़ादी की प्राप्ती तक की अवधि उपन्यास में संदर्भित

काल विशेष है । यह एक ऐतिहासिक उपन्यास नहीं बल्कि इतिहास को आधार बनाकर यथार्थवादी परिकल्पना की है । इनका शहर छोटा सा बलिया । सामान्य पात्र अपनी-अपनी निजी जीवन स्थितियों से जूझते हुए स्वतंत्रता संग्राम में शामिल होते हैं । उपन्यास के कथानक का आधार है – बलिया की धरती, वहाँ के विभिन्न वर्गों के लोग, उनका जुझारुपन और स्वतंत्रता चेतना । बलिया के स्वाधीनता संग्राम में भागीदार है – छात्र, छोकरे, डाकू, पहलवान, दूसरों के घर में चौका बरतन करनेवाली औरतें, वेश्या पुत्री आदि । आज़ादी की लडाई में भाग लेने के लिए युवक लोग भी शामिल है जिनमें नीलेश, दयाशंकर, गोवर्धन, नफीस आदि भी हैं । उपन्यास में कई उपकथाएँ समान्तर रूप से चलती हैं । नीलेश-नम्रता का प्रेम, ढेला-गोवर्धन, ढेला-दयाशंकर, भगजोगिनी-दामोदर आदि । ये प्रकरण प्रेम की पूर्णता प्राप्त नहीं करते ।

यह उपन्यास स्थानपरक नहीं बल्कि प्रवृत्तिपरक है । सारे मतभेद भुलाकर हिन्दुस्तान की जनता अंग्रेज़ों के जुल्म के प्रतिकार के लिए उठ खडी होती है । उपन्यास में जनता का यह प्रतिकार भारत छोडे आन्दोलन के जुलूसों, सभाओं और संकल्पों के माध्यम से बखूबी चित्रित हुआ है ।

2.9.3 राजनीतिक संघर्ष

'भारत छोडो' आन्दोलन में बलिया के निम्न और मध्यवर्ग के लोग मिलकर विदेशियों से लडते थे । यही इस उपन्यास का आधार है । बलिया के वकील सीतानाथ का पुत्र नीलेश, गोवर्धन, बडे सेठ का पुत्र, दयाशंकर, गरीब जुलाहे का लडका नफीस आदि सदा देश की आज़ादी और क्रांतिकारियों की बातें करते थे । गाँधीजी की आत्मकथा, क्रांतिकारियों की जीवनियाँ, कुछ उपन्यास और अन्य पुस्तकें पढ़ने से, और 'देवदास', 'अछूत कन्य' आदि

फिल्में से भी आज़ाद के संघर्ष के बीच आने का साहस उसमें हुई । स्वतंत्रता आन्दोलन के अवसर पर कांग्रस, कम्यूनिस्ट पार्टी तथा अन्य विचारों के लोग भी समाजवाद में विश्वास रखते थे ।

बलिया के आन्दोलन में गाँधीजी के विचार और सिद्धांत प्रबल थे । आरंभ में स्वाधीनता का पक्का ज्ञान साधारण लोगों को नहीं मिला था । वेश्य ढेला दयाशंकर की प्रेरणा से आज़ादी की बात सोचती है । आन्दोलन में कुर्बानी करना चाहती है । एक जगह ढेला की माँ श्यामदासी उससे पूछती है – "आज़ादी मिल गई तो रंडी-बेसवा को क्या मिलेगा ? तब तो मर्द और भी जुल्म करने को आज़ाद हो जाएँगे । तुम वतन की आज़ादी के लिए काम करना चाहती हो उन मरों के सिखाते से ! तुम बाहर निकलेगी तो मरे मर्द तुम्हें रंडी ही समझेंगे ।"[103] रंडी होकर भी ढेला स्वाधीनता प्रेमी नवयुवकों से संपर्क रहते थे । नवयुवक उसके पास पार्टी का रुपया ज़मा करते हैं चूँकि रंड़ि होने से उसपर पुलीस की निगाह नहीं पडती है । बलिया के दलित लोग भी आन्दोलन में शामिल होते हैं । दलित गोपालराम नेता सुरंजन शास्त्री से पूछता है कि – "और अछूतों के लिए आपकी क्या योजना है ? इस आज़ादी से हम अछूतों को क्या मिलेगा ?"[104] वह जानता है कि पूंजीपति और मज़दूर का भेद तो अलग किस्म का है । समाज में पूंजीपति और सामंत के खिलाफ किसान-मज़दूर एक हो सकते हैं । लेकिन शंका उठता है कि अस्पृश्यता के समाज में जनता के बीच एकता कैसे स्थापित की जा सकती है । स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीति के इस सवाल ने बहुत अधिक प्रभावित किया है । राजनीतिक पार्टियों में पनपते जातिवाद, भाईभतीजावाद की झलक उसकी बातें में मिलती है । गोपालराम के गाँव की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियाँ अत्यधिक भयावह और हताशा भरी है । उसका यह सवाल आज भी प्रासंगिक है ।

आज़ादी के आन्दोलन में नेता जनता को समझाते हैं, उनमें सद्भाव, सदाचार और महिलाओं के प्रति सम्मान उत्पन्न करते हैं । स्त्रियों को अपमानित करते आइंगार पांडे को सदाशय व्रत चेतावनी देता है कि – "हम गाँधीजी के सिद्धांतों को मानते हैं, इसलिए हर चीज़ शांति से सुलझाना चाहते हैं । हम इस शहर में रहते हुए ऐसा अन्याय बरदाश्त नहीं कर सकते ।"[105] देश और जनता के साथ विश्वासघात किये आदमी को दंड दिलाने में आन्दोलन का तैयार थे। ब्रिटीश हुकूमत हिन्दुस्तान के कंधों पर एक लाश के समान है, यह बलिया की जनता महसूस करती है । आज़ादी की अंतिम लडाई के लिए गाँधीजी के 'करो या मरो' का मंत्र देश के कोने-कोने में गूंज उठा । गाँधीजी लगातार 'हरिजन' में लिखकर आज़ादी की मांग कर रहे थे ।

सुरंजन शास्त्री जनता को आह्वान देते हैं कि, "आप क्षितिज की ओर देखिए, एक बडी आंधी आने के आसार है । यह आंधी गुलामी को नष्ट कर देगी, आतताइयों को मिटा देगी । आप इसे आज़ादी की आंधी कहिए, गांधी की आंधी कहिए, बुढ़िया आंधी कहिए, महाआँधी कहिए, मनुष्य के इतिहास की यह सुपरिचित आंधी है । हाँ यह प्राचीनतम आँधी है। मानव इतिहास में यह अक्सर आई है । जहाँ गुलामी है, जहाँ जुल्म है, अन्याय है, तानाशाही है, वहाँ बार बार आई है । मुक्ति की आँधी है यह । यह कभी फ्रांस में आई, कभी रूस में । अन्य देशों में भी यह आ चुकी है । सन् 1857 में भी हमारे देश में आई थी । आइए हम मिलजुलकर इसका स्वागत करें । इसको सफल बनाने में अपनी आहुती दे । अपना खून । अपनी कुर्बानी !"[106] सभी लोग आवेश में थे । देशभक्ति के जोश से सबके चेहरे समान थे । पूरे हिन्दुस्तान की जनता जुल्म के प्रतिकार के लिए उठ खडी होती है । भारत छोडो आन्दोलन की घोषणा के अगले ही दिन सुबह गाँधी, नेहरु, अब्दुलकलाम आज़ाद आदि बडे

नेता गिरफ्तार कर लिए गए थे । यह खबर समाचार पत्रों के माध्यम से बलिया में देर से पहुँची । आगे इस आन्दोलन का बागडोर शहर के युवक नेताओं के हाथ में थी । नौजवानों के नारों से सारा शहर गूंज उठता था ।

स्थानीय नेता रमाशंकर एक वृद्धा से कहते हैं कि, "जब देश आज़ाद हो जाएगा तो गरीबी दूर होगी, लोगों का दवा-इलाज होगा । गरीब ऊँचा उठेंगे, घी-दूध की नदियाँ बहेंगी ..."[107] लडाई में अधिकतर गरीब लोग शामिल थे । उनके लिए लडाई सुनहरे भारत की सपना थी । आचार्य नरेन्द्रदेव, चन्द्रशेखर, संपूर्णानन्द, दामोदर, मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद, शेख़ अब्दुल्ला आदि नेता इस आन्दोलन का नेतृत्व देते हैं । संपूर्णानन्द ने गंभीर स्वर में कहा था कि – "आप लोग तैयार रहिए हर कुर्बानी के लिए । यह आज़ादी की आखिरी लडाई है । हर स्तर पर ब्रिटीश सरकार से असहयोग करना होगा । अहिंसात्मक तरीकों से ऐसा आन्दोलन करना होगा, जो ब्रिटीश हुकूमत के तन्त्र को एकदम नाकाम कर दे । रेल, परिवहन एवं संचार संबंध पूरी तरह भंग और निरर्थक हो जाएँ, थाने, कचहरी, कार्यालय और स्कूल सब निष्क्रिय हो जाएँ । हाँ, इस विदेशी तंत्र को नष्ट करके उसकी जगह पर पूर्ण आज़ाद पंचायती प्रजातंत्र की स्थापना करनी होगी । इस समय यदि हम चूके तो सदा के लिए चूक जाएँगे .... ।"[108] भारत छोडो आन्दोलन में एकजुड़ होकर ब्रिटीश सरकार से लडने के लिए आह्वान दिया । सभी लोग स्वतंत्र मिलकर चैतन्य, स्फूर्तिमान और शक्तिशाली स्वतंत्र भारत का सपना देख रहे थे ।

लड़ाई को रोकने के लिए विदेशी हुकूमत बडी सख्ती से पेश आएगी, खूब लाठियाँ और गोलियाँ चलेंगी, जेलों में कोई जगह नहीं बचेगी । देश का बच्चा-बच्चा अंग्रेज़ी हुकूमत के खिलाफ गुस्से से उबल रहे हैं । गिरफ्तारी से जो लोग बच गए हैं, उनकी एक मीटिंग

बुलाई गई । नए-नए नौजवानों, किसानों, मज़दूरों की काफी काम किया है, आन्दोलन की असली रीढ यही है । सदाशयव्रत ग्रामवासियों को एकत्रित कर गाँधीजी के अहिंसात्मक सिद्धांत के अनुसार आन्दोलन चलाने की आह्वान दे दी । आन्दोलन में शामिल हुए निम्नवर्ग के लोगों की यही धारणा है कि देश आज़ाद हो जाएगा तो गरीबी दूर होगी और लोगों की तन्दुरुस्ती का भी काफी ख्याल रखा जाएगा ।

इस आंधी में महिलाएँ भी शामिल है । इसमें अधिकतर औरत होने के परंपरागत दुःखों के साथ-साथ अपने जीवन के अस्तित्व के लिए भी लड़ रही है । ढेला देह व्यापार कर रही है । धनसेरी और छकोडी अपने-अपने दूसरे पति के साथ रह रही है । भगजोगिनी का अपने पति बनवारी टी.वी. से मर जाते हैं । उसके बाद दामोदर की चालों में फंसकर गंधर्व विवाह करती है । पर रखैल बनने को मज़बूर होती है । लेकिन उन सब में अन्याय के प्रति नैसर्गिक प्रतिरोध का सहज गुण है ! स्त्री चरित्रों की ओर देखा जाए तो नम्रता को छोडकर अन्य सभी स्त्रियाँ, अशिक्षित व निम्नवर्गीय है । भारत छोडो आन्दोलन में ये महिलाएँ सहर्ष शामिल होती हैं । मध्यवर्गीय स्त्री पात्र है नम्रता, नीलेश से प्रेम करती है । नीलेश से प्रभावित नम्रता खादी पहनती है । अशिक्षित महिलाओं को पढ़ाकर उन्हें स्वावलंबी बनाती है । अनेक कष्ट सहने के बाद भी देश के लिए इन महिलाएँ त्याग और कुर्बानी करने को तैयार है । नेताओं के गिरफ्तारी के विरोध में नफीस, नीलेश, वीरेश, दयाशंकर, रमाशंकर, राममूरत आदि के नेतृत्व में हडताल करते हैं ।

‘अंग्रेज़ों, भारत छोडो
भारत माता की जय,
इन्कलाब ज़िन्दाबाद’

के नारे सभी ओर गूंज रहे थे ।

रमाशंकर भगजोगिनी की सास से बताता है कि, "देखो चाची, अपने को रो-धोकर कमज़ोर करोगी तो बहू और बच्चे भी हिम्मत छोड देंगे । जो बीत गया है, वह भूल जाओ । जैसा समय आए, वैसा करना चाहिए ..... यह हिम्मत का समय है, मेहनत का समय है .... आगे अच्छा जमाना भी आएगा । हम सब इसलिए तो लड रहे हैं । गाँधीजी क्यों जेल गए हैं ? नेहरूजी क्यों जेल में हैं ? यह समझ लो, जब देश को आज़ादी मिलेगी तो गरीबों का राज होगा । हिम्मत से काम लो ।"[109] इससे प्रभावित भगजोगिनी की सास भी जुलूस में भाग लिया । आज़ादी की लड़ाई पर सबको विश्वास है । आज़ादी की बात सुनकर भगजोगिनी की यही मन:स्थिति है – "देश को आज़ादी मिलने और गरीबों का राज होने पर कम-से-कम यह तो होगा ही कि सभी एक दूसरे पर विश्वास करेंगे और कोई किसी से धोखा नहीं करेगा ।"[110] वह जानती है कि तन मन का इतना सुख देकर दामोदर ने कभी आज़ादी की बात उससे नहीं कही और अंत में निर्मम होकर विश्वासघात करके यहाँ से चला गया । निरक्षर, वंचित और व्यक्त भगजोगिनी भी आज़ादी पर विश्वास करती है ।

हिन्दुस्तानी परिवार की पूरी इकाई इस आन्दोलन में शामिल है – पुरुष, स्त्री और बच्चे । छात्रों की ओर से चली आन्दोलन को दमन करने में पुलीस के नेतृत्व में लडाई होने लगी । अंग्रेज़ों ने यात्रा के लिए निकले जुलूसों को बंद करने के लिए रेल की पटरियाँ उखाड दी । अंग्रेज़ों के हिंसात्मक प्रतिशोध में भी जनता ने अहिंसा की रास्ता अपनाया । अनेक लोगों ने हंसते-हंसते जान दे दी, लेकिन दूसरों की जान नहीं ली ।

जिलों के विभिन्न थानों में सिपाही भेजने से पुलीस बल कम पड गया है । प्रशासन स्वयं डरा हुआ, इसलिए वह शहर की जनता में भय और आतंक फैला रहा है । शहर में धारा 144 लगी । सिपाहियों ने धारा 144 तोडने के जुर्म में अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलायी ।

इसका वर्णन उपन्यास में इस प्रकार दिया है – “एक नज़र पर बिना किसी चेतावनी के तडातड गोलियाँ । कोई चावल के ढेर पर मरा है, कोई ढेरों के बीच के रास्ते में । कोई सडक के बीच में पडा है, कोई नाली के किनारे । बाज़ार तो बन्द है, दूकानदार भाग गए है, सामान जहाँ के तहाँ पडे हैं ।”[111] अनेक निर्दोष लोग विदेशी हुकूमत की बर्बरता के शिकार हुए हैं । लोगों का यह विश्वास है कि हिम्मत से काम करने से जल्दी ही जल्दी गुलामी की जंजीरें टूट जाए ।

बलिया के लोग मिलजुलकर लड़ रहे थे । शराब, गांजा, भांग की दूकानें बंद करवा दी गई, तार काट दिये गये, रेल की पटरियाँ उखाड़ दी गईं । थानों और दूसरे सरकारी दफ्तरों पर अधिकार करके कागज़ पत्र नष्ट कर दिया । सभी ओर नारे गूंजने लगे ।

‘अंग्रेज़ों, भारत छोडो !

महात्मा गांधी ज़िन्दाबाद !

समाजवाद ज़िन्दाबाद !’

जिला मुख्यालय बलिया शहर की तरफ कूच करने में बौरिया थाना सबसे बडी बाधा बनी हुई । इस धोखेबाजी से नीलेश और राममूरत के नेतृत्व में लड़ाई शुरू की । वे सशक्त क्रांति के आह्वान देते हैं । लडाई की तीव्रता के फलस्वरूप बलिया शहर का आधा प्रशासन विद्रोहियों और आधे पर अंग्रेज़ सरकार का प्रशासन रहा ।

आलोचक हरिश्चन्द्र पाण्डे का कथन है कि, “यह उपन्यास इतिहास को नहीं वरन् इतिहास बनने की प्रक्रिया को पकड़ता है इसलिए यह कोई एकरेखीय राजनीतिक आख्यान नहीं वरन् सामाजिक और आर्थिक सीमांतो पर स्थित ऐसे दबे, कमज़ोर और छितरे-बितरे लोगों की गाथा है जो बृहत्तर हित में अपनी सारी कमज़ोरियों के साथ एक जुट हो जाते हैं ।”[112] बलिया की जनता ने थोड़ी संघर्ष के बाद आज़ाद कर लिया । वहाँ के अधिक लोग गरीब थे, जिनको भरपेट भोजन भी नहीं मिला । उनके लिए आज़ादी की स्वाद और भी मीठा है ।

आज़ादी उनके लिए आशा, उत्साह, आस्था तथा भविष्य की एक कल्पना है । बलिया की आज़ादी का स्वाद बलिया की सब्जी नेनुआ में भी उतर आया है – "अहा, नेनुआ खाने की आज़ादी और वह भी आज़ादी के समय का नेनुआ ! जैसे सदियों से तरस रहे हों नेनुआ के लिए । वैसे खाया था पहले नेनुआ, लेकिन वह गुलामी के समय का नेनुआ था – कडवा, बिना स्वाद का । अब तो सभी आज़ादी है, अब इस नेनुए में जो ताज़गी, स्वाद और मिठास होगी, उसके क्या कहने ।"[113] आज़ादी के अवसर पर जनता वहाँ के नेनुए में भी मिठास महसूस होने लगी । बलिया की आज़ादी किसी की दया या दान से नहीं, बल्कि असंख्य संघर्षशील जनता की कुर्बानी और बल-बूते से मिली है ।

आलोचक वेद प्रकाश की यही राय है कि, "इस उपन्यास में निराशा और मोहभंग नहीं, जीवन में भरपूर आस्था, उत्साह, आशा तथा भविष्य की एक कल्पना है जिसका आधार है – साधारण जनता का ब्रिटीश साम्राज्यवाद के विरुद्ध संयुक्त प्रतिरोध । इस कृति में आशा और आस्था के पीछे स्वाधीनता आन्दोलन है ।"[114] बलिया की आज़ादी जनता की सजग और सचेत कार्य है । ब्रिटीश हुकूमत की जड़ें जनता के प्रतिशोध से बुरी तरह हिल गई ।

उपन्यास में आज़ादी के तुरंत बाद का चित्रण भी है । आज़ादी के बाद नीलेश नेता अनिरुद्ध दास के आदेश से पढाई शुरु करता है और अपने भविष्य निर्माण में पूरी लगन की है । नम्रता को दिये वचन भी भूल जाता है । स्वतंत्रता आन्दोलन के ज़माने अपनाए गए अहिंसा, असहयोग, स्वावलंबन, सत्याग्रह आदि सिद्धांत अब उसके अन्दर नष्ट हो चुका है । स्वतंत्रता के बाद के सरकार में प्रशासन में ऐसा आदमी को देखते हैं कि जिनको स्वतंत्रता आन्दोलन से कोई संबंध नहीं । स्वतंत्रता आन्दोलन के समय में गोवर्धन देशसेवा छोड़कर

व्यापार में तरक्की करता है । लेकिन आज़ादी के बाद वे सत्ता से जुडे रहे ।

स्वतंत्रता प्राप्ती के समय हुए सांप्रदायिक दंगे का उल्लेख उपन्यास में मिलता है। हत्या, लूट और अपहरण की घटनाएँ हुई । ब्रिटीश हुकूमत के फूट डालो की नीति से देश स्वतंत्र होने के साथ-साथ देश का विभाजन भी हुआ । भारत-हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के रूप में बंटा गया । स्वतंत्रता की घोषणा के समय हुए इस विभाजन पर सभी को निराशा हुई। एक ही ज़मीन पर और एक ही हवा पानी में बढे-पले लोग विभाजित कर दिया । साम्राज्यवादियों की जाल में फंसकर स्वतंत्रता के समय देश में भयंकर सांप्रदायिक दंगा हुआ । राष्ट्र की इस नियति को हमें स्वीकारना पडा ।

उपन्यास बलिया के और देश के सामान्य जन के अंतस की संघर्ष गाथा है । सन् 1942 के भारत छोडो आन्दोलन में जनता नई आशाओं, उम्मीदों को लेकर आज़ाद भारत की तैयारियाँ करते हैं । लेकिन स्वतंत्रता की घोषणा के समय घोर सांप्रदायिक तनाव देश में होता है । आज लगभग साठ वर्ष बाद भी घोर सत्ता, लिप्सा, भ्रष्टाचार और सांप्रदायिकता का पर्दाफाश देखते हैं । इसी माईने में यह उपन्यास समकालीन सोच है ।

2.9.4 मूल्यांकन

राष्ट्रीय आन्दोलन में 'जालियावालाबाग काण्ड', 'असहयोग आन्दोलन', 'नमक सत्याग्रह' जैसे कई मील के पत्थर देख सकते हैं । उसमें अंतिम दौर का आन्दोलन बयालीस का 'भारत छोडे' आन्दोलन है । इन आन्दोलनों को मुख्य विषय के रूप में स्वीकार करके कई उपन्यास भी लिखे गए हैं । कुछ आन्दोलनकारी, बाद में साहित्यकार भी बन गये थे । उनके उपन्यासों में इतिहास और साहित्य का संगम देख सकते हैं । इन उपन्यासकारों की पंक्ति में यशपाल, विष्णुप्रभाकर, अमरकांत प्रमुख हैं । अमरकांत का उपन्यास 'इन्हीं हथियारों से'

'भारत छोडो' आन्दोलन पर केन्द्रित है । उपन्यासकार ने अपने जन्म शहर बलिया को मुख्य घटना स्तर के रूप में रखा है । बयालीस के आन्दोलन को आधार बनाकर दो हज़ार तीन में उपन्यास की रचना हुई । साठ सालों की दूरी उपन्यास में है ।

उपन्यास में इतिहास से लिये गये पात्रों को हम देखते हैं । नेहरू, गाँधीजी, नरेन्द्रदेव, संपूर्णानन्द, अब्दुलकलाम आज़ाद आदि इस कोटी में आते हैं । इन पात्रों के ज़रिए स्वाधीनता संग्राम आगे बढते हैं । उपन्यास में केवल उनके सिद्धांत का समावेश है । उपन्यास में नीलेश, वीरेश, सदाशयव्रत, सुरंजनशास्त्री, ढेला जैसे काल्पनिक पात्रों के ज़रिए ऐतिहासिक पात्रों का सिद्धांत का पालन करते हैं । बयालीस की क्रांति में बलिया के छात्र, छोकर, डाकू, पहलवान, व्यापारी,औरत, वेश्या जैसे समाज के हर जनवर्ग ने कर्मठता से भाग लिया । यहाँ अमरकांत इन पात्रों के माध्यम से यह याद दिलाते हैं कि सालों की कठिनाईयों से हमें स्वतंत्रता मिली है । सिर्फ बलिया की नहीं पूरे भारत की स्वतंत्रता भी । लेकिन अब यह स्वतंत्रता का मूल्य हम भूल चुके हैं । यह एक राष्ट्र की नियति है । सब कुछ भूलकर रहना अमानवीय है।

पेट के लिए असंख्य स्त्रियाँ जिस्म बेचने को मज़बूर हैं । बलिया की आज़ादी के लिए यहाँ के वेश्य ढेला भी आन्दोलन से जुडे रहे, और पूरी उम्मीद है कि गरीबी मिट सकने की । ढेला के अलावा भगजोगिनी, कनेरी जैसे वंचित स्त्रियों का जिक्र उपन्यास में है । यहाँ हम देखते हैं कि ये सभी स्त्रियाँ अपनी नियति पर दुःखित होकर नहीं बैठती । घर के चारदीवारों से बाहर निकालकर आन्दोलन में सक्रिय रही । उनकी यही आशा है कि आज़ादी मिलने पर स्त्रियों की उन्नति की परिस्थितियाँ उत्पन्न होगी । लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ती के अवसर पर ढ़ेला रोगग्रस्त दिखाई पड़ी । गरीबी के कारण अस्पताल जाने तक पैसा नहीं । ऐसी विडंबना है कि स्वतंत्रता प्राप्ती के बाद भी गरीबी मिटा न सके । नम्रता को दिये वचन नीलेश भूल जाते

हैं । उच्चकुल के पात्र है नम्रता, उसमें वह साहस देखती है कि नीलेश को विदा कहकर शादी करती है और शांती से जीवन बिताती है ।

उपन्यास में नीलेश, गोवर्धन, नेता अनिरुद्ध दास जैसे पात्रों को चारित्रिक पतन हुई हैं । स्वतंत्रता की लड़ाई में नीलेश जैसे आदर्शवादी, ओजस्वी युवक को देखते हैं । लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ती के तुरंत बाद सत्ता से जुडे रहने के लिए, स्वतंत्र अस्तित्व के लिए स्वार्थपरता और लोलुपता से वशीभूत होकर नीलेश बदलने लगा । अनिरुद्ध दास जैसे आदमी जुडकर सत्ता और सुविधा के लिए नैतिकता भूल चुके । यहाँ हम देखते हैं कि सत्ता और सुविधा के लिए अपनी राजनेता नैतिकता को भूल चुके । गोवर्धन के ज़रिए यहाँ उपन्यासकार ने राजनीति की ऐसी विडंबना को दिखाते हैं कि जो लोग आन्दोलन से हटा रहे वह आज राजनीति से जुडे रहते हैं । अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाते लोग आज राजनीति में नेता के पीछे चल रहे हैं । यही विडंबना स्वतंत्रता प्राप्ती की तुरंत बाद की राजनीति में देख सकते हैं । उपन्यास की समय दूरी के कारण आधुनिक युग की इस विडंबना को यथार्थ के रूप में उन्होंने चित्रित किया है । यह उपन्यास समकालीन राजनीति और व्यवस्था से नैतिकता और ईमानदारी की मांग करता है ।

दलित गोपालराम आन्दोलन के समय बार-बार सवाल उठाता है कि क्या आज़ादी मिलने पर दलितों की समस्या मिट जाएगी ? यह सवाल कितना प्रासंगिक है कि दलित समस्या पहले से ज़्यादा अब भी बरकरार है । गोपालराम इस उपन्यास का ऐसा पात्र है जो बहुत तीखी बातें कहता है । उसकी बातें तर्कहीन नहीं । आज की सामाजिक व्यवस्था का कटु यथार्थ है ।

प्रथम श्रवण में उपन्यास का शीर्षक कुछ भ्रमक होगा । 'हथियार' का मक्सद

तोप, बंदूक, चाकू, बम आदि से होगा । लेकिन यहाँ गांधियुग के स्वदेशी, स्वावलंबन, असहयोग, सत्याग्रह, स्त्री-शिक्षा, जातीय और सांप्रदायिक सद्‌भाव, अस्पृश्यता निवारण इन्हीं हथियारों से यह शब्द जुडा हुआ है । सभी जाति, धर्म के लोग एकजुड होकर स्वतंत्रता प्राप्ती के लिए निरंतर संघर्ष करते दिखाई पडते हैं । जनसंघर्ष के ताकत को मानकर भारतीयों को स्वतंत्रता देने क लिए अंग्रेज़ों को मज़बूर होना पडा । लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ती के तुरंत बाद एकजुड होकर रहना हम भूल चुके हैं । उपन्यास में इसका जिक्र भी मिलते हैं । साम्राज्यवादियों के जाल में फंसकर सांप्रदायिक दंगा होते हैं । हम समग्र भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत थे । लेकिन यहाँ धार्मिक एकता का भंग हुआ । इस स्थिति में समग्र भारत का सपना टूट गया । दो टुकडों में हमारे देश का बंटवारा हुआ । हमारे राष्ट्र की इस नियति को हमें स्वातंत्र्योत्तर युग में स्वीकारना पडा । सांप्रदायिक दंगों से आज भी मुक्ति नहीं मिली । इस दंगों को दूर रखना आवश्यक है, नहीं तो सालों की कठिनाइयों से मिली आज़ादी व्यर्थ बन जाएगी । राष्ट्र की इस नियति को जानकर हमें सचेत रखना आवश्यक है ।

उपन्यास का पात्र दयाशंकर का यह वाक्य – “हम लेग देश को आज़ाद करके अपने यहाँ ऐसा समाज बनाना चाहते हैं, जिसमें सभी को बराबर समझा जाए, गरीब-अमीर का भेद मिटे, स्त्रियों की इज्जत हो ।”[115] लेकिन यहाँ हम देखते हैं कि आज़ादी के तुरंत बाद यह सब निरर्थक बन जाते हैं । हमारे राष्ट्र की यही नियति है कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में गरीबी, दलित समस्या, सांप्रदायिक कट्‌ठरता, स्त्रियों पर अत्याचार जैसे समस्याएँ पहले से ज़्यादा दिखाई पड़ते हैं । आज के उत्तराधुनिक युग में भी ऐसी समस्याओं का हमें सामना करना पडा । उपन्यास में समकालीन सोच है, इसलिए यह उपन्यास प्रासंगिक है ।

संदर्भ सूची

1. भीष्म साहनी – मेरे साक्षात्कार – पृ. 163

2. भीष्म साहनी – आज के अतीत – पृ. 228

3. भीष्म साहनी – तमस – पृ. 44

4. वही – पृ. 122

5. वही – पृ. 121

6. वही – पृ. 168

7. मधुरेश – हिन्दी उपन्यास का इतिहास – पृ. 155

8. आजकल – अगस्त 2015 – पृ. 13

9. भीष्म साहनी – तमस – पृ. 223

10. वही – पृ. 253

11. कृष्णा सोबती – सोबती एक सोहबत – पृ. 373

12. वही – पृ. 374

13. वही – पृ. 161

14. वही – पृ. 377

15. वही – पृ. 96

16. वही – पृ. 217

17. वही – पृ. 216

18. मधुरेश – हिन्दी उपन्यास का इतिहास – पृ. 198

19. कृष्णा सोबती – ज़िन्दगीनामा – पृ. 9

20. वही – पृ. 17

21. श्री परमानंद श्रीवास्तव – उपन्यास का पुनर्जन्म – पृ. 87

22. कृष्णा सोबती – ज़िन्दगीनामा – पृ. 392

23.वही – पृ. 192

24. कमलेश्वर – जलती हुई नदी – पृ. 95

25. कमलेश्वर – मेरे साक्षात्कार – पृ. 114

26. कमलेश्वर – कितने पाकिस्तान (कवर पृष्ठ से)

27. कमलेश्वर – कितने पाकिस्तान – पृ. 106

28.वही – पृ. 52

29. वही – पृ. 53

30. वही – पृ. 93

31. वही – पृ. 179

32. वही – पृ. 320

33. वही – पृ. 128

34. वही – पृ. 305

35. प्रदीप माण्डव – नव उत्तरगाथा – पृ. 87

36. कमलेश्वर – कितने पाकिस्तान – पृ. 363

37. प्रदीप माण्डव – नव उत्तरगाथा – पृ. 112

38. कमलेश्वर – कितने पाकिस्तान – पृ. 153

39. भगवतीचरण वर्मा – भूले बिसरे चित्र – पृ. 310

40. वही – पृ. 320

41. वही – पृ. 385

42. डॉ. नरेन्द्र मोहन – आधुनिक हिन्दी उपन्यास – पृ. 198

43. भगवतीचरण वर्मा – भूले बिसरे चित्र – पृ. 464

44. वही – पृ. 546

45. वही – पृ. 460

46. शशिभूषण सिंहल – भारतीय स्वतंत्रता और हिन्दी उपन्यास – पृ. 99

47. श्रीलाल शुक्ल – मेरे साक्षात्कार – पृ. 127

48. श्रीलाल शुक्ल – रागदरबारी (फ्लेप से)

49. वही – पृ. 17

50. वही – पृ. 12

51. वही – पृ. 32

52. वही – पृ. 31

53. वही – पृ. 102

54. वही – पृ. 148

55.वही – पृ. 78

56. अखिलेश – तद्भव – पृ. 116

57. श्रीलाल शुक्ल – रागदरबारी – पृ. 335

58. रामदरश मिश्र – हिन्दी उपन्यास एक अंतर्यात्रा – पृ. 252

59.वही – पृ. 333

60. वही – पृ. 318

61. यशपाल – सिंहावलोकन, भाग -४ – पृ. 13

62. यशपाल – मेरी तेरी उसकी बात – समर्पण

63. वही – पृ. 26

64. वही – पृ. 31

65. वही – पृ. 402

66. वही – पृ. 287

67. वही – पृ. 418

68. वही – पृ. 418

69. वही – पृ. 466

70. मधुरेश – क्रांतिकारी यशपाल : एक समर्पित व्यक्तित्व – पृ. 142

71. यशपाल – मेरी तेरी उसकी बात – पृ. 568

72. शिवप्रसाद सिंह – मेरे साक्षात्कार – पृ. 137

73. शिवप्रसाद सिंह – नीलाचाँद – सिर्फ एक मिनट् से

74. शिवप्रसाद सिंह – नीलाचाँद – पृ. 118

75. वही – पृ. 37

76. वही – पृ. 447

77. वही – पृ. 16

78. वही – पृ. 56

79. वही – पृ. 118

80. वही – पृ. 147

81. शिवप्रसाद सिंह – नीलाचाँद – पृ. 396

82. वही – पृ. 449

83. वही – पृ. 399

84. डॉ. राजेन्द्र खैरनार – शिवप्रसाद सिंह का उपन्यास साहित्य – पृ. 141

85. पांडेय शशिभूषण शीतांशु – शिवप्रसाद सिंह स्रष्टा और सृष्टि – पृ. 201

86. शिवप्रसाद सिंह – नीलाचाँद – पृ. 645

87. कुसुम लता मलिक – गप्प का गुलमोहर : मनोहरश्याम जोशी– पृ. 340

88. मनोहरश्याम जोशी – क्याप – पृ. 36

89. वही – पृ. 35

90. वही – पृ. 45

91. वही – पृ. 67

92. वही – पृ. 84

93. वही – पृ. 93

94. वही – पृ. 107

95. वही – पृ. 120

96. वही – पृ. 127

97. वही – पृ. 127

98. वही – पृ. 8

99. मनोहरश्याम जोशी – क्याप – (ब्लर्ब से)

100. कुसुम लता मलिक – गप्प का गुलमोहर : मनोहरश्याम जोशी – पृ. 71

101. मनोहरश्याम जोशी – क्याप – पृ. 38

102. अमरकांत – इन्हीं हथियारों से – (पृष्ठ से)

103. अमरकांत – इन्हीं हथियारों से – पृ. 51

104. वही – पृ. 83

105. वही – पृ. 142

106. वही – इन्हीं हथियारों से (कथासंदर्भ)

107. वही – पृ. 242

108. वही – पृ. 153

109. वही – पृ. 296

110. वही - पृ. 297

111. वही - पृ. 362

112.कथाक्रम – जनवरी-मार्च 2004 – पृ. 97

113.अमरकांत – इन्हीं हथियारों से – पृ. 436

114.हंस – जुलाई-सितंबर 2006 – पृ. 48

115.अमरकांत – इन्हीं हथियारों से – पृ. 44

अध्याय – ३

पारिवारिक - सामाजिक नियति

स्वतंत्रता के पूर्व के उपन्यासों में सामाजिक उद्धार का स्वर मिलते हैं । स्वातंत्र्योत्तर काल में पारिवारिक सामाजिक क्षेत्र में बदलाव आ रहे है । स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में पारिवारिक सामाजिक स्तर पर एक ओर विकास हुआ तो दूसरी ओर पारिवारिक संघर्ष, आर्थिक असमानता, स्वार्थ, जीवन संघर्ष की जटिलता, नज़र आते हैं । इसके साथ-साथ अविश्वास का पनपना, आत्मकेन्द्रित जीवन दृष्टि, निषेधात्मक जीवनबोध, नये पुराने आदर्शों और सिद्धांतों का द्वन्द्ध, शहरीकरण, संयुक्त परिवार का विघटन आदि समस्याओं का विकराल रूप देखते हैं । स्वाधीनता के साथ ही सामंती व्यवस्था का अंत हो चुका । फिर भी मानसिक जगत् में सामंतवाद की भावना अब भी शेष है । 'अमृत और विष' (अमृतलाल नागर), 'ढाई घर' (गिरिराज किशोर), 'दीवार में एक खिडकी रहती थी' (विनोदकुमार शुक्ल) और 'कलिकथा वाया बाइपास' (अलका सरावगी) आदि साहित्य अकादेमी पुरस्कृत उपन्यासों में पारिवारिक सामाजिक नियति का सशक्त चित्रण मिलता है । इन सभी उपन्यासों में इसका अलग अलग चित्रण मिलता है । 'अमृत और विष' में पारिवारिक संघर्ष, 'ढाई घर' में स्वतंत्रता के पूर्व और बाद के सामंती दशा, 'दीवार में एक खिडकी रहती थी' में आर्थिक संघर्ष और 'कलिकथा वाया बाइपास' में स्वतंत्रता पूर्व और बाद के सामाजिक स्थितियों को सशक्त ढंग से चित्रित हुआ है ।

3.1 अमृत और विष

3.1.1 भूमिका

अमृतलाल नागर स्वाधीन भारत के रचनाकार हैं । वे एक स्वतंत्रता सेनानी हैं।

आज़ाद भारत को उन्होंने जिया है, भोगा है और उस समाज के सभी परिवर्तनों, मूल्यों को परखा है । उस परिप्रेक्ष्य में स्वतंत्र भारत का सजीव चित्रण किया है । उनका प्रसिद्ध उपन्यास है 'महाकाल', 'बूँद और समुद्र', 'सुहाग के नूपुर', 'सेठ बांकेमल', 'गदर के फूल', 'शतरंज के मोहरे', 'अमृत और विष', 'नाच्यौ बहुत गोपाल', 'सात घूँघट वाला मुखडा', 'बिखरे तिनके', 'करवर', 'अग्निगर्भा', 'पीढियाँ', 'मानस का हंस', 'खंजन नयन', 'एकदा नैमिषारण्ये' आदि ।

नागर जी शरत् बाबू से बडे प्रभावित रहे हैं । एक बार शरत् बाबू ने नागरजी से कहा था कि – "जो लिखना सो अपने अनुभव से लिखना ।"[1] यही उनके उपन्यास का मूल मंत्र है । जीवन के बारीक से बारीक तंतुओं को ग्रहण कर मानवीय मनोवृत्तियों का ताना बाना बुना दिया है । मानवीय ज़िन्दगी का ऐसी उत्तम कृति है नागर जी का उपन्यास 'अमृत और विष' (1966) । 'अमृत और विष' नागर जी का मध्यवर्ती उपन्यास है । उसन्यास की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमें उपन्यास के भीतर उपन्यास है । उपन्यास का नामकरण सुमित्रानंदन पंत ने किया था ।

3.1.2 भावभूमि

'अमृत और विष' की कथा अत्यंत विस्तृत तथा व्यापक सामाजिक जीवन को केन्द्र में रखकर आगे बढती है । यह कथा दोहरे कथानक को लेकर चली है, फिर भी दोनों कथानक एक दूसरे से अलग नहीं होते पाये हैं । पहले कथानक का संबंध उपन्यास के केन्द्रीय पात्र अरविंद शंकर से है, जो आत्मकथात्मक है । जिसमें उनके पूर्वजों का इतिहास, उनके वर्तमान जीवन, परिवार तथा उनके अपने मानसिक उद्वेलन की कथा है ।

उपन्यास का दूसरा कथानक अरविंद शंकर द्वारा रचित उपन्यास से है । इस

उपन्यास का केन्द्र लखनऊ शहर का एक मोहल्ला है । राजा केशोराय की बिरादरी इस उपन्यास की समस्त घटनाओं का केन्द्र बिन्दु है । यह बिरादरी मुहल्ले के मध्यवर्गीय परिवारों से संबंधित युवकों के सारे क्रियाकलापों का एक मात्र स्थान है । उपन्यास का नायक युवकों के नेता रमेश है । रमेश और रानीबाला के अंतर्जातीय विधवा विवाह, बिरादरी के संबंध में युवक-बुजुर्गों का संघर्ष, इस संघर्ष के उपरांत उत्पन्न सांप्रदायिक दंगा आदि कथा को आगे बढ़ाते हैं । उपन्यास में विक्टोरिया राज से लेकर स्वातंत्र्योत्तर युग तक की समाज का यथार्थ चित्रण मिलता है ।

3.1.3 पारिवारिक संघर्ष

'अमृत और विष' में लेखक ने अरविंद शंकर के माध्यम से तत्कालीन युग के पारिवारिक सामाजिक संघर्ष का यथार्थ चित्रण किया है । उपन्यास का केन्द्रीय पात्र है अरविंद शंकर । वे मध्यवर्गीय समाज का प्रतिनिधि हैं । उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया, जेल गये, कठिन से कठिन यातनायें सहीं, परतु बदले में इसका उन्हें कोई मूल्य नहीं मिला । यहाँ स्वतंत्र भारत का लेखक अपनी जीवन संघर्ष को झेलने के लिए विवश है ।

स्वतंत्र भारत के लेखक हैं अरविंद शंकर । उनकी षष्ठिपूर्ती के अवसर पर उनके सम्मान बडी धूमधाम से आयोजित है । मंत्री, राजनीतिक नेता तक वहाँ शामिल हैं । यह उनके लिए खुशी का क्षण है । लेकिन उनके मन में एक रचनाकार के रूप में हुए कठोर संघर्ष, दुख की याद आती है । ऐसी अवसर पर भी शांत और स्वस्थ करने के बजाय और अधिक अशांत और उद्विग्न बना देता है – "तन के ढेले पर लदा हुआ यह जीवन का भारी बोझ़ खींचते मेरे प्राणों का भूखा अशक्त भैंसा अब बेदम होकर जेठ की चिलचिलाती धूप में तपती हुई सड़क पर गिर पड़ा है, नियति की चाबूकों से उत्तेजित होकर भी उसमें उठने की ताब नहीं रही ।"[2] उन्होंने अपने लेखन के प्रारंभिक काल में जो सपने देखे थे, वे सब अब व्यर्थ लगते हैं । समाज

नहीं बदला, बदलने के लिए जिस आर्थिक और सामूहिक संघर्ष की आवश्यकता होती है, वह पूरी नहीं हो पायी । मध्यवर्गीय ज़िन्दगी की निसंगता से वह समाज भी प्रभावित हो जाता है ।

अरविंद शंकर का संबंध उनके पारिवारिक जीवन से हैं । वे अपने परिवार के मुखिया के रूप में सामने आते हैं । वे अपने पारिवारिक जीवन से असंतुष्ट हैं । एकमात्र उनकी पत्नी माया से ही उनको सहयोग और सहाय मिला है । उनके अपने सगे संबन्धियों उनको छोडकर अलग-अलग रहते हैं । जीवन के आर्थिक संकट उनके पारिवारिक जीवन को असंतुलित कर देता है । उन्हें जितनी चिंता ससुराल में दुखी अपनी बडी लडकी की है उतनी ही क्षय रोग से ग्रस्त अविवाहित छोटी लडकी वरुणा की । बड़ा पुत्र भवानी शंकर उनसे अलग रहता है माँ-बाप के प्रति लापरवाह है । छोटा पुत्र उमेश के प्रति अरविंद शंकर को कुछ आशाएं भी है । परंतु जीवन के कटु अनुभव उन्हें इस ओर से पूरी तरह आश्वस्त नहीं होने देते। वे अच्छी तरह जानते हैं कि यह चौथी संतान भी अपने अयोग्य पिता को अधिक सहायता न दे सकेगी । भीतर ही भीतर वे बहुत अशांत हैं । उमेश ने आइ.ए.एस होकर पिता की आज्ञा के बिना एक आइ.सी.एस सरकार के सचिव की लाडली पुत्री से शादी की और पिता से अलग रहते हैं – "वाह सी स्वार्थी दुनिया ! स्वार्थ के लिए बेटा बाप को भी त्याग कर सकता ।"[3] नागर जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से संयुक्त परिवारों के विघटन का चित्रण किया है । आधुनिक समाज में मानव एकांगी परिवार चाहते हैं ।

भवानीशंकर और उषा अंतर्जातीय विवाह करते हैं। इसके बाद उषा के सामने अपने घर का द्वार बन्द हो चुके । शादी के बाद भवानी के पढ़ाई में रुकावट आयी । अच्छे करियार के बारे में सोचा भी नहीं सका । बाद में भवानी अपने पत्नी को दोषी मानता है । इस अवसर पर भी अरविंद शंकर उषा को आश्रय देते हैं । भवानीशंकर का दांपत्य असफल हो

जाता है । ये सब अरंविद शंकर को बहुत परेशान करते हैं । उनकी बेटी वरुणा का प्रेम एक मुसलमान युवक से होते हैं । आखिर वह गर्भिणी हो जाती है । अरविंद शंकर बहुत बेचैन हो जाते हैं । उमेश का आइ.ए.एस पद उनके लिए खुशी की बात है – "क्या किया जाय, हमारे जीवन में परिस्थितियों के संयोग ही कुछ ऐसे बैठे हैं कि एक बेटे की यशोगाथा के साथ-साथ दूसरे बेटे की कलंक गाथा अमृत और विष के समान प्राणों में घुलती है । हम इस समय सौभाग्यशाली है, किंतु अभागे भी है । .... लेकिन ये भाग्य आखिर है क्या ? क्या सचमुच विधाता का विधान नाम की कोई वस्तु है ?"[4] परिस्थितियाँ बदलती रही है । सुख और दुःख जीवन के दो कण अमृत और विष के समान ज़िन्दगी में दोहराता है । बेटे उमेश की शादी का मात्र निमंत्रण पत्र ही उन्हें प्राप्त होता है ।

अरविंद शंकर की यही सोच है कि जो लोग स्वतंत्रता के लिए लड़ मरे, अपना सर्वस्व न्यौछावर किया, वे उपेक्षित कर दिये गये । ऐसी अवसर पर ईमानदार आदमी का जीवन संकट में पड गया है । मनुष्य की अमानवीय स्थिति को प्रकट करते हुए लिखते हैं – "जहन्नुम में जाय ये बेपेंदी की सरकार और उसके कर्णधार । इन्होंने चालीस करोड आदमियों को कुत्तों का सा जीवन बिताने पर मज़बूर कर रखा है । इन्होंने व्यक्ति का आत्माभिमान नष्ट कर दिया है । अंग्रेज़ी राज में कम से कम हम तप तो लेते थे । मगर अब ..... । पिछले पचास पचपन वर्षों में धीरे-धीरे करके हमने एक शक्ति अर्जित की थी । अनेक बमकाण्ड हुए, अनेक सामाजिक क्रांतियाँ आयीं, त्याग और तपस्या का महत्व बढ़ा पैसेवाले तथाकथित बडे आदमियों की जगह निस्वार्थ देशवासियों और ईमानदार व्यक्तियों की साख बढ़ी ...... लेकिन आज सब उलट गया ।"[5] जिन मूल्यों के लिए स्वाधीनता चाहता था वे मूल्य वर्तमान समाज में कहीं देखने को नहीं मिलते ।

स्वतंत्रता के इतने सालों के बाद भी उन्हें अपने परिवारों को आगे बढ़ाने में कठिनाइयाँ आती है । अपने आर्थिक संकट को दूर करने के वजह से लेख्रक बना । फिर भी यह समस्या रुबरु आती है । उन्हें लगते हैं कि सारा जीवन ख्रोख्रला हो गया, न कुछ दिया न लिया । ये सैतीस अडतीस छोटी बडी किताबें, जिन्हें पूरे निष्ठा और तन्मयता के साथ रचा, अब उन्हें बेकार का श्रम मालूम पड़ती हैं । पूरी ईमानदारी से जीवन बिताये अरविंद शंकर को सब बातें गौण लगती है ।

प्रारंभ से ही अरविंद शंकर के तीनों बेटे पिता से अलग रहते हैं । संतानें बडे-बडे काम में है लेकिन संतानों की सहायता उन्हें प्राप्त नहीं । उन्हें अपनी आयु में विश्राम करने की अवसर भी नहीं मिला । यहाँ अरविंद शंकर प्रतिकूल परिस्थितियों में भी हिम्मत नहीं हारता, उनको कहीं न कहीं प्रकाश की किरण दिख्राई देती है । अरविंद शंकर का यह कथन – "मैं अपने बच्चों को वह सब कुछ न दे सका, जो आज के नौजवान चाहते है ।"[6] सच है कि आर्थिक संघर्ष से जूझते अरविंद शंकर अपने संतानों के इच्छा पूरा करने में असफल हो गये । संतानें पिता की शक्ल से ही घृणा करते हैं । इसलिए वे अलग रहते हैं । बेटा उमेश रिश्वत लेने के अपराध को सह न पाने के कारण आत्महत्या कर लेता है । धन कमाना ही उमेश के जीवन का लक्ष्य है । बिना अंकुश का अर्थ मोह उसके जीवन के पतन का कारण बन जाता है । रिश्वत लेते समय रंगे हाथ पकड़ा जाता है । और आत्महत्या ही उसका अंतिम सहारा बन जाता है ।

अरविंद शंकर द्वारा लिखित उपन्यास में सामाजिक तथा पारिवारिक जीवन की घटनाएँ हैं । ये कथा लेख्रक के अपनी जीवन यथार्थ की व्यापक रुप पाता है । इस उपन्यास का प्रारंभ लख्रनऊ नगर के एक मुहल्ले से होता है । मुहल्ले के सभी युवक मध्यवर्ग और निम्न

मध्यवर्ग के परिवारों से है । युवकों का नेता रमेश भंगड पुरोहित पुत्ती गुरु का लडका है । रमेश अपनी बहिन मन्नों का विवाह की भाग दौड में पड़ोसी रद्धूसिंह की बाल-विधवा लडकी रानी बाला से निकट आते हैं । नगर में महाबाढ़ के अवसर पर रमेश और उसका मित्र-वर्ग बाढ़ पीडितों की मदद करते हैं । रमेश अपने बाढ-ग्रस्त पिता के प्राणों की भी रक्षा करता है । 'इंडिपेन्डेन्ट पत्र' के संपादक श्री आनन्दमोहन खन्ना रमेश से प्रभावित उसे अपना सहयोगी बना लेते हैं ।

रमेश रानीबाला से विवाह करने का निश्चय कर लेता है । लेकिन पिता का सहयोग उसे नहीं मिला । रानीबाला के पिता रद्धूसिंह ने अपने पिता के ज़माने में अच्छे दिन देखे थे । पिता की मृत्यु के पश्चात् गृहस्थी चलाना पडता है । लेकिन वे असमर्थ हो जाते हैं । उसे नौकरी करना रुचिकर नहीं है । रानीबाला अपने परिवार के वातावरण और पिता रद्धूसिंह की निष्क्रियता पर बहुत दुःखी रहती है । अधेड़ अवस्था में भी रद्धूसिंह ने दूसरा विवाह किया था । सौतेली माँ और पिता के पारस्परिक तनावपूर्ण संबंध रानीबाला को और भी पीडित करते हैं । परिवार की विषमेतर परिस्थिति को देखकर वह स्वयं अर्थोपार्जन का प्रयास करती है ।

रमेश और रानी का विवाह का विरोध दोनों परिवारवालों की ओर से है । केवल खन्ना-दंपति का मात्र सहयोग उन्हें मिलता है । विवाह के उपरांत रमेश को अपना घर छोड देने के लिए विवश होना पडता है । वह रानीबाला के साथ अलग एक किराये के मकान में अपनी गृहस्थी का सूत्रपात करता है । परिवार से अलग रहते हुए भी रानीबाला अपना तनख्वाह का एक हिस्सा परिवारवालों को भेजता है ।

लक्ष्मीनारायण लाल उर्फ लच्छू का संकेत उपन्यास में है । वह मध्यवर्गीय परिवार के आर्थिक संकट से पीडित है । रमेश की सिफारिश से उसे 'सारस लेक' में नौकरी

मिली है । यहाँ को वातावरण उसके लिए नया तथा अनोखा है । लच्छू का सौभाग्य उसे रूस ले जाता है । रूस से आने के पश्चात् 'सारस लेक' के नौकरी वहाँ के अफसरों के कुचक्रों के कारण उसे छूट जाती है । परंतु घर की अभावभरी परिवेश से अपनी संगति नहीं बिठा पाता है । वह सोचता है कि लोग मुँह में चाँदी का चम्मच और हाथ में बैंक की पासबुक लेकर ही पैदा होते हैं । विलासपूर्ण जीवन जीने के लिए वह अनैतिक तथा असामाजिक कार्य करना पड़ता है । लेकिन अंत में पराजित होता है ।

आलोचक प्रकाशचन्द्र मिश्र की राय है कि – "लेखक अरविंद शंकर परिस्थितियों की समूची कटुता के बावजूद आस्था के प्रकाश में एक नये पथ पर चलने का संकल्प करते हैं । जीवन के समूचे विष को उनकी आस्था अमृत में बदल देती है ।"[7] जीवन की संपूर्ण जटिलताओं को देखने के पश्चात् भी वे मनुष्य के सुखमय भविष्य की आशा रखते हैं ।

तत्कालीन सामाजिक क्रांति का जिक्र उपन्यास में है । मुहल्ले में मंदिर के प्रश्न को लेकर संघर्ष चलते हैं । घातक से घातक योजनाएँ बनती है और सांप्रदायिक दंगे होते है । नवयुवकों के नेतृत्व में इस दंगे को दंवा देते हैं । रमेश को लगता है – "असलियत में सारी शासन व्यवस्था ही जन चेतना से दूर होती चली जा रही है । और वह भी हठीले समाजवादी जवहरलाल नेहरु के समाज में ।"[8] उसे इस बात पर दुख महसूस होता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी समाज में आन्दोलन की ज़रूरत पड़ती है । यहाँ अरविंद शंकर की यह चिंता उनके द्वारा लिखित उपन्यास में व्यक्त हुई है । डॉ. गोपालराय के शब्दों में – " 'अमृत और विष' में अपने समय का इतिहास तथा एक विराट और वैविद्यपूर्ण युग सत्य का अनोखा स्पेक्ट्रम या क्रमहीन बिंबमाला है ।"[9] निश्चय ही यह एक अनोखी कृति है ।

3.1.4 मूल्यांकन

अंग्रेज़ों के शासन से मुक्ति पाने के लिए दिन रात लड़े मानव आज मोहभंग की दशा में है । उपन्यास में ऐसा एक लेखक अरविंद शंकर का चित्रण नागर जी ने किया है । 'अमृत और विष' का कथानक वास्तव में दो कथानकों के कलात्मक संयोजन से निर्मित हुआ है। इन दोनों कथानकों की सूत्रबद्धता लेखक अरविंद शंकर के कारण ही सुरक्षित रह सकी है।

स्वतंत्र भारत का यह लेखक पारिवारिक विघटन, आर्थिक संघर्ष, राजनीतिक उथल-पुथल आदि से कुंठाग्रस्त हो जाते हैं । वे सारे विषम स्थितियों का सामना बडे साहस के साथ करते हैं , बच्चों को शिक्षा देते हैं , लेखक के रूप में पर्याप्त यश और प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं । पत्नी माया की ओर से उन्हें अवश्य संवेदना तथा सहयोग प्राप्त हुआ है । किंतु संतानों की ओर से सदैव पीड़ा तथा चिंता ही मिली है । परंतु उनका विवेक शीघ्र ही उन्हें नई आस्था देता है । हेमिंग्वे के बूढ़े मछेरे और बचपन में उन्हें धकेल-धकेल कर आगे बढ़ानेवाले बछडे का चित्र उन्हें विषम परिस्थितियों में भी दृढ़ता के साथ संघर्ष करने तथा आगे बढ़ने की शक्ति देता है । अरविंद शंकर जी का यह कथन कितना मर्मस्पर्शी है कि – "मुझे जीना ही होगा, कर्म करना ही होगा । यह बंधन ही मेरी मुक्ति है । इस अंधकार ही में प्रकाश पाने के लिए मुझे जीना है ।"[10] नागर जी का यह जीवनदृष्टि उपन्यास में अरविंद शंकर द्वारा व्यक्त करते हैं ।

इस अंधकारमय समाज में प्रकाश देने के लिए हम सबको जीना है । स्वतंत्रता के इतने सालों बाद भी हम अनेक सामाजिक संघर्षों से मुक्त नहीं है । स्वातंत्र्योत्तर भारत की विष रूप नियति को अमृत बनाना हमारा कर्तव्य है । यहाँ नागर जी ने इस सत्य को स्पष्ट व्यक्त किया है ।

अरविंद शंकर के कतिपय परिवार के सदस्य नाम और चेहरे बदलकर उनके उपन्यास में आ गए हैं । धन कमाने की इच्छा और स्वार्थ पूर्ती के लिए अरविंद शंकर के संतानें उनसे अलग रहते हैं । उनके उपन्यास का एक पात्र लच्छू, वह भी ऐसा एक युवक है जो धन कमाने के लिए भ्रष्टाचार, लूट, मारपीट सब करते हैं । स्वतंत्र भारत में ऐसे कई युवकों को हम देख सकते हैं । अपनी उन्नति के लिए या समाज में उच्च पद मिलने के लिए निकृष्ट बनाते हैं । अरविंद शंकर का बेटा रमेश भी भ्रष्टाचार का रास्ता चुना है । यह स्वतंत्र भारत की नियति है कि समाज इतना निकृष्ट हो गया है । ऐसी स्थिति में भी ईमानदार और सत्यनिष्ठा से जीता रमेश आदि युवकों का चित्रण भी नागर जी ने किया है ।

बीसवीं सदी के पात्रों में रमेश का चित्रण करते हैं । रमेश समाज की रुढियों को तोड़कर ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रिय जाति की विधवा लडकी रानी से विवाह करता है । रानी को आधुनिक नारी के प्रतीक के रूप में उपन्यास में चित्रित करता है । अरविंद शंकर ने अपने लडके भवानी के अंतर्जातीय प्रेम विवाह का असफल रुप देखा है । रमेश और रानी का अंतर्जातीय विवाह की सफलता से लेखक अपने मन की व्यथा को निकाल देना चाहता है ।

नागर जी के उपन्यास 'अमृत और विष' में 'तमसोमः ज्योतिर्गमयः' का आदर्श व्यक्त करते हैं । वे विष को अमृत बनाना चाहते हैं । अरविंद शंकर नैतिक सामाजिक समस्याओं के प्रति एक सीमा तक सजग लेखक है जो अपने पारिवारिक जीवन विष ज़्यादा पा रहा है । अमृत कम, परंतु वे अपने विष को पचाकर पाठकों को अमृत देना चाहते हैं । उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर भारत के सामाजिक संघर्ष का प्रतिफलन देख सकता है । इस अंधकारमय समाज में प्रकाश देने के लिए सबको जीना है । उपन्यास की यही प्रासंगिकता है कि इस अंधकारपूर्ण या विष से भरा समाज में अमृत रुपी प्रकाश फैलाना है ।

3.2 ढाई घर

3.2.1 भूमिका

हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में सन् १९८० के बाद कई प्रवृत्तियों का आविर्भाव हुआ है । उन उपन्यासकारों की पंक्ति में गिरिराज किशोर का विशिष्ट स्थान है । ज़मीन्दार परिवार में जन्मे गिरिराज किशोर अपने जीवनानुभवों को साहित्य में प्रतिबिंबित करते हैं । परतंत्र भारत और स्वतंत्र भारत की गतिविधियों को देखने का सौभाग्य उन्हें मिला है । इसलिए उन्हें स्वतंत्रता के पहले के और बाद में ज़मीन्दार-अंग्रेज़ों की रिश्तों का अच्छा परिचय मिला । इसी रिश्तों को उन्होंने अपनी रचनाओं में जोड़ने का प्रयास किया है । उसे गहरे यथार्थ से प्रस्तुत किया है । 'लोग', 'चिड़ियाघर', 'यात्राएँ', 'जुगलबन्दी', 'दो', 'इन्द्रसुने', 'तीसरी सत्ता', 'यथा प्रस्ताविता', 'परिशिष्ट', 'ढाई घर', 'यातनाघर', 'पहला गिरमिटिया' आदि उनके उपन्यास हैं ।

उनका परवर्ती उपन्यास है 'ढाई घर' । उनका उपन्यास 'जुगलबन्दी' का रचनात्मक विकास है 'ढाई घर' । उनके बचपन का ज़मीन्दारी वातावरण उपन्यास में ज़्यादा उभर आया है । इस उपन्यास के बारे में लेखक की यही राय है कि – "जिस माहौल में, जिस संस्कृति और जिन स्थितियों से उपजे अनेक छोटे-बडे पात्रों को, उनकी कुंठाओं, उनके छोटेपन या बडप्पन को देखा, उनका एक बहुत बडा हिस्सा मेरे स्मृति कोष में अभी बाकी है । जब यह बात मेरे सामने आयी तो जैसे सब कुछ खुलता और फैलता चला गया । मेरे पास यहीं एक रास्ता रह गया था कि मैं उस माहौल को पुनः जिऊँ और उस पर लिखूँ ।"[11] जिस स्थिति-परिस्थिति से उनका तादात्म्य हो ऐसा वातावरण का खोखलापन उपन्यास में चित्रित है । उपन्यास की यही विशेषता है कि जीर्ण-शीर्ण सामंती परंपरा का यथार्थ ।

3.2.2 भावभूमि

'ढाई घर' में एक सामंती परिवार की कथा वर्णित है । संपन्न सामंती परिवार के शिथिल होने की भी कथा उपन्यास में है । उपन्यास तीन पीढियों के संघर्ष गाथा हैं । प्रथम पीढ़ी के प्रतिनिधि है बडे रायसाहब हरिराय । कथा के केन्द्र में भास्कर राय है । वे दूसरी पीढी का प्रतिनिधि पात्र हैं। उन्होंने वैभव और अधिकार संपन्न राय परिवार की टूटती और बिखरती तस्वीर पेश की है, जिसका वह स्वयं भोक्ता है । तीसरी पीढ़ी रघुवर राय की है । भास्कर राय का बेटा है रघुवर ।

भास्कर राय अपने परिवार का वर्णन अपने पिता बडे राय से प्रारंभ करता है । हरिराय सामंती व्यवस्था के प्रतिनिधि हैं । वे अंग्रेज़ भक्त थे । उपन्यास में भास्कर राय अपने पिता बडे राय से लेकर अपने पुत्र रघुवर तक की कथा को प्रस्तुत कर रहा है । हरिराय ज़मीन्दारी आभिजात्य से भरपूर है । धीरे धीरे उस आभिजात्य परंपरा का टूटी बिगड़ती कथा भी उपन्यास में निहित है । हरिराय के दो भाई है – कृष्ण राय और राघव राय । वे भी सामंतीय व्यवस्था से जुड़े हुए थे ।

उपन्यास में अंग्रेज़ भारत छोड़कर जाने और देश के आज़ाद होने तक का चित्रण है । आत्मकथात्मक शैली में उपन्यास की रचना हुई है ।

3.2.3 सामाजिक संघर्ष

स्वतंत्रता के पहले भारत में राय बहादुरों, राय साहबों, ज़मींदारों की प्रथा चलती थी । इन ज़मीन्दारों और सामंतों को अंग्रेज़ों का संरक्षण प्राप्त था । अंग्रेज़ों के लिए धन जुटाने का ज़रिया यही सामंती व्यवस्था ही थी । उस समय सामंती प्रथा और ब्रिटीश शासन एक साथ

चलते थे । 'ढाई घर' में अंग्रेज़ों के साथ जुडे सामंती परिवार का बखूबी चित्रण मिलते हैं ।

उपन्यास में सामंती व्यवस्था के प्रतिनिधि पात्र है हरिराय उर्फ बडे राय । उनको अंग्रेज़ों के साथ अटूट संबंध था । जज, कलक्टर, कमीशनर आदि समाज के प्रतिष्ठित अफसरों के साथ घनिष्ठ संबंध भी है । अंग्रेज़ों की कृपा से वे ओनरेरी मजिस्ट्रेट बने । बाद में असिस्टेन्ट कलक्टर के रूप में पदोन्नति मिली । राय परिवार का रोब-प्रताप का चित्रण उपन्यास में मिलता है । नौकर चाकर अधिक थी । एक ओर अंग्रेज़ों की कृपा दूसरी ओर प्रजा का प्रेम और आदर बरकरार था । बडे राय शिक्षा के महत्व के जानकार थे । इसलिए बाकी राय परिवारों को पढ़ने का आदेश देते हैं । नारी शिक्षा के वे विरोधी थे । उनके बडे पुत्र भास्कर राय पढने से पीछे थे । अंग्रेज़ों के एडवर्ड स्कूल में बडे राय के दबदबा होने के कारण भास्कर राय छठी कक्षा पास हो गया । सामंती परिवार में जन्म लेने के कारण उसमें गर्व था – "हम लोग यानी ज़मींदार .... किसी से क्या मुकाबला ।"[12] स्कूल में उन लोगों का एक गुट भी था।

स्कूल में पढते समय भास्कर राय ने अपने सहपाठी ब्राह्मण लडके को मार डालने का प्रयास किया । यह बडी चर्चा का विषय बना । इससे विद्रोह छिठा । पंडितों ने अंग्रेज़ अफसर मिस्टर वुड से शिकायत की । लेकिन बडे राय का मि. वुड से घनिष्ठ संबंध होने के कारण उन्हें छुटकारा मिला । इस घटना के बाद भास्कर राय ज़मींदारी के कार्यों में निमग्न होने लगे ।

मझले राय और छोटे राय रायपरिवार के अभिन्न अंग है । उपन्यास में मझले राय उसी सामंती परंपरा के उग्र स्वभाव वाले थे । अंग्रेज़ों के साथ उठने बैठने से ताहसीलदार

पद प्राप्त हुआ । निसंतान होने के कारण कमज़ोरी पत्नी को छोडकर दूसरी शादी की । रिश्वत और भ्रष्टचार हर वक्त साथ रखते थे । बाद में भ्रष्टाचार के आरोप से नौकरी से इस्तीफा देना पड़ा । छोटे राय अंग्रेज़ी हुकूमत के खिलाफ थे । स्वराजियों के साथ काम करने की उत्सुकता उनमें थी । बडे राय उसे समझाते हुए कहते हैं कि – "तुम्हें मालूम है अंग्रेज़ों की वजह से हम लोग इज्जत और शंति से रहते हैं । अगर वे नाराज़ हो गये और हमें गद्दार समझ बैठे तो यह सब तामझाम तो रखा रह ही जायेगा, जन-बच्चा कोल्हू में भी पिलवा दिये जायेंगे । हुकूमत राजा की बात और उसके दबदबे से ही चलती है । गरीब-गुरबाओं के बीच घूमाने, उन्हें सरकार के खिलाफ भडकाने और उसके खिलाफ बेतुकी बातें करने से काम नहीं चलता और न राज मिलता है ।"[13] बडे राय से मुंह खुलकर बातें करने की साहस उनमें नहीं । छोटे राय बोले – "भैया, सुराजियों के साथ उठने बैठने के लिए साहस चाहिए । वह हम ज़मींदारों के बच्चों में कहाँ ? देश की आज़ादी को अपने जीवन का उद्देश्य वही लोग बना सकते हैं जिन्हें न ज़मीन चाहिए और न उससे जुडी दौलत और इज्जत । मेरी परिवेश तो गुलामी के एवज में मिली सुख-सुविधाओं में हुई है । हमें तो वही गुलामी प्यारी है जो हमें सुख-सुविधा दें ।"[14] यह सच है कि गुलामी के दिन सामंतों सारी सुख सुविधा प्राप्त चुकी है । और अंग्रेज़ों के साथ जुडे थे । उपन्यास में अंग्रेज़ों के खिलाफ हुई दंगा का पर्दाफाश हुआ है । अंग्रेज़ों ने दो आन्दोलनकारियों को गोली मार दी । इस घटना से क्रुब्द्ध कॉलेज के लड़कों ने गोरी लड़की को मार डाला । इस घटना से संपूर्ण गोरी सत्ता काम उठी ।

एक दिन भास्कर राय गिग चलाया । रायसाहब की गिग थी । वह गिग कलक्टर की मेम की गाडी से भिंडा और गाडी उलट गई । घोडा बिगड गया था । मेम साहब को चोट आई । घटना छोटी थी । लेकिन यह घटना अंग्रेज़ भूल न सके । लंबे अंतराल के

बाद राय के अस्तबल से उसी घोडे की चोरी हो गई और उसे मार डाला । राय परिवार सिर्फ देखता ही रह गया । सत्ता अंग्रेज़ों के हाथ में है । इस घटना पर उस दिन छोटे राय को लगा था कि सामंतों इन अंग्रेज़ों की गुलामी क्यों करें जो इंसान की ज़रा-सी गलती का बदला जानवर तक से ले सकते हैं । जिनमें हैवानियत के अलावा और कुछ नहीं । अगर ये लोग आदमी का बदला जानवर से ले सकते हैं तो जानवर का बदला आदमी से भी ले सकते हैं ।

राय परिवारों में स्त्रियों की स्थिति दयनीय थी । उनको गुलामी झेलना पड़ा । बडे राय की पत्नी को घर में नौकर चाकरों के बावजूद रसोई में चूल्हा फूंकने का काम करना पडा । वह पति से इतनी डरती है कि जैसे गाय कसाई से डरती है । मझले राय अपनी पत्नी पर बांझ होने का आरोप लगाते हैं । इसपर वह उस सामंती मर्यादा के लिए प्रश्नचिह्न छोड जाती है क्योंकि वह गर्भवती थी । मरते वक्त उसकी लाश देखने के लिए भी मझले राय नहीं आया । भास्कर की दूसरी पत्नी कला पढी लिखी और कलात्मक अभिरुची वाली थी । लेकिन विवाह के बाद उस सामंती घर से बाहर निकलने में उसे फुर्सत नहीं मिली । उपन्यास में नई पीढ़ी का आकलन है । स्वतंत्रता बाद के परिवेश में नई पीढी के प्रतिनिधि पात्र सोना नौकरी के लिए बाहर जाती है । सोना पति परित्यक्ता नारी है । बडे राय की पोती होकर नौकरी कैसे करूँ ? ऐसी शंका उसमें थी । फिर भी अपने पैरों पर खडे रखने के लिए काम करते हैं । अरुण की बहु पढ़ी लिखी रईस लडकी है । वह भी उस सामंती परंपरा का पर्दा खोलती है ।

ज़मीन्दारी में मझले राय काफी सख्त होता था । आवश्यक पडने पर उन्होंने लोगों के खेत जुतवा लिये । कृष्ण राय ने मिरची चमार की बेइज्जती की थी । मारा, पीटा और अपनी ताकत की वजह से मिरची और उसके परिवार पर ३०२ का मुकदमा ठेका । बदले में मिरची के बेटे फत्ता और चन्दन ने मंझले राय को दबोय लिया । वे बदला लेना चाहते थे ।

वास्तव में मिरची चमार के मुंह में मझले राय ने भंगी से मुतवाया था । ज़मीन्दार वर्ग सामान्य जनता पर मनमानी करता था । इसके बारे में पूछने पर बडे राय पर मंझलेराय विद्रोह भी करते हैं । रायपरिवार से छिपकर उसने दूसरी शादी की । निसंतान होने के कारण लावारिन लडके को गोद में लिया । ये सब राय परिवार के लिए दु:ख्र की बात है । आगे वे राय परिवार से अलग रहते हैं ।

धीरे-धीरे आज़ादी का जंग गहरा होता जा रहा था । आज़ादी का सवाल राय परिवार के लिए मुसीबतों में डाल दें । क्योंकि सामंतों के लिए सब कुछ अंग्रेज़ी हुकूमत है । उन्हीं के कारण उसे पद मिला । आज़ादी की लडाई में कला का भाई जगनबाबू भागीदार थे । स्वतंत्रता आन्दोलन के अवसर पर छिपकर रहने के लिए वे राय परिवार में आश्रय चाहता था । लेकिन राय परिवार सहमत नहीं दे । राय परिवार वाले यही समझते हैं कि आज़ादी की लड़ाई से राय खानदान का कभी कोई सरोकार नहीं ।

आज़ादी की लडाई के समय बडे खानदान में बिखराव आने लगा । आज़ादी के अवसर पर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की मांग हर मुलक में मुखरित होते रहे । राष्ट्र का बंटवारा होता है । फिर भी बडे राय उसकी ओर ध्यान नहीं देते । उनका मानना है कि – “एडवर्ड जैसे लोग ब्रिटीश ताज का अभी भी प्रतिनिधित्व करते हैं । उनका रुआब-दुआब अभी भी वैसा ही है जैसा तब था । हालाँकि अब देश बँट गया था । देशी हुक्मरान गद्दीनशीन हो गये थे । उस ज़माने में जब अंग्रेज़ अफसरान का तबादला होता था या वापिस विलायत जाते ये तो चार्ज रिपोर्ट के रूप में एक गोपनीय नोट छोड जाते थे ।”[15] आज़ादी के बाद ज़मीन्दारी की पकड़ टीली हो गई । सबके सामने बराबरी की भावना उभर गयी । बडे राय साहब अपनी सामंती परंपरा से हटकर रखना नहीं चाहते हैं ।

बडे राय का बेटा अरुण विदेश जाकर बडा इंजीनियर बनाना चाहते हैं । राय परिवार में इस कार्य से बिखराव देखना पडे । बडे घरों के लड़कों में विलायत जाने की ललक होती थी । बडे राय के लिए यह नापसंद थी । इसके कारण छोटे राय ने उसे गोद में लिया । पढ़ाई के बाद एक रईस परिवार की लड़की से शादी की । अरुण की पत्नी उस सामंती परिवार की पर्दा पहली बार खुली थी । धीरे-धीरे छोटे राय, बेटे बहु को लेकर अलग कोठी में चले । राय परिवार बांट जाता है ।

उपन्यास में रघुवर, बडे राय का पोता हर वक्त आज़ादी चाहता है । रघुवर बडे राय का सबसे लाडला है । आज़ादी के बाद स्कूल और कॉलेजों में आज़ादी और सत्ता का इंकलाब आ गया था । रघुवर छोटे-छोटे चुनाव भी लड चुका था । हर नई पीढी पुरानी पीढी से ज़्यादा आज़ाद और आगे होती है । नई पीढी केवल अपनी सोच के अनुसार काम करते हैं ।

स्वतंत्रता के बाद लोगों में बराबर की मामला उठी । सभी साधारण लोग खुश थे । लेकिन बडे राय में उतनी व्यवहारिकता न थी । उन्होंने अपने अहं को हरगिच नहीं छोडा । उस बदलाव को वे स्वीकारते नहीं । उन्हें लग रहा था कि जो कुछ भी हुआ वह शासकीय अभिजात्य के विरुद्ध है । जिनका कल तक कोई अस्तित्व नहीं था वे आज कुर्सियों पर बैठे हैं । दरअसल, उस समय हममें से किसी को यह पता नहीं था कि सामाजिक परिवर्तन के लिए इस तरह की सिल हुई अभिजातताओं को तोड़ना ज़रूरी होता है । स्वतंत्रता के बाद बडे अस्तित्ववाले कभी न कभी अस्तित्वविहीन होते हैं । रघुवर भी यह बार बार कहता है कि विशिष्ट बनानेवालों और बननेवालों का ज़माना खतम हो चुका । बडे राय सामंती परंपरा के

महत्वपूर्ण पुर्जे थे । आज़ादी के बाद भी उन्हें लगता है कि वे उसे चला रहे हैं ।

रघुवर की मानसिकता को बदलने के लिए बडे राय कोशिश करते हैं । लेकिन कोई फायदा नहीं । रघुवर उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि अपने को श्रेष्ठ समझना और दूसरों को गिरा हुआ और छोटा मानना इस मानसिकता की सबसे बड़ी अलामा है । तैमूरलंग को उसके अत्याचार से जाना जाता है वैसे ही सामंतों को अहंकार और शोषण की प्रतिमूर्ति माना जाता है । ज़माना बदल गया । अब व्यक्ति समाज का हिस्सा बना है ।

आज़ादी के बाद राय परिवार में गरीबी की साया होने लगा । अब राय परिवार को ज़मीन बेचकर कर्ज करना भी पड़ा । राय परिवार की दुर्दशा का चित्रण उपन्यास के आरंभ में भास्कर राय ने इस प्रकार दिया है – "अब राय परिवार की दुर्दश का दौर है । लोग हैं पर कुछ नहीं । मेरा बड़ा बेटा रघुवर है । उसे ही समझो बची खुची राय परिवार की नाक । पर वह काफी दूर है । वह हम तक नहीं लौट पाता और हम उस तक नहीं पहूँच पाते ।"[16] अब राय परिवार को ज़मीन बेचकर कर्ज लेना पड़ा ।

परंपरागत सामंती अहंवादिता और कुलीनता के अहं के कारण बडे राय बदलते समय के साथ नहीं चलते । वे टूट जाते हैं । अपने पोते रघुवर में नये परिवेश में अपने भविष्य की तस्वीर देखना चाहते हैं । लेकिन रघुवर और उनमें आयु का एक दीर्घ अंतराल है । रघुवर की मानसिकता ने उनमें दर्द पैदा किया । डॉ. अशोक पवार इन्का का कथन है कि – "ढाई घर में जो सामंती वर्ग के प्रतिनिधि है वे अपना सामंती अस्तित्व खो चुके है, पर वे यह बात मानने के लिए तैयार नहीं है ।"[17] ठीक है कि सामंती वर्ग अपना अस्तित्व हटकर रखना नहीं चाहते ।

आज़ादी की लडाई और उसके ज़रूरी को जानने के लिए रघुवर अपने मामा जगनबाबू के पास जाता है । आज़ादी के बाद जनतांत्रिक व्यवस्था में वे होम मिनिस्टर बने । जगनबाबू से मिलते समय रघुवर को लगा कि उनका शासन तंत्र ब्रिटीश राज के सामने की सजावट थी। केवल इतना फर्क है कि अपनी कुर्सी पर उन्होंने खादी के कवर चढवा लिये थे । सुन्दर औरतें मंत्री जी से मिलने आयी तो बातें करने के लिए अलग कमरे में चले जाते हैं । जगनबाबू एक अवसर पर रघुवर से कहते हैं कि – "तुम्हें जल्दी-से-जल्दी ज़िन्दगी में सेटिल हो जाना चाहिए, आदर्शवाद में कुछ नहीं रखा । ये सब सवाल जो तुम्हें घेरे हैं इन्सान को आदर्शवादी और अव्यवहारिक बना देते हैं । तब आदर्श मूल्य था, अब मूर्खता है । अब देश को आदर्शवादी की ज़रूरत नहीं, सही अवसर की ज़रूरत है ।"[18] जगनबाबू की यही आदर्श को देखकर रघुवर को लगा कि उसके सामने बडे राय खडा है । उसकी समझ में नहीं आ रहा कि यह सब क्या हो गया ? जगनबाबू की यह सरकारी कोठी हवेली में बदल गयी ।

उपन्यास में सामंती परंपरा के टूटती बिखरती परिवार का यथार्थ अंकन है । भोक्ता होने के कारण सामंती परिवार का यथार्थ का चित्रण करने में वे सफल बने ।

3.2.4 मूल्यांकन

स्वतंत्रता साम्राज्यवाद के खिलाफ देश में संघर्ष चलते थे । लोगों की विद्रोह भावना न्यायवंचित किसान और मज़दूरों की विद्रोह भावना प्रबल बनती गयी । वे विद्रोह भावना केवल साम्राज्यवाद के खिलाफ नहीं थी । पूंजीवाद, सामंतवादी और ज़मीन्दार प्रणाली के प्रति भी उनकी विद्रोह भावना प्रकट होने लगी । सामाजिक समता की कामना के साथ संघर्ष आगे बढ़ता गया । समता के लक्ष्य तक पहूँचने के लिए बाधक बने तत्वों में एक ज़मीन्दारी प्रथा

थी । विद्रोह के इस माहौल में पूंजीवादी प्रणाली चकनाचूर होने लगी । उसका प्रतिपादन इस उपन्यास में देख सकते हैं । उपन्यास के आरंभ में बडे राय, छोटे, मंझल राय जैसे रायपरिवार बडे प्रतापी थे । लेकिन उपन्यास के अंत तक आते आते उनके प्रताप का नामोनिशान तक नहीं । भारत की नियति के बदलते पड़ावों का दिख दर्शन इधर मिलता हैं ।

सामंती परिवार की कुलीनता स्वतंत्रता के पहले सुशोभित थी । राय परिवार के बडे राय, मंझले राय और छोटे राय इसी सामंती व्यवस्था से जुडे हुए थे । उस सामंती परिवार मानते हैं कि उनकी रोश्नी अंग्रेज़ों की कृपा से हैं । इसी कृपा से बडे राय असिस्टेंट कलक्टर तक पहुँचे और मंझले राय तहसीलदारी बने ।

उपन्यास में एक ऐसी घटना का चित्रण है कि भास्कर राय पंडित के बच्चे को चुरा मार लिया । लेकिन इसपर हुई मुकदमा को अंग्रेज़ अफसर ने दबा दिया, क्योंकि राय परिवार से अंग्रेज़ों को घनिष्ठ संबंध था । लेकिन भास्कर राय की गिग कलक्टर की मेम से टकराते घटना अंग्रेज़ भूल न सके क्योंकि यह उनके साथ हुई घटना थी । इसके बदला लेने में राय परिवार के सफेद नानक घोडे की हत्या की । यहाँ हम देखते हैं कि मामला ज़मीन्दार और लोगों के बीच में तो मुकाबला हो जाये । लेकिन हुकूमत करनेवाले के हाथ में तो सह नहीं पाते । ब्रिटीश हुकूमत में केवल अंग्रेज़ों की प्रमुखता थी । यह उस समय के भारतीयों की नियति है । लेकिन इस नियति को फेंकने में कोई तैयार नहीं थे ।

सामंती परिवार में स्त्री पिंजडे बन्द पक्षी की तरह थी । रायों के सामने उसकी स्वतंत्र अस्तित्व खो चुकी है । राय परिवार की स्त्रियों की यही नियति है कि पढे लिखे होते हुए भी सब कुछ सहकर घर के अंदर रहना ही पड़ेगी । लेकिन स्वतंत्रता के बाद के परिवेश

में स्त्री खुलकर बात करती थी । सोना और अरुण की पत्नी उसके ज्वलंत उदाहरण है । सोना एक ऐसी युवति है कि सामंती परिवार से होते हुए भी बाहर जाकर नौकरी करती है । मझले राय की पत्नी एक ऐसा स्त्री पात्र है कि बांझ होने की आरोप पर प्रश्नचिह्न छोडकर आत्महत्या करती हैं ।

न्यायवंचित लोगों में विद्रोह करनेवाला मिरची चमार का चित्रण उपन्यास में है। मिर्ची चमार का परिवार मंझले राय से लडते हैं । सामंती परिवार में छोटे राय सामंती व्यवस्था से घृणा होकर भी उस व्यवस्था को तोडने का साहस नहीं थे। लेकिन नई पीढ़ी का रघुवर उस पुरानी पीढ़ी से विद्रोह करता है । स्वतंत्र अस्तित्व के लिए परिवारवालों से लड़ता है । स्वतंत्रता के बाद के समाज पर रघुवर विश्वास करता है । पर बडे राय उस पुरानी परंपरा या ब्रिटीश सत्ता पर विश्वास रखते हैं ।

स्वाधीन भारत में सामंती व्यवस्था का अंत हुआ है । उपन्यास में उसके कई संदर्भ हम देखते हैं । ज़माने बदलने के अनुरुप सामंतों का आमदनी भी कम हो गई है । स्वाधीन भारत में राय परिवार को ज़मीन बेचकर भी कर्ज लेना पड़ा है । बदलते समाज को स्वीकारना राय परिवारों के लिए मुश्किल है । सामंतों को अपने अभिजात संस्कार खो चुके हैं । स्वातंत्र्योत्तर भारत सामंती परिवार उसकी यही नियति को कभी अपनाती नहीं । बडे राय की कथा उस यथार्थ के खोखलापन की है । स्वाधीन भारत में कई रियासतें जनतांत्रिक व्यवस्था के कारण असमर्थ रही । स्वतंत्रता के बाद के समाज में जनता ने उस सामंतों को स्वतंत्र भारत में शामिल होने के लिए विवश किया । अर्थात् स्वाधीनता के साथ ही सामंत व्यवस्था खत्म हो गयी । अभिजात वर्ग के लिए ज़मीन्दार टूटना प्रधान नहीं ईमान प्रधान था । इस कारण से वे

बदलते हुए समाज के साथ अपने को जोड़ नहीं पा रहे ।

स्वातंत्र्योत्तर भारत की यही नियति है कि भारत बँट गया फिर भी सामंती परंपरा अंग्रेज़ों के समर्थक रखते । ऐसे लोग स्वतंत्र भारत के लिए शर्म की बात है । परिवर्तन की कामना युवापीढी में देख सकते हैं । उपन्यास में रघुवर ऐसा एक पात्र है । बडे राय के अगली पीढी के भास्कर राय भी यही बदलाव को स्वीकारते हैं । वे रायों में खुद अपने को नगण्य राय मानते हैं । परिवर्तन की कामना के लिए परिवारवालों से भी लड़ता है ।

रघुवर को अपने मामा होम मिनिस्टर जगनबाबू की आदर्श पर शर्म आता है । नये सत्ताधारियों में व्याप्त कूटनीति, भ्रष्टाचार सभी उनमें देखते हैं । उपन्यास में जगनबाबू को नये राजनीतिज्ञ की जगह मिली । यह वाक्य कितना सच है कि – “जगनबाबू की जगह बडे राय का आ खडा होना । बडे राय सामंत थे और जगनबाबू आज़ादी के दीवाने ।”[19] जगनबाबू का आदर्श देखकर उसे उस पुरानी सामंती परंपरा जैसे लगा । यह आज़ादी न्यूफ्यूडल्स की है, जो अपने आपको विशिष्ट बनाये रखना चाहते हैं । स्वतंत्रता के पहले के नेता की रीति-नीतियाँ समाप्त नहीं हुई है । वह परवर्ती पीढ़ी में भी अनस्यूत है । इस दृष्टि से देखे तो उपन्यास प्रासंगिक है । लेखक ने यहाँ स्वातंत्र्योत्तर भारत की नये सत्ताधारियों की वास्तविकता और उसकी चकाचौंध से प्रभावित आम आदमी की यथार्थ का भी उल्लेख किया है । स्वातंत्र्योत्तर भारत की यही नियति है कि स्वतंत्रता के पहले के शासन में व्याप्त रीति-नीतियाँ स्वतंत्रता के इतने सालों बाद भी विद्यमान है । स्वातंत्र्योत्तर भारत की इस नियति पर सोचना ज़रूरी है ।

उपन्यास में बडे राय और भास्कर राय के दो घर उस पुराने परिवेश से जुडे है । लेकिन आधे घर की घोडे की चाल रघुवर की कहानी है । जो पुरानी से एकदम हटकर चलती है । इससे उपन्यास का नाम ‘ढाई घर’ अधिक सार्थक बन जाता ।

3.3 दीवार में एक खिड़की रहती थी

3.3.1 भूमिका

साहित्यकार का व्यक्तित्व अपने आसपास का परिवेश, संस्कृति, इतिहास आदि से प्रभावित होता है । समकालीन साहित्यकार विनोदकुमार शुक्ल का जन्म स्वतंत्रता के पहले हुआ (1937) । उनका जीवन निम्नवर्गीय पारिवारिक स्थिति में अत्यंत दुःखद, अभावग्रस्त एवं संघर्ष रहा है । यह प्रभाव उनकी कृतियों पर पड़ा हैं । उनका उपन्यास है – 'नौकर की कमीज़', 'खिलेगा तो देखेंगे' और 'दीवार में एक खिडकी रहती थी' । उनका सारा उपन्यास निम्नवर्गीय लोगों के अभावग्रस्त ज़िन्दगी पर केन्द्रित है । उन्होंने आज के इक्कीसवीं सदी में समाज में व्याप्त उस संघर्ष का चित्रण बखूबी किया है । भोग्ता होने के कारण यथार्थ के अधिक निकट वे आते हैं ।

'दीवार में एक खिडकी रहती थी' (1997) उनका तीसरा उपन्यास है । कस्बाई परिवेश से जुडी निम्नवर्गीय परिवार का जीवन यथार्थ उपन्यास की विशेषता है ।

3.3.3 भावभूमि

'दीवार में एक खिड़की रहती थी' उपन्यास के केन्द्र में निम्नवर्गीय परिवार के रघुवरप्रसाद और सोनसी का दांपत्य जीवन है । ये नवदंपती जोरगांव नामक कस्बे में किराये के मकान में रहते हैं । रघुवरप्रसाद वहाँ के निजि महाविद्यालय में गणित के प्राद्यापक है । रघुवरप्रसाद के जीवन के ज़रिए यहाँ निम्नवर्गीय परिवार के आर्थिक विषमताओं का यथार्थ प्रस्तुत हुआ है ।

उपन्यास में रघुवरप्रसाद और सोनसी की कथा के अतिरिक्त एक साधु और

उसका हाथी, बीडी पीनेवाला लडका और उसका बाप, बूढी अम्मा और विभागाध्यक्ष की उपकथाएँ भी हैं ।

3.3.3 आर्थिक संघर्ष

उपन्यास के केन्द्र में एक निम्नवर्गीय कस्बाई नवदंपति है । रघुवरप्रसाद और सोनसी के दांपत्य जीवन से इस परिवार की आर्थिक अभाव का चित्रण उपन्यास में मिलते हैं । रघुवरप्रसाद एक अस्थायी प्राद्यापक के रुप में मज़दूरी करते हैं । उन्हें आठ सौ रुपया तनख्वाह मिलती है । उसीसे पूरे गृहस्थी चलती है ।

रघुवरप्रसाद के माता-पिता और छोटा भाई गाँव धरमपुरा में है । उसकी बडी बहन जोरगांव में है । रघुवरप्रसाद और पत्नी और गृहस्थी के हिसाब से चीज़ें इकट्ठी कर रहे थे। घर में एक चारपाई थी । चारपाई चौड़ी थी, फिर भी उनके यह समझ में नहीं आ रहा था कि उनको एक और चारपाई रखनी चाहिए या नहीं । परिवार के गरीबी का वास्तविक रूप यहाँ मिलते हैं ।

रघुवरप्रसाद का वेतन सरकारी वेतनमानों के अनुसार बहुत कम है । मकान का किराया तीस रुपये और बिजली का बिल अलग से देना पड़ता है । कस्बाई शहरों में टट्टी तक किराये की होती है, उसीका आठ रुपये महीना भी उन्हें चुकाना पडता है – “तीस रुपए का कमरा और आठ रुपए की टट्टी का अनुपात ठीक नहीं बैठता था ।”[20] आधुनिक युग की इस विडंबना से पिता को लगते हैं कि “टट्टी किराए से ! टट्टी तो थी । कोई मनाही थोडी थी । कल एक नहानी घर किराए से लेना, एक चौका किराए से ले लेना, सब गुजारा करना पड़ता है ।”[21] आधुनिक युग में सब कुछ किराये से मिलता है । रघुवरप्रसाद के लिए यह एक

बडी समस्या है ।

कस्बे के निजी महाविद्यालय की दुरवस्था है – "जोरगाँव से लगा महाविद्यालय था । इस गाँव में दारु की लंबी चौडी देहरी थी, जो महाविद्यालय को दान दे गई थी । महाविद्यालय की दालान की दीवालों में बडे बडे आले बने थे । कमरे की दीवालों में आले थे, दालान में छानी को सहारा देने लाइन से पत्थर पर लकडी के खम्भे थे । लकडी के खम्भे, बल्ली, दरवाज़ें और खिडकी के पल्ले, आलसी के तेल से चिपुडे काले और चमकदार थे ।"[22] महाविद्यालय के फर्श गोबर से लिया-पुता है । पीने के पानी के लिए हैण्डपम्प है । पेशाब के लिए पिछवाडे तालाब के पास आड़ में जाना पड़ता है । शहरी महाविद्यालय ईंटों, पत्थरों, फर्श और कांक्रीट से बने होते हैं । यद्यपि कस्बाई महाविद्यालय मिट्टी के खपरों से बनाये जाते हैं। उसमें भी पिछड़ापन मौजूद होता है । यहाँ के महाविद्यालय में अस्थायी अध्यापकों को रखते हैं।

नौकरीपेशा से जुडे हुए भी रघुवरप्रसाद को अपनी परिवार के प्रति पूरी जिम्मेदारियाँ निभाने में असमर्थ बन जाता है । इस स्थिति का आभास पिताजी के कथनों से मिलता है – "घर पैसे थोडा ज़्यादा भेज दिया करो । छोटू की बीमारी में इस बार पैसे खर्च हो गए ।"[23] वह पिता की बीमारी, छोटू की बीमारी की खर्च करने में कोशिश करता है । उसके मन में माता, पिता, भाई के प्रति आस्था, स्नेह और आत्मीयता है । पिता होमियोपथिवाला को दिखाते हैं क्योंकि होमियोपोथि की दवा महंगी होती है । पिता की छोटी-छोटी अपेक्षाओं के सामने वह असहाय हो जाता है । मन में सोचता है कि महाविद्यालय के पास घर मिल जाए तो एक बडा घर किराये से ले और सपरिवार वहाँ रहता है । आने जाने का पैसा बचेगा । लेकिन कस्बाई ज़िन्दगी में ऐसा माहौल न मिला । घर से महाविद्यालय आने में कठिनाई होती है, टैम्पो समय पर नहीं मिलती । इसलिए महाविद्यालय जाने के लिए आधा घंटा पहले राजमार्ग पर खडे

हो जाते हैं । अच्छा आवाज़ और कॉलेज जाने के लिए सैकिल खरीदने की सपना तक वह पूरा नहीं कर पाता ।

रघुवरप्रसाद की पत्नी सोनसी पढी लिखी नहीं है, किंतु एक परिवार को चलाने के लिए व्यावहारिकता, समझदारी और समन्वय आदि सारे गुण उसमें है । वह फटा पोलका सिलाकर पहनती है । हाथी को देखने का काम में भी सिलाई काम में लगी – "हाथी गूलर के पेड के नीचे डालों को खा रहा था । सोनसी हटकर एक पत्थर पर बैठी पोलका सीने का काम कर रही थी ।"[24] बार-बार घर आने-जाने से बहुत पैसे खर्च होंगे । इसलिए सोनसी घर जाने का आग्रह भी छोडा । सोनसी रघुवरप्रसाद के साथ इतनी मिल जाती है कि उसे अलग नहीं किया जा सकता ।

महाविद्यालय के विभागाध्यक्ष मध्यवर्गीय परिवार के है । उसे पन्द्रह सौ रुपया तनख्वाह मिलता है । कस्बाई ज़िन्दगी में वह भी अर्थाभाव महसूस करता है । अर्थाभाव से जीवन बितानेवाला कई पात्र उपन्यास में है । जंगलवासी बूढी अम्मा आजीविका के लिए रेत को छानकर सोना ढूँढने का काम करती है । रघुवर और सोनसी को चाय पिलाती है । सोनसी के लिए सेने के कडा देती है । हाथीवाला साधू आजीविका चलाने के लिए हाथी पर सवारियों को पहुँचाने का काम करता है । इस काम में थोडे बहुत पैसे कमा लेता है । रघुवरप्रसाद को महाविद्यालय ले जाने और वापस लाने का कार्य वह करता है । उस कस्बाई परिवेश में सभी आजीविका के लिए संघर्षरत है । रघुवरप्रसाद की माँ सोनसी के लिए अपने कान से सोने की एक छोटी फुल्ली उतारकर सोनसी को देते हैं । माँ की प्यार हम यहाँ देखते हैं । एक फुल्ली उसको और एक छोटू की दुल्हन के लिए ।

गरीब आदमी का भी अपना एक सुख होता है । विषम परिस्थितियों से जूझते

हुए भी रघुवर प्रसाद अपने पत्नी के साथ व्यावहारिक जीवन के अनुभवों को जुटाता है । कमरे के दीवार में एक खिडकी है । उसे फाँदकर सिर्फ रघुवरप्रसाद और सोनसी नदी, तालाब, चट्‌टान, तोतों, बंदरों, नीलकंठों, पेडों, पहाडियों के एक गीतात्मक स्वप्न जैसे संसार में प्रवेश कर सकते हैं, जिसमें कपडे धोना, नहाना और सो जाना तथा प्रेम कर पाना भी संभव है । सुखी जीवन की अनुभूति को जानने के लिए यह दंपति बार-बार दीवार की खिडकी फांद कर जाते हैं । यह दुनिया रघुवर और सोनसी के मन की दुनिया है । कमरा एक ही था तो क्या खिडकी दुनिया भी तो है ।

आलोचक योगेश तिवारी की यही राय है कि – "दरअसल खिड़की की दुनिया भी विनोदकुमार शुक्ल द्वारा रचित एक 'युटोपिया' है । यहाँ 'युटोपिया' के साथ यथार्थ की दुनिया भी है । कटु यथार्थ की दुनिया । उपन्यास में यथार्थ की दीवार या गरीबी की दीवार या मरती संवेदना की दीवार या संबंधों के बीच कडुवाहट की दीवार है तो कल्पना या गरीबी में भी सुख, या संवेदनशीलता या संबंधों की गर्माहट की खिड़की भी है । छोटी ही भली है तो सही ।"[25] यह खिड़की किसी रहस्यालोक की खिडकी न होगी, बल्कि इसी समाज की तरफ खुलेगी । कहना न होगा कि रघुवर और सोनसी गरीब हाते हुए भी दरिद्र नहीं हैं । न तो मन से, न तो संवेदना से, न विचार से और न ही व्यवहार से । गरीबी भले इतनी ज़्यादा है कि आंधी में आई रेते से खराब हुए गूँथे आटे को भी वे फेंक नहीं पाते । उसकी एक ऊपरी परत हटकर उससे काम चला लेते हैं । इसके बावजूद सोनसी एक रोटी हाथी के लिए, एक गाय के लिए, और पेड पर रहनेवाले लड़के के लिए भी हमेशा बचाकर रख्ती है ।

उपन्यास में आम आदमी की आर्थिक विषमता की स्थितियों को कस्बाई परिवेश में चित्रित करता है । रघुवरप्रसाद की ज़िन्दगी को केन्द्र बनाकर इसका जिक्र हमें मिलते

हैं । यहाँ वह अपने जीवन में आर्थिक कमज़ोरी की वजह से तकलीफों को सहता रहता है ।

3.3.4 मूल्यांकन

'दीवार में एक खिड़की रहती थी' में उपन्यासकार ने स्वातंत्र्योत्तर भारत में रोटी, मकान और कपडे से वांचित समाज को चित्रित करते हैं । आधुनिक युग की इस विडंबनापूर्ण ज़िन्दगी स्वातंत्रेत्तर भारत की नियति की ओर सूचित करते हैं । आधुनिक युग के शहरीकरण और औद्योगिक विकास के कारण ग्रामीण जीवन में कई प्रकार के परिवर्तन आये हैं । सुविधाएँ बढ़ गई है । कस्बा इन्हीं परिवर्तनों का परिणाम है । उपन्यासकार की दृष्टि सुविधाएँ से ज़्यादा इसके बुराई की ओर आ जाता है । मज़बूर होकर गाँव से आजीविका की तलाश में आदमी कस्बे में आते हैं । अर्थाभाव में हमेशा संघर्षरत रहना पड़ता है । धरमपुर गाँव से जोरगांव कस्बे में आते रघुवरप्रसाद की ज़िन्दगी की वास्तविकता से इसका सबूत मिलते हैं ।

रघुवरप्रसाद को महाविद्यालय के अतिथि व्याख्याता के रूप में नियुक्ति मिलती है । आठ सौ रुपये के वेतन से तरह-तरह के किराया देना पड़ता है । पिता और छोटे भाई का इलाज ठीक से न कर पाती । सोनसी फटे पोलके को सिलाकर इस्तेमाल करती है । अच्छे आवास की व्यवस्था और साईकिल खरीदने का सपना तक उसे पूरा नहीं कर पाता । रघुवरप्रसाद के मन में हुई आशा का एक प्रत्यक्ष चित्रण उपन्यासकार व्यक्त करते हैं कि – "उसका वेतन अच्छा होता तो वह बताता कि एक पुत्र अपनी पिता की किस तरह परवाह करता है ।"[26] यहाँ देखते हैं कि उसके मन की आशाएँ, आकांक्षाएँ अर्थाभाव में पूरी नहीं हो सकती। सिर्फ रघुवरप्रसाद ही नहीं उपन्यास के सारे पात्र जैसे हाथीवाला साधु, बूढी अम्मा, कॉलेज के विभागाध्यक्ष तक ही कस्बाई ज़िन्दगी में अर्थाभाव से गुज़रते हैं । स्वातंत्र्योत्तर भारत में निजी महाविद्यालय और वहाँ काम करते अध्यापकों की दुरवस्था का यथार्थ उपन्यास में है । प्राथमिक

सुविधाएँ भी कॉलेज में नहीं है । विकास के दौर में भी पतनोन्मुख अवस्था यहाँ देखते हैं ।

कस्बाई ज़िन्दगी में दुख-दर्द और अर्थाभाव के होने के बावजूद भी आत्मीयता का अंश देखता है । बूढी अम्मा सोनसी को दिये सोने का कडा से आत्मीयता का सच्चा चित्र मिलता है । विभागाध्यक्ष और हाथीवाला साधु आदि पात्रों से भी स्नेह, ममता का स्पर्श मिलते हैं । हाथीवाला साधु की कृपा उनको मिलती है, यों हाथी पर सवार करके कॉलेज जाते हैं । यहाँ मानव और पशु के बीच एक अनिर्वचनीय रिश्ते देख पाते हैं । गरीबी से गुज़रते हुए इन साधारण आदमियों के जीवन में मानवीय संबन्धों, आस्थाओं का मूर्त रूप दिखाते हैं । रघुवरप्रसाद की माँ अपने कान से एक फुल्ली उतारकर सोनसी को देती है । सांस और बहु के बीच के रिश्ते का अच्छा रूप यहाँ देखते हैं ।

उपन्यास में प्रकृति उपस्थित है । एक कमरेवाला मकान के खिडकी से बार बार नवदंपति बाहर जाते हैं । दोनों प्रकृति के सान्निध्य आकर सुख पाता है । उनके जीवन में सुख और दु:ख, अतीत, वर्तमान और भविष्य में एक समान होता है। सिर्फ जगह बदल जाती है । यहाँ हम देखते हैं कि अभावों से भरी ज़िन्दगी को वे हारता नहीं । हर पल एक नयी आस्था उनमें देखते हैं । उपन्यासकार का जीवनदृष्टि इस नवदंपति के माध्यम से व्यक्त करते हैं ।

विनोदकुमार शुक्ल ने आज़ादी के बाद कस्बाई परिवेश से जुडी निम्नस्तरीय जीवन जीने के अभिशप्त वर्गों का यथार्थ चित्रित किया है । 'अभावग्रस्त ज़िन्दगी की वास्तविकता' पूरे उपन्यास में देख पाते हैं । स्वातंत्र्योत्तर भारत की यही नियति है कि देश विकास की ओर बढती समय में भी आर्थिक कठिनाई से गुज़रता एक वर्ग हमारे सामने उभर आ चुका है ।

3.4 कलिकथा : वाया बाइपास

3.4.1 भूमिका

बीसवीं शताब्दी के नवें दशक में अलका सरावगी का पर्दाफाश हुआ । उनके आगमन से हिन्दी महिला लेखिकाओं को नये ऊर्जा मिली । स्वातंत्र्योत्तर काल में उनका जन्म हुआ । उनका प्रसिद्ध उपन्यास हैं – 'कलिकथा : वाया बाइपास', 'शेष कादंबरी', 'कोई बात नहीं', 'एक ब्रेक के बाद' आदि । उनका पहला उपन्यास है 'कलिकथा वाया बाइपास' (1998)। यह कलकत्ता केन्द्रित हिन्दी का अत्युत्तम कृति है । लेखिका कलकत्ता में रहते हैं । अपनी मान्यताओं, अनुभवों और कल्पनाओं से अलका सरावगी 'कलिकथा वाया बाइपास' में कलकत्ते शहर का सामाजिक ज़िन्दगी का ताना बाना बुनती हैं ।

स्वतंत्रता प्राप्ती के पचास वर्ष पहले के और उसके बाद के पचास वर्ष का सामाजिक ज़िन्दगी का विस्तार उपन्यास की विशेषता है । उपन्यास के बारे में अलका सरावगी कहती हैं कि – "किशोरबाबु की व्यक्तिगत ज़िन्दगी, एक जाति का अपने मूल स्थान से उठकर देश भर में बिखरना, एक देश का अपने सारे आदर्शों और सपनों से दूर हो जाना, एक शहर का दलदली जंगल से चौरंगी के दोनों ओर फैले काले शहर और गोरे शहर में तब्दील होना - यह सब एक साथ उफलते हुए मेरे अन्दर एक संगति खोज रहा था जिससे एक कथा लिखी जा सकती थी ।"[27] कलिकथा एक तो कलकत्ते की कथा है, दूसरी कलियुग की कथा । जैसे जीवन कलकत्ता में है, वैसे ही देखने को मिलते हैं । लेखिका ने इसे एक कहानी के रुप में शुरु किया था, किंतु लिखते-लिखते वह उपन्यास के रुप में बदल गया ।

3.4.2 भावभूमि

'कलिकथा : वाया बाइपास' कलकत्ता निवासी मारवाडियों की कथा है, साथ ही

बंगाली समाज शामिल है । स्वतंत्रता राष्ट्रीय आन्दोलन के युग की परिस्थितियों की ओर उपन्यास में बहुत सारे संकेत मिलते हैं । स्वतंत्रता प्राप्ती के पहले के पीढी का प्रतिनिधि किशोर बाबु को इन्होंने नायक बनाया । उसका जन्म सन् 1925 में हुआ । किशोर बाबु के माध्यम से एक मारवाडी परिवार की पाँच पीढियों की संघर्ष कथा इसमें प्रतिपादित हुई है । इस कथा में प्लासी युद्ध (1757) में अंग्रेज़ों के साथ देनेवाले अमीचन्द से लेकर सन् 1990 के बाबरी मस्जिद विध्वंस तक की कथा और आज के उत्तराधुनिक परामर्श भी आ गये हैं । कथा की पृष्ठभूमि में स्वाधीनता संघर्ष, बंगाल की दयनीय स्थिति, सन् 1943 का अकाल, महात्मागांधी की हत्या, सांप्रदायिक हिंसा आदि बहुत सारे संकेत उपन्यास में अंकित किया है ।

प्रमुख कथा किशोरबाबु के आसपास घूमती है । किशोरबाबु अपनी एक ज़िन्दगी में तीन ज़िन्दगियाँ जी रहे हैं । पहली ज़िन्दगी स्कूली दोस्तों आमोलक तथा शांतनु के साथ गुज़रे सन् 1940-47 के वर्षों की है । दूसरी ज़िन्दगी उसके बाद के पचास सालों की है, जिसमें पहली ज़िन्दगी की छाया तक नहीं है । तीसरी ज़िन्दगी बाइपास आपरेशन के बाद उस वर्तमान से शुरू होती है, जो अभी हर वक्त हमारे आसपास उपस्थित है ।

3.4.3 सामाजिक संघर्ष

किशोरबाबु मारवाड़ी जाति का केन्द्रीय पात्र है । उसके इर्द-गिर्द कथा आगे बढ़ती है । स्वतंत्रता प्राप्ती के पहले ही किशोरबाबु का जन्म हुआ । उसकी ज़िन्दगी का पहला चरण स्वतंत्रता आन्दोलन का समय था । लेकिन मारवाड़ी समाज जो है उस ओर अपना ध्यान नहीं किया । सिर्फ व्यवसाय करने से मात्र सीमित है ।

अंग्रेज़ों ने स्वतंत्रता सेनानियों पर न जाने कितना जोर-जुल्म किये । अंग्रेज़ों के साथ उठना-बैठना किशोर के पूर्वजों का काम था । आज़ादी की लड़ाई में एकजुड़ होकर रहते

भारतीयों के बीच ऐसा एक मारवाडी समाज, शर्म की बात है । किशोर के बडे दादाजी रामविलास और उसके पिता घमण्डीलाल आदि अंग्रेज़ों से समझौता करनेवाले थे । मारवाड़ी समाज केवल अर्थ केन्द्रित होकर ही रह जाता है । इसी कारण किशोर के पूर्वज अंग्रेज़ों से समझौता करते हैं ।

किशोर का सबसे अच्छा दोस्त है शांतनु और आमोलक । दोनों बंगाली जाति का है । स्वतंत्रता आन्दोलन में भागीदारी है । उनकी आँखों में देश के लिए, भविष्य के समाज के लिए सुनहरा स्वप्न है – स्वतंत्र भारत । शांतनु का कहना है कि – "मारवाड़ी लोग आज़ादी की लड़ाई में भाग नहीं ले सकते । वे इतने दब्बू और डरपोक हैं कि न जेल जा सकते हैं और न ही पुलिस के डंडे खा सकते है – हर समय उन्हें जान-माल की ही फिक्र लगी रहती है ।"[28] मारवाड़ियों के लिए सिर्फ अपने परिवार के लिए दाल-रोटी का हिसाब का फिक्र है । निजी स्वार्थों के अलावा उन्होंने बेडियों में जकड़ी भारतमाता के लिए कुछ भी नहीं सोचा ।

मारवाड़ी समाज का एक ही उद्देश्य है धन-कमाना । उपन्यास में प्रथम पीढ़ी घमण्डीलाल की है । वे हेमिल्टन साहब के आदेश पर भिवानी से कलकत्ता चले जाते हैं । अर्थ लिप्सा के स्वार्थवश वे अपने परिवार को छोड़कर कलकत्ता चले जाते हैं । किशोरबाबु के परदादा रामविलास बाबू भी भिवानी में अकाल पड़ने पर कलकत्ता चले आते हैं । अपने पिता के दोस्त जूनियर हैमिल्टन से मिलकर अपना व्यवसाय शुरू करते हैं ।

शांतनु जानता है कि अहिंसा के रास्ते पर चलकर कभी आज़ादी हासिल नहीं की जा सकती । किसी न किसी प्रकार अंग्रेज़ों से संघर्ष करके आज़ादी मिल सकेंगी । आज़ादी की लडाई में सारा शहर लाशों से भरा पड़ा है । स्वतंत्र प्राप्ती तक आते समय हिन्दु और मुसलमानों के बीच बहस होने लगी । हिन्दु और मुसलमानों को आपस में लड़ना ब्रिटीश शासन

की कूटनीति थी । मुसलमानों के बहुत सारे मंदिरों को नष्ट किया है, मूर्तियों को तोडा है, लूटा है और औरतों का शीलभंग किया है । हर जगह 'हिन्दुस्तान' और 'पाकिस्तान' की नारे गुज़रने लगे । ये सभी घटनाएँ देखकर किशोरबाबु चौक पड़े । ये डरपोक मारवाडी समाज इसके भागीदारी नहीं बने । बंगाली लोग इस समय समाज सेवा का काम करते हैं । किशोरबाबु और उसके मारवाड़ी समाज डरपोक है । व्यवसाय करना उनका एकमात्र लक्ष्य है । उसके मामा का कथन है कि – "अपने पेट पर लात मारकर देश सेवा नहीं करनी भाई अपने को ।"[29] मामाजी की कपड़े की दूकान है । उसमें अंग्रेज़ी मिलों के ही कपड़े बिकते हैं । वे लोग अंग्रेज़ों के साथ रहते हैं ।

किशोरबाबु की दूसरी ज़िन्दगी में यानि स्वतंत्रता प्राप्ती के पचास साल बाद अपने मामाओं के साथ व्यापार करते धन कमाते हैं । अपने बेटे-बेटियों को पढ़ाते हैं और अच्छा मकान बनाते । किशोरबाबु का बेटा भी इसी अर्थ लिप्सा में आ गया और रिश्वत व भ्रष्टाचार का रास्ता अपनाने लगा ।

किशोरबाबु के तीसरी ज़िन्दगी यानि बाइपास आपरेशन के बाद (1997) उस वर्तमान से शुरू होती, जो अभी हर वक्त हमारे आसपास उपस्थित है । इस ज़िन्दगी में किशोरबाबु अपनी पिछली दोनों ज़िन्दगियों को एक रील की तरह देखते हैं । आज का युग उत्तराधुनिकता का है जिसमें व्यक्ति के मानवीय मूल्य बदल गए हैं । किशोरबाबु देश की वर्तमान स्थिति पर क्षुब्ध दिखाई पडते हैं – "आज भी कोई समस्या नहीं सुलझी । लाखों लोगों के खून बहने से मिल विभाजन क्या दे पाया ? अपनी जैसी भाषा बोलनेवाले और अपने जैसे ही जलेबी, कलाकंद खानेवाले लोगों के साथ युद्ध ? उन्हें शत्रु मानकर हथियार जमा करने और सेना को तैयार रखने के लिए अरबों-अरबों रुपए का खर्च, जबकि आज भी कलकत्ते की

सडकों पर कोढी, भिखमंगे, औरतें, बच्चे उसी तरह भूखे-नंगे फिरते हैं ?"[30] आज़ादी के पचास साल बाद भी भ्रष्टाचार, लूट, बलात्कार ऐसी कई समस्याएँ ज्यों का त्यों दृष्टिगोचर होती है ।

आज की पीढी विदेशी माल का रुबरु उपयोग कर रही है । इससे हमारे राष्ट्र में आर्थिक बिखराव पडने लगे । नई पीढी के किशोरबाबु के बेटे ने भी अपनी कंपनी के माल का आर्डर लेने के लिए भ्रष्टाचार का रास्ता अपनाया । उत्तराधुनिक या पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध में आकर धन का दुरुपयोग करती है । फंइनांस पर कर्ज लेकर गाडी खरीदते हैं । बेटे की यही मानना है कि सभी ऐसा करते हैं और किसी बड़े प्रोजेक्ट के लिए गर्वमेंट तक लोन लेती है ।

भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी आज हर जगह मिलते हैं । किशोरबाबु का लडका कहता है – "उसका आदमी लंबी घूसखाना चाहता है । अपना तो हर मिल में पर्सेंट फिक्सड है । पर यह आदमी राजी नहीं हो रहा - बडा घाघ और लालची ।"[31] यह समय के साथ चलता रिश्वतखोरी व भ्रष्टाचारी का स्वरूप है जहाँ गाँधिजी जैसे महान आदमी का प्रयोग रिश्वतखोरी के लिए कर रहे हैं । आज़ादी का पूर्व का समाज जो है गांधी को पूजा जाता और एक आज़ादी के बाद का ऐसा भ्रष्ट समाज है जिसमें गांधी का मतलब है 'पाँच सौ का नोट' भ्रष्टाचारी और रिश्वत ।

उपन्यास में लेखिका ने डेढ सौ साल के मारवाड़ी समाज का चित्रण करके समाज में स्त्री की स्थिति को भी दर्शाया है । मारवाड़ी समाज में औरतों की स्थिति के बारे में किशोर बाबु सोचता है – "कैसी ज़िन्दगी है हमारे घरों में औरतों की – सारे दिन घर में बंद रहती है । कभी बाहर निकलता हुआ, तो जरीदार भारी ओढनी ओढकर । गरदन तक घूँघट

डालकर ।"[32] मारवाड़ी परिवार पुरुषसत्तात्मक है । घरों में पुरुषों को हर तरह की मनमानी करने की छूट है जबकि स्त्रीयों पर हर तरह की पाबंदी है । मारवाड़ी समाज में विधवा स्त्री को बिना सफेद साडियाँ पहनने के सिवा कुछ और पहनने का अधिकार नहीं था ।

मारवाड़ी समाज की स्त्रियों की पिछड़ी स्थिति पर किशोरबाबु को शर्म महसूस होती है । वह अपनी लड़कियों को कॉलेज भेजी । लेकिन उसका यह मानना है कि ज़्यादा पढे तो ज़्यादा पढे-लिखे लड़के की ज़रूरत होती । वह अपने पुरुष सत्तात्मक मानसिकता से उभर नहीं पाता है । उसने कभी लड़कियों को सहेलियों के घर नहीं जाने दिया । किशोरबाबु की नानी की भी यही मान्यता है कि ज़्यादा पढ़ाने से लडकी विधवा हो जाती है । पिंजरे में बंद चिड़ियों की तरह मारवाड़ी समाज की स्त्रियाँ कैद है । औरतों के लिए ऐसा ही जीवन जीना है । उन्हें सबकुछ सहकर जीना है । हमेशा दबकर रहना है ।

किशोरबाबु की विधवा भाभी एक रंगबिरंगी साड़ी पहनती है । उसकी यह धारणा है कि आज यह साड़ी पहनने में कोई हर्ज नहीं क्योंकि आज सब पढे-लिखे लोगों का ज़माना है – खुले विचारोंवाली । लेकिन किशोरबाबु अपनी रुढ़िगत मानसिकता के कारण यह स्वीकारता नहीं और उससे पूछता है कि – तुम्हारा दिमाग अब एकदम ही खराब हो गया है भाभी ? समाज क्या कहेंगे ? पुरुष सत्तात्मक समाज में एक विधवा स्त्री का अच्छे कपडे पहनने से ही मर्यादा खत्म होती है ।

'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी ।
अंचल में है दूध और आँखों में पानी ।'

ऐसी ज़िन्दगी है मारवाड़ी समाज के स्त्रियों के लिए ।

उपन्यास में सन् 1943 के बंगाल के अकाल का वर्णन किया है । माँ-बाप के

लिए अपने बच्चे भी बिकाऊ चीज़ में बदल जाते हैं क्योंकि उन्हें बेचने से पेट की भूख मिट सके । भूख से मरे लोगों की पचासों लाशें सड़कों पर पडी रखी है । बाप बेटी की भीख मांगने के लिए आदेश दी । बेटी कह रही थी – "मेरे पास शरीर ढकने को तो कपडे नहीं है । भीख मांगने कैसे जाऊँगी ?"[33] आज भी कलकत्ते शहर में भीख मांगनेवाले लोग अधिक थे । अपने सारे बर्तन - भांडे बेचकर ये लोग चावल खरीदकर खा चुके हैं । भूख से लोग मरते हैं । कुत्ते बच्चों की पड़ी हुई लाशें खा लेते हैं । कितना भयानक दृश्य है । यहाँ लेखिका ने समाज के सामने यह सत्य उद्घाटित किया है कि वास्तव में अकाल होता नहीं है बल्कि इस अकाल को मनुष्य स्वयं पैदा करता है – "क्या सचमुच दुनिया में मानवता नाम की चीज़ खत्म हो जाएगी? यहाँ कोई अनावृष्टि नहीं हुई, कोई सचमुच का अकाल नहीं पडा – आदमी ने यह अकाल बना दिया आदमी के लिए ?"[34] कीड़े-मकोड़े की तरह मरते हुए लोग, लाखों लोगों के भूख और बीमारी से मरने की स्थिति, ये सब आदमी ही आदमी के लिए बनाते हैं । आज़ाद और सुखी भारत का सपना जनता के लिए एक बड़ा सपना था । लेकिन स्वतंत्र होकर भी ऐसी कई समस्याएँ रुबरु समाज में आती है ।

आज़ादी के उत्सव को लोगों ने व्यवसाय से जोड़ा । टी.वी, रेडियो, पत्रिकाएँ, राष्ट्रीय स्वयं सेवी संस्थाओं यहाँ तक कि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भी आज़ादी के कार्यक्रमों से कई तरह धन कमा रही है । अलका सरावगी स्पष्ट कहती हैं कि यहाँ कोई प्राकृतिक आपदाओं की वजह से अकाल नहीं पड़ता । बल्कि आदमी ने यह अकाल स्वयं बनाया है । उसका जन्मदाता इस कलियुग की ही व्यक्ति है । जिसने अपने स्वार्थ लोलुप प्रवृत्ति से इस अकाल को जन्म दिया । सन् 1943 में बंगाल के अकाल में आदमियों के लिए कई समस्याएँ उत्पन्न हो चुकी । लेकिन अब स्वतंत्रता के इतने सालों बाद भी यह अकाल रुबरु आता है । व्यक्ति में मानवता की भावना खत्म हो गई है । उपन्यास में ऐसा एक घटना है सोलह साल के लड़के ने पिता की

हत्या की क्योंकि पिता ने उसे नए जूते खरीदने के लिए पैसा नहीं दिए थे। यह स्थिति अपने देश में बढ़ती जा रही हैं ।

गोपालराय के शब्दों में – "कलिकथा : वाया बाइपास में अलका सरावगी ने एक मारवाड़ी परिवार की पाँच पीढ़ियों की संघर्ष कथा प्रस्तुत करते हुए कलकत्ता का पूरा इतिवृत्त भी उपलब्ध करा दिया है जिसमें प्लासी युद्ध से लेकर बाबरी मस्जिद विध्वंस तक का इतिहास, जिसमें लालू, राडी, सोनिया आदि भी सम्मिलित हैं, आ गया है ।"[35] अलका सरावगी ने कलकत्ता के पूरे इतिहास का चित्रण किया है । किशोर बाबु के चरित्र के माध्यम से अतीत, वर्तमान और भविष्य की समस्याओं को चित्रित किया गया है ।

3.4.4 मूल्यांकन

ब्रिटीश शासन काल के समाज में बहुआयामी विचारधारा देखते हैं । एक तो स्वतंत्रता मांगते समाज, दूसरा स्वतंत्रता आन्दोलन में न भाग लेते समाज, तीसरा ब्रिटीश शासन से समझौता करते समाज । उपन्यास में भले ही मारवाड़ी समाज को प्रधानता मिली है । बंगाली समाज को भी उसके साथ लेखिका ने जोडा । जिससे उपन्यास को अधिक सहजता मिली है । मारवाड़ी समाज स्वतंत्रता आन्दोलन में न भाग लेते और ब्रिटीश सरकार से समझौता करनेवाले थे । किशोरबाबु के दादा, परदारा सभी अंग्रेज़ों से समझौता करते थे । खुद अपने व्यापार पर सोचते हैं । यह हमारे राष्ट्र की दुरवस्था है । देश के विकास के लिए विनाशकारी भी है ।

अंग्रेज़ों द्वारा आयोजित सांप्रदायिक दंगे का पर्दाफाश उपन्यास में मिलता है। सन् 1990 का बाबरी मस्जिद विध्वंस प्रकरण से स्वतंत्रता काल के सांप्रदायिक दंगे का और एक चेहरा हम महसूस करते हैं । मारवाड़ी परिवारों में औरतों की स्थिति बड़ी दयनीय थी । विधवा

भाभी के पुनर्विवाह के लिए किशोरबाबु अपने मारवाड़ी समाज के विरुद्ध कुछ भी कर सकने में अपने को असमर्थ पाता है । आधुनिक नारी की छवि किशोरबाबु की विधवा भाभी में देख सकते हैं । लेकिन रुढ़ीग्रस्त समाज इस छवि को दबाते दिखाई पडते हैं ।

सन् 1943 का बंगाल के अकाल में लाखों लोग भूख से मरे हुए थे । आज भी आर्थिक बिखराव का दृश्य कलकत्ता में देखते हैं । सोलह साल के लडके ने पिता की हत्या की, इसीसे इसका उत्तम उदाहरण मिलते हैं । पहले यह अंग्रेज़ों द्वारा बनाये हुए थे, लेकिन अब यह अकाल का मूल कारण मनुष्य ही है । लेखिका ने यहाँ स्पष्ट बताती है कि मनुष्य की स्वार्थ लोलुप प्रवृत्ति से इस अकाल को जन्म दिया । तभी तो कहती है कि अकाल कभी होता नहीं । भारत दिन-ब-दिन विकास की सीढ़ियाँ चढ़ने का अवसर पर भी आर्थिक बिखराव का भोलभाला है ।

स्वतंत्रता के बाद समाज के किसी भी आन्दोलन से किशोरबाबु को कोई वास्ता न रहा । भारतीय पूँजीवाद ने भी यही किया, अपने लाभ, स्वार्थों के अलावा उसने भी देश की चिंता नहीं की । आज मल्टीनेशनल कंपनियों का ज़माना है । आज़ादी क उत्सव को भी वह कंपनियाँ बेचते है और पैसा कमाते हैं । विदेशी माल का उपयोग करते हैं । स्वतंत्र भारत की नई पीढ़ी अंग्रेज़ आने की राह देख रहा है । वैश्वीकरण की प्रक्रिया में स्वदेश और स्वदेशी को भूल गई है । किशोरबाबु का बेटा इसका जीवंत चरित्र है ।

इक्कीसवीं सदी में प्यार, ममता, त्याग, धर्म आदि निर्मल निर्दोष शब्द नष्ट हो चुके हैं । मानवीय मूल्य खत्म हो जाएगी । चारों ओर लूट-पाट, मार-काट, हत्याएँ, बलात्कार आदि हो जाए । ऐसे समाज में आज हम खडे हैं । उपन्यास के शीर्षक में ‘बाइपास’ शब्द है, वह मूल समस्याओं से बचकर बगल से सुविधाजनक रास्ते अपनाने के युगधर्म की ओर संकेत

करता है । यह ठीक है कि हम इन समस्याओं का मुकाबला करने के बदले उसे पैदा करने का रास्ता खोलते हैं ।

किशोरबाबु के बाइपास ओपरेशन के बाद वह आज के ज़माने की इन सभी जटिलताएँ महसूस करता है – "सब जगह मैल ही मैल जम गया है ! जहाँ हाथ रखो वहीं गंदगी चिपक जाती ।"[36] सच है कि आज विकास की ओर मुडते समय भी हर जगह मैला ही है । सुविधाएँ है तो भी आपदाएँ भी हैं । स्वातंत्र्योत्तर भारत की इसी नियति को हमें सोचना पड़ेगा। एक ओर तो उपन्यास कलकत्ता की कथा है । इससे ज़्यादा कलियुग की उस बाइपास रास्ते को अपनाने की प्रवृत्ति ज़्यादा है । यहाँ लेखिका पूरी सदी की चेतना को पकड़ने का प्रयास करती है। उपन्यास में आज की समस्याओं का चित्रण है । इस समस्याओं की शुरुआत अतीत से होती है । अतीत का वर्णन भी उपन्यास में विस्तार से मिलती है । और भविष्य का अनेक संकेत भी मिलता है ।

संदर्भ सूची

1. अमृतलाल नागर – टुकडे टुकडे दास्तान – पृ. 67

2. अमृतलाल नागर – अमृत और विष – पृ. 27

3. वही – पृ. 34

4. वही – पृ. 76

5. वही – पृ. 27

6. अमृतलाल नागर – अमृत और विष – पृ. 34

7. प्रकाशचन्द्र मिश्र – अमृतलाला नागर का उपन्यास साहित्य – पृ. 123

8. वही – पृ. 322

9. डॉ. गोपालराय – हिन्दी उपन्यास का इतिहास – पृ. 222

10. अमृतलाल नागर – अमृत और विष – पृ. 477

11. गिरिराज किशोर – ढाई घर (यह उपन्यास क्यों) पृष्ठ से – पृ. 8

12. गिरिराज किशोर – ढाई घर – पृ. 20

13. वही – पृ. 60

14. वही – पृ. 61

15. वही – पृ. 316

16. वही – पृ. 14

17. डॉ. अशोक पवार इन्का – गिरिराज किशोर साहित्य और चिंतन – पृ. 43

18. गिरिराज किशोर – ढाई घर – पृ. 389

19. वही – पृ. 390

20. विनोदकुमार शुक्ल – दीवार में एक खिडकी रहती थी – पृ. 25

21. वही – पृ. 29

22. वही – पृ. 22

23. वही – पृ. 28

24. वही – पृ. 117

25. योगेश तिवारी – विनोदकुमार शुक्ल - खिडकी के अन्दर और बाहर – पृ. 28

26. विनोदकुमार शुक्ल – दीवार में एक खिडकी रहती थी – पृ. 28

27. डॉ. नामवर सिंह – आधुनिक हिन्दी उपन्यास – पृ. 422

28. अलका सरावगी – कलि-कथा : वाया बाइपास – पृ. 20

29. वही – पृ. 95

30. वही – पृ. 176

31. वही – पृ. 194

32. वही – पृ. 70

33. वही – पृ. 143

34. वही – पृ. 147

35. गोपालराय – हिन्दी उपन्यास का इतिहास – पृ. 414

36. अलका सरावगी – कलि-कथा : वाया बाइपास – पृ. 184

अध्याय – ४

नारी की नियति

हिन्दी उपन्यास के आरंभिक काल में ही स्त्री की समस्याओं को प्रमुख स्थान मिला । उस समय नारी में शिक्षा और सामाजिक समता की कमी थी । लेखिकाएँ भी नहीं थी । उस समय के पुरुष उपन्यासकारों ने स्त्री के उद्धार की बात की थी । आज़ादी के बाद समाज में स्त्री की स्थिति में जबरदस्त बदलाव आ गया । आज़ादी के बाद नारी शिक्षा प्राप्त हुई । इससे भारतीय नारी में आर्थिक, सामाजिक और नैतिक दृष्टि से काफी सुधार हुआ । धीरे-धीरे नारी अपने अधिकारों के प्रति अधिकाधिक सजग होने लगी । इस काल में नारी लेखन भी ज़्यादा मिलता है । बीसवीं सदी की समाप्ती पर नारी अपने अधिकारों के लिए संघर्ष ही कर रही है, पर वह संघर्ष अब काफी तेज़ हो चुका है । स्वातंत्र्योत्तर भारत में कई उपन्यासों में नारी की पीड़ा का संवेदनापूर्ण अंकन हुआ । 'अर्द्धनारीश्वर' (विष्णु प्रभाकर), 'मुझे चाँद चाहिए' (सुरेन्द्र वर्मा), 'कोहरे में कैद रंग' (गोविन्दमिश्र) आदि साहित्य अकादमी पुरस्कृत उपन्यासों में नारी की नियति का उल्लेखनीय है । इसमें नारी की नियति का अलग-अलग चित्रण मिलता है । 'अर्द्धनारीश्वर' में बलात्कार की समस्या, 'मुझे चाँद चाहिए' में स्त्री की स्वतंत्र अस्तित्व की सवाल, 'कोहरे में कैद रंग' में विवाह संस्था से जुडी स्त्री की नियति का सहज रुप से चित्रण मिलता है ।

4.1 अर्द्धनारीश्वर

4.1.1 भूमिका

विष्णु प्रभाकर प्रेमचन्द पीढ़ी के उत्तराधिकारी रचनाकार हैं । वे लगभग पचास

वर्षों में निरंतर सृजनशील रहे हैं । उन्होंने भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन को देखा, देश की आज़ादी में काम करने की उत्सुक इच्छा उनमें थी । लेकिन सरकारी नौकरी और आर्थिक संकट उसे आज़ादी की लडाई से दूर रखा । फिर भी स्वतंत्र लेखन के लिए सरकारी नौकरी को जान बूझकर छोड दिया । भावनात्मक स्तर पर स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लिया । उनका लेखन का मूल स्वर मनुष्य की पहचान और हर प्रकार के शोषण से मुक्ति है ।

शरतचन्द्र से सीधे प्रभावित होने के कारण नारी मुक्ति का स्वर उनके रचनाओं में भरपूर मिलते हैं । उपन्यास के क्षेत्र में 'निशिकांत', 'तट के बंधन', 'स्वप्नमयी', 'दर्पण का व्यक्ति', 'कोई तो', 'संकल्प', 'अर्द्धनारीश्वर' उनकी रचनाएँ हैं । नारी जागरण का संदेश उनके उपन्यासों में उभर आया है । उनके अन्य उपन्यासों की तुलना में नारी जागरण की दृष्टि से 'अर्द्धनारीश्वर' (1992) विशेष महत्व रखता है ।

हमारे यहाँ जो अर्द्धनारीश्वर की कल्पना है, उसमें नर-नारी दोनों बराबर है । वे इसी की तलाश में हैं । यही तलाश 'अर्द्धनारीश्वर' में देख सकते हैं । आठ साल की साधना इस उपन्यास के पीछे है । यानि सन् 1985 से सन् 1992 तक का समय लगे । यह उपन्यास विष्णु जी के कुछ वर्ष पूर्व लिखा 'कोई तो' उपन्यास का ही विस्तार है । उपन्यास के संबंध में विष्णु जी की यही राय है कि – "यह घटनाएँ और ये पात्र, सभी सच्चे हैं । कुछ तो अभी भी जीवित है । केरल की नारी अभी भी उसी अवस्था में जी रही है ।"[1] उपन्यास की यही विशेषता है कि समाज में नर और नारी समानाधिकार रखते हैं । इसकी खोज विविध घटनाओं की माध्यम से चित्रित किया है ।

4.1.2 भावभूमि

'अर्द्धनारीश्वर' विष्णु प्रभाकर का सशक्त उपन्यास है । नारी को समाज में जो

आदर और सद्भाव मिलना है उस पहलू पर विशेष ध्यान रखकर उन्होंने इस उपन्यास की रचना किया । उपन्यास में बलात्कार की समस्याओं को केन्द्र में रखकर अन्य सामाजिक समस्याओं को भी उठाया है । यह नारी प्रधान उपन्यास है । उपन्यास तीन खण्डों में विभाजित है – व्यक्तिमन, समाजमन और अंतरमन । व्यक्ति मन में हर व्यक्ति अपनी कहानी अपने सोच के अनुरुप कह रहा है । समाज मन में सामाजिक मूल्यों की दृष्टि से हर व्यक्ति की घटना के प्रति उनकी प्रतिक्रिया बतायी है । बाद में समाज में हर व्यक्ति एक दूसरे पर आक्षेप करता है, समझने की चेष्टा नहीं करता । अंतर मन में हर व्यक्ति को गहराई से अपने अंतस में झांकने का अवसर दिया है ।

उपन्यास की कथा सुमिता का बलात्कार की घटना को लेकर ही शुरु होती है । सुमिता अपने ऊपर किये यह अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाती है । समाज में इस हादसे की शिकारी महिलाओं को लेकर स्त्री शोषण के विरुद्ध अपना अभियान शुरु करती है । विभा, वार्तिका, किरण, शाहिदा, राजकली, श्यामला, पम्पी, वासंती, उषा आदि कई नारियों का उल्लेख उपन्यास में है । वे मानसिक और शारीरिक पीडा से ग्रस्त हैं । वे भी सुमिता के साथ जुडकर स्त्री मुक्ति का आवाज़ उठाती हैं ।

विष्णु प्रभाकर जी ने उपन्यास में अर्द्धनारीश्वर का पौराणिक प्रतीक के द्वारा स्त्री-पुरुष संबंधों की आदर्श खोजने की कोशिश की ।

4.1.3 जागती नारी चेतना

उपन्यास में स्त्री की विविध समस्याओं का आकलन हुआ है । नारी उत्पीडन के विरुद्ध कई स्त्रियाँ आवाज़ उठाती है । उनकी दृष्टि से नारी समस्याओं का विश्लेषण

उपन्यासकार ने किया है ।

बलात्कार से उत्पीडित नारियों का चित्रण उपन्यास में बखूबी मिलता है । बलात्कर की घटना से ही उपन्यास शुरू होता है । सुमिता, उसके पति अजय और ननद विभा के साथ सिनेमा घर से लौटते वक्त बलात्कारी गुण्डों का संघर्ष चलते हैं । सुमिता अपनी विभा को बचाने के लिए खुद गुण्डों के पास चली । उन गुण्डों ने सुमिता का बलात्कार किया । तन-मन से वह पीडित हुई । सुमिता के लिए अपना पाप-बोध से मुक्ति पाना असह्य हो जाता है । उस काण्ड को फिर से जीने की शक्ति उसमें नहीं थी । सुमिता को अपने ससुर और पति का पूर्ण सहयोग मिला । अजित सुमिता को बेहद प्यार करता है । वह यह भी जानता है कि उसने उसकी बहन के लिए अपना बलिदान किया है । लेकिन यौन-सुचिता का जो प्रश्न है, उसके कारण उसके अंतर्मन में द्वन्द्व मचता है । यह दुर्घटना परिवार में आपसी संबंधों में गांठ डाल देता है । अंत में सुमिता ही अपने पति और ससुर के सहयोग से स्त्री शोषण का रास्ता खोज निकालती है ।

सुमिता दिल्ली स्कूल ऑफ सोशल वर्क में काम करती है । 'नारी-मन' पत्रिका में कभी-कभी नारी की समस्या को लेकर लेख भी लिख लेती है । वह अपने ऊपर हुए अत्याचार को चुपचाप समाज की अन्य नारियों की तरह नहीं सहती । बल्कि समाज में इस दुर्घटना की भुक्तभोगी महिलाओं को बलात्कार के विरुद्ध समाज में अपना अभियान शुरू कर दिया है । उपन्यास में बलात्कार से पीडित ऐसे कई प्रसंगों में नारियों का चित्रण मिलते हैं ।

सुमिता अपने शोध के संबंध में सबसे पहले पम्पी से मिलती है । नवविवाहिता पम्पी पर उसके नौकर ने ही बलात्कार किया था । पति के भरोसा भरी बातें उसे ज़िन्दा रहती है । उस दरिन्दे को पति ने पुलिस के सामने खडा किया । लेकिन पुलिस ने भारी रिश्वत लेकर

उसे छोड दिया और पति से कहा है कि कोई प्रत्यक्ष दर्शी गवाह नहीं है । इस घटना पर पम्पी खुद उस दरिन्दे को अपराधिनी नहीं स्वीकारता बल्कि समाज को अपराधी मानती है । पुरुष प्रधान समाज से वह घृणा करती है । पति उसे समझाती है कि जब व्यक्ति में क्षमता व सहारा होगा तभी समाज शक्ति पा सकेगा । यही सोच उसे हिम्मत देती है । सुमिता बार-बार यही सोचती है कि – "अपने अंदर की दासता से मुक्ति, पुरुष और उसके बल के आकर्षण से मुक्ति, निरंतर संघर्ष, निरंतर आगे बढना, निरंतर पूर्णता, निरंतर सत्य की तलाश में बढना ।"[2] मुक्ति हमें किसी ओर से नहीं, मुक्ति हमें अपने आप से ही पानी है । यानि अपने अंदर की दासता से । यही सोच सुमिता को नारी मुक्ति की तलाश की ओर बढी ।

सुमिता की मुलाकात 'नारी-मन' पत्रिका की उप संपादिका शालिनी से हुई । शालिनी जब सात वर्ष की आयु में थी तब एक सत्तर वर्ष के वृद्ध व्यक्ति ने उसे बलात्कार किया । शादी के बाद भी इस घटना को लेकर वह नार्मल नहीं हो पाती है । पति के प्रति उसका ठण्डा व्यवहार तालाक तक पहूँचता है । शालिनी ने तीस वर्ष बाद भी इस हादसा को खोलना का प्रयास किया है ।

विजय पगारे एक पत्रकार है । वह अखबार की ओर से सुमिता को बंबई राजकली कांड के सिलसिले में बुलाता है । सुमिता बस्ती में राजकली का पता पूछती है तो कोई बताने को तैयार नहीं था । राजकली कमज़ोर वर्ग के एक परिवार की बेटी है । वह पुलीस की हवस का शिकार हुई । पुलीस लोगों ने उसपर दारु का व्यापार करने का इलज़ाम लगाकर हवालत में बन्द कर दिया । बलात्कार के बाद वह पेट से रही । तो जबरन उसका गर्भपात भी कराया गया । राजकली और उसके परिवार गरीब और ऊपर से सामाजिक कलंक सहने की यातना झेलते हैं । उसके पिता का रोष – "हज़ारों लडकियों के साथ रोज़ बलात्कार होता है,

पर वे किसी से कहती नहीं । मेरी बेटी की कहानी हवा में उड़कर चारों ओर फैल गई । गलती हमारी ही थी । हम ही भुगत रहे हैं । आप क्या करेगी मिल कर? बलात्कार के निशान तो मिलेंगे नहीं । वह स्वस्थ है । जवान है । शरीर ठीक हो गया, पर मन .....”[3] राजकली ने कोई बुरा काम नहीं किया । उसके साथ बुरा काम हुआ है । फिर भी समाज में वह अपमानित और खुद अपराधी मानती है । राजकली उन्हीं नारियों में से है जो चोट खाकर भी उसका हृदय अपनी पूरी शक्ति के साथ धडकने लगा । वह सुमिता से कहती है – “मैं क्यों करती आत्महत्य? मुझे भी जीने का उतना ही अधिकार है जितना किसी और को ।”[4] निम्न कुलोत्भव होने के कारण उसे ज़्यादा कठिनाईयाँ सहनी पडी । इन्हीं यातनाओं को झेलते हुए भी वह समाज से लडने के लिए तैयार थी । उसकी यही धारणा है कि उनके पतन का कारण भय है । उस भय को दूर करने से जीत सकी ।

बलात्कार से पीडित मार्था नामक एक स्त्री का उल्लेख उपन्यास में है । घर में बच्चे सहित रहते समय बलात्कारी गुण्डे आकर छुरा हवा में लहराया और बच्चों को मार डालने की धमकी दी । उसने प्रतिरोध किया फिर भी व्यर्थ पडा । बाद में वह केवल ज़िन्दा लाश मात्र रही । पति ने उसे संभालने की कोशिश की । पुलीस ने आकर मामला दर्ज किया । सालों बाद भी वह उसी मानसिकता से पीडित है । सुमिता उन झूठे मूल्यों से नफरत करती है, जिनके अनुसार नारी पुरुष से हीन है । नर-नारी को अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व बनाए रखते हुए एक-दूसरे से जुडना है, अर्द्धनारीश्वर की तरह । बलात्कार का शिकार झेलती नारियों से साक्षात्कार करने से सुमिता विवश है । बलात्कार के लिए नारी दोषी नहीं है पर दण्ड वही सहती है ।

वासंती एक सुन्दर नारी है । एक दिन उसके पति प्रशांत ने शराब पीकर मार पीट किया, और उसके साथ पैशाचिक व्यवहार किया । फिर भी वह उसे छोडा नहीं । उसके

बाद वासंती मिट्टी का तेल छिडकाकर आग लगा देता है ।

किरण निम्न वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है । उसे घर से रात में तीन गुंडे खींच लेते हैं और उसकी इज्जत लूट ली । सुमिता और उसके परिवार किरण को नैतिक और आर्थिक समर्थन देकर आत्मबल देता है । अछूत कन्या होने के नाते उसे समाज से कई मानसिक परेशनियाँ झेलनी पडी है । दो गुण्डे जबरन अपना अपराध स्वीकार करते हैं । तीसरे को पुलीस पकड नहीं पायी, तो खुद किरण यह काम दिखाया । सुमिता और परिवार वाले के सहारे मुकदमा चला । अदालत ने बलात्कारियों को दस हज़ार रुपये जुर्माना करने को कहते हैं, वह पैसा किरण को देना है । लेकिन किरण की यही प्रतिक्रिया – "मुझे उनका पैसा नहीं चाहिए जिन्होंने मेरे साथ बलात्कार किया । और यह मैंने उन्हें लिख कर दे दिया है ।"[5] अंत में किरण सुमिता के साथ जुडकर स्त्री मुक्ति आन्दोलन की कार्यकर्ता बन जाती है ।

आम जनता ही नहीं नेता लोगों ने भी बलात्कार शब्द को बढावा दिया है । करेल की एक मज़दूर नर्स के साथ नेता ने बलात्कार किया । अपराधी नारायण था, जो अनाथालय में पलकर बढा हुआ था । विजय पगारे ने यौन संबंधों को लेकर कई बार लिखा। उसने बार-बार प्रश्न उठाया कि – "स्वतंत्र भारत अलग-अलग समय पर अलग-अलग यौन भ्रष्टाचारों की गूँज जनमानस को उद्धेलित करती रही, लेकिन उनसे जो नारियाँ जुडी थी उनमें से कुछ ने आत्महत्या कर ली । कुछ दुर्घटनाग्रस्त होकर चल बसी । लेकिन जो पुरुष थे वे वैसे ही देश का नेतृत्व संभाले हैं और मूँछों पर नाव देते आयातित कारों में घूम रहे हैं ।"[6] हमारे ही नगर में ऐसे कई घटनाओं को देखा है ।

बलात्कार के विरुद्ध सुमिता ऊँचे स्वर में बोलती है कि नारी पर दिन-ब-दिन बलात्कार की शिकार होती है । इसमें भी नारी का दोष होता है – "पुरुष दस नारियों से

शारीरिक संबंध रख सकता है । नारी चाहे-अनचाहे एक से अधिक संबंध बनाती है या बनाने को विवश होती है तो वह पतित है, वेश्या है ।”[7] पुरुष प्रधान समाज होने के कारण नारी सभी प्रकार की पाबंदियों को झेलने को विवश है । जब तक यही समाज व्यवस्था बनी रहती है तब तक वह विवश रहेगी ।

उपन्यास में नारी कहीं पति परित्यक्ता होने की, कहीं प्रेम से वांचित होने की, कई उल्लेख देख पाते हैं । श्यामला पति परित्यक्ता नारी है । श्यामला ने बी.ए. करने के पहले शादी कर ली । श्यामला से उसने इसलिए शादी की थी कि उसका भाई उसे दुबई का विज़ा दिलवा सकेगा । ऐसा न हो सकने के कारण उसने श्यामला को तलाक माँगा । पति ने उससे पैसा छीन लिया । रुपयों के लिए उसे बहुत मारा । सब लेने के बाद उसे असहाय छोडकर चले गये । ज़िन्दगी बनाये रखने के लिए श्यामला दो विवाह भी किया । फिर भी उसे परित्यक्ता की ज़िन्दगी गुज़ारना पडा । श्यामला की यही सोच है कि बिना पुरुष के उसकी गति नहीं । इसलिए दूसरा विवाह भी की । लेकिन उससे भी वह यातना सहती है । पुरुष की सहायता से संतान का सौभाग्य मिलेगा । इसी मोह से तीसरी शादी केशव से हुई । उसमें एक संतान भी मिली । फिर भी केशव उसे पैसा के लिए मारता है और छोडा । उसकी ज़िन्दगी में सुखी का एक क्षण भी नहीं । श्यामला आर्थिक स्वावलंबी चाहती है । लेखन कार्य से वह पैसा जुटाती है । लेकिन उसके पति उससे पैसा लुटाता है । दुनिया में सब कार्य पैसे से चलते हैं तो सुमिता के पिताजी की यह बात – “भारत की नारी यदि सचमुच अपना अधिकार लेना चाहती है तो उसे उस राह का राही होना होगा जिस राह पर विभा और तुमने चलने का साहस किया है ।”[8] एक स्वतंत्र सत्ता के लिए यही अनिवार्य है । श्यामला पढ़ी लिखी है, लेखिका है, फिर भी हमेशा दुखित परिस्थितियों में रहती है ।

उषा भी पति परित्यक्ता नारी है । वह कॉलेज में पढाती है । पति विज्ञान के अध्यापिका है । पिता के विरोध सहकर उषा उसे शादी कर ली । फिर भी उसकी ज़िन्दगी में अकेलापन महसूस होने लगा । पति एक शिष्या के साथ अवैध संबंध रखता है । इसका ज्ञात होते उषा खुद उसकी ज़िन्दगी से निकल गयी ।

विभा का पति का संबंध उसकी भाभी से है । भाई साहब की मृत्यु के उपरांत भाभी उसके घर में आ बसी । विभा पति और भभी के बीच की यौन क्रीडाओं का मूक साक्षी है । विभा ने पति अनित्य को चेतावनी भी दी । लेकिन अनित्य से वह यह भी जानती है कि भाभी का पुत्र अनित्य से मिला है । बाद में विभा उनसे अलग हो जाती है । विभा पति परित्यक्ता का जीवन बिताते हुए खुद अपने पैरों पर खडी, और एक सफल ज़िन्दगी बिताती है। अनित्य से तालाक देने के अवसर पर विभा की यह बात – “रही तुम्हें मेरे खर्चे के लिए धन देने की बात, उसके लिए भी मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं आग्रह नहीं करूँगी । अपने पैरों पर खडे होने की शक्ति मुझमें है । जो ज़िन्दगी मैं आज जी रही हूँ उससे निरंतर रक्त रिस रहा है । उस रिसने से मुक्ति पाना मेरी सबसे बडी उपलब्धि होगी ।”[9] विभा भी सुमिता से प्रेरित होकर नारी मुक्ति का आवाज़ उठाने लगी । विजय पगारे से उसमें एकदम लगाव पैदा हुई । लेकिन बाद में पगारे एक मराठी स्त्री से शादी की । यहाँ भी वह वंचित दिखाई पडती है । फिर भी एक अवसर पर उन दोनों को उसने आर्शीवाद भी दी ।

विभा स्त्री मुक्ति आन्दोलन के समर्थक है । उसके लेख और भाषण दिन ब दिन स्त्री मुक्ति का दरवाज़ा खोलता है । कभी कभी उग्र समाज सुधारक के रुप में समाज को खुली चुनौती भी की । नारी को चेतावनी देती हुई कहती है कि – “नारी की स्वतंत्र सत्ता का, नारी की सेक्स-इमेज से कोई संबंध नहीं है । उसका अर्थ है समान अधिकार, समान दायित्व,

एक स्वस्थ समाज के निर्माण के दोनों समान रूप से भागीदार है । अर्द्धनारीश्वर का प्रतीक इस कल्पना का साकार रूप है : एक-दूसरे से विसर्जित नहीं, एक दूसरे से स्वतंत्र, फिर भी जुडे हुए । नारी को बस नारी बनना है, सुन्दरी और कामिनी नहीं ।"[10] नर नारी अपनी अपनी इच्छा के अनुसार स्वतंत्र रूप से आचरण करेंगे ।

वार्तिका नारायण के साथ बिना विवाह के रहती है । नारायण द्वारा उसका अपना एक बेटा भी है । उसे वह बहुत चाहती है । वह ज़्यादा समय बेटे के पास ही गुज़रती है । उसकी इस हरकत से नारायण उसे दूर हो जाता है । बाद में वार्तिका नौकरी कर जीवन बिताती है और बच्चे को पालती है । अंत में वार्तिका नारी मुक्ति संघर्ष में विभा के साथ जुडती है ।

शाहिदा एक हिन्दु पुरुष शिवनाथ से प्रेम करती है । दोनों भिन्न धर्मवाले हैं । घरवालों के विरोध में भी वह शिवनाथ को चाहती है । नौकरी के लिए विदेश जाने का अवसर पर शाहिदा को वादा भी लेता है कि उसे भी वहाँ ले जाता । लेकिन शिवनाथ ने विदेश जाकर एक सुन्दर और सुशील नारी से शादी की । केवल एक पत्र शाहिदा को भेजा माफी मांगने का। परित्यक्ता की ज़िन्दगी शाहिदा भी गुज़र रही है । आगे किरण की रास्ते में वह आयी ।

रमा केन्द्रीय विद्यालय में प्राध्यापिका है । उसकी शादी 10 वीं पढते समय कर दी गयी । लेकिन उसका पति कभी उसके पास नहीं आया । पति ने दूसरी शादी कर ली । उसमें बाल बच्चे भी हैं । रमा का कसूर इतना है कि उसके पिता उसकी माँ को छोडकर चले गये । माँ उनकी प्रतीक्षा में ज़िन्दगी निभाती है । रमा शादी के बाद पढने लगी । आज वह कामकाजी महिला बनी । तलाक का मामला भी चल रहा है । माजदा एक ऐसी लडकी है जो 19 साल में शादी हुई । अब उसके उम्र 27 है । खाता-पीता परिवार है । पर पति अनपढ

और दिमागी तौर पर असंतुलित है । तलाक की मामला दर्ज किया । पर उसकी हर्जी खारिज हो गयी । माजदा परित्यक्ता की ज़िन्दगी गुज़र रही है । एक स्त्री है प्रभा मनचन्दा । उसके प्रेम विवाह है । पति विदेश में नौकरी कर रहा है । वहीं उसने दो विवाह की । प्रभा ससुराल से घर आती और एक स्कूल में नौकरी कर ली । तलाक के लिए कोर्ट में हर्जी दी । लेकिन हर्जी खारिज हो गयी । वह भी परित्यक्ता बनी रही । उपन्यास में पुरुष वर्ग से उत्पीडित कई स्त्रियों का उल्लेख है ।

आलोचक मधुरेश व्यक्त करते हैं कि – "अर्द्धनारीश्वर में विष्णु प्रभाकर ने इस पुरुषवादी समाज में अलग अलग प्रांतों की कुछ बलात्कृत स्त्रियों के माध्यम से सामाजिक संरचना के प्रमुख अंतर्विरोधों को उद्घाटित करते हैं ।"[11] अर्द्धनारीश्वर में नारी शोषण के विविध रुप चित्रित हुए हैं । भले ही समाज में नर और नारी को समानाधिकार प्राप्त है । तथापि समाज में नारी इस अधिकार से वांचित रहती है। निश्चय ही नारी मुक्ति आन्दोलन का बीज इस उपन्यास में मिलता है ।

4.1.4 मूल्यांकन

स्त्री ह्रदय की भलाईयाँ साहित्यक कृतियों में प्राचीन काल से ही चित्रित होती आयी है । विष्णु प्रभाकर की साहित्य साधना भी इस दिशा से शुरू से ही अग्रसर रही है । वह एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते हैं, जहाँ कोई अमानवीय कार्य न हो । सभी को अपना अधिकार मिले । नारी को अपने अधिकारों के प्रति सजग बनाना, उसे अपने अस्तित्व का बोध कराना, अन्याय अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ करने की प्रेरणा देना, उसकी निर्णय क्षमता को विकसित करने में सहायता करना आदि विविध बातें 'अर्द्धनारीश्वर' के स्त्री पात्रों द्वारा मिलते हैं । गोपाल राय का कथन है कि – " 'अर्द्धनारीश्वर' में परंपरागत नारी संहिता से परिचालित

संपूर्ण नारी नियति का विश्लेषण करने का भी प्रयास किया गया है ।"[12] उपन्यास का आरंभ ही बलात्कार से शुरु होता है । बलात्कार भारत में स्त्रियों के साथ बडे पैमाने पर होनेवाले अपराध है । पुरुष प्रताडित समाज में नारी केवल भोग वस्तु है । औरतें केवल उनके मन की भूख्र मिटाने के लिए हैं ।

सुमिता बलात्कारी गुण्डों से अपने ननद को बचाती है । उसने अपने परिवार के प्रति दायित्व प्यारी ननद को बचने से किया । यहाँ सुमिता खुद नाश को स्वीकारती है । खुद पराजय स्वीकारते दूसरों की रक्षा करने की भारतीय नारी की गरिमा वहाँ हम देख्रते हैं । परिस्थितियों के दबाव में पडकर नारी बलात्कार की शिकार हो जाती है । नारी उस मामले में निरपराधी है । लेकिन जीवन भर के लिए वह कलंकित हो जाती है । पम्पी, शालिनी, राजकली, मार्था, वासंती, किरण आदि बलात्कार से पीडित पात्रों की मानसिक और शारीरिक तनाव उपन्यास में भरपूर चित्रित किया है । यहाँ विष्णु प्रभाकर ने सुमिता के द्वारा समाज से पीडित नारियों को अपने अस्तित्व की तलाश करने का आह्वान देते हैं । सुमिता ने स्त्री मुक्ति आन्दोलन का सूत्रपात की ।

पुरुष प्रताडित समाज की ऐसी धारणा है कि पुरुष के बिना नारी कैसे जी सकती है ? यह उसकी शारीरिक मांग हो सकती । यहाँ सुमिता इसी शारीरिक मांग को मर्यादा देना चाहती है । लेकिन उपन्यास में एक स्त्री है श्यामला, उसकी भी यही सोच है कि पुरुष के बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं । इसलिए उसने तीन बार विवाह किया । फिर भी परित्यक्ता की ज़िन्दगी बितानी पडती है । नारी की पतन का एक कारण नारी भी है । सुख्र का एक क्षण भी उसे नहीं मिली । यहाँ प्रश्न किसी सुमिता का, श्यामला का या किरण का नहीं है, हम सभी का हैं । हम भी उसी समाज के अंग हैं । हमारे जैसे न जाने कितनों के साथ ऐसा होता रहता

है ।

स्त्री शताब्दियों से शोषित, कुंठित और सामाजिक बंधनों से जकडी हुई थी । वह स्वतंत्रता पूर्ण जीवन जीने के लिए संघर्ष करने लगी । स्वातंत्र्योत्तर भारत में भी यही संघर्ष देखते हैं । उपन्यास में विभा, सुमिता, किरण, वार्तिका, शाहिदा आदि स्त्री पात्र बराबरी की तलाश में जुटा है । सब में एक सबल शक्ति और ऊर्जा देखते हैं । ऊर्जा के इस स्रोत का उद्घाटन ही उपन्यास को एक सशक्त रचना बनाता है । यह स्वीकार करना होगा कि आज नारी सबल होकर अपने अधिकारों की मांग करने में प्रयत्नरत है । यह प्रयास उपन्यास में कभी सुमिता के घर द्वारा, कभी प्रसार माध्यमों के द्वारा, कभी न्यायालय के विरुद्ध किया जा रहा है ।

युग-युगों से हमारा समाज नारी को तरह-तरह से प्रताडित करता आया है । जिससे उसका स्वतंत्र अस्तित्व कभी उभर नहीं पाता । जिस समाज में नारी स्वावलंबी एवं स्वतंत्र बनेगी, उसी समाज में स्वस्थ परिवर्तन संभव होगा । ऐसी नारी की तलाश में है विभा और सुमिता । संकट से प्राप्त अनुभवों के आधार पर जागृत होने की स्थिति पैदा होती है । यहाँ विभा और सुमिता के द्वारा जागरण का रास्ता खोलती है । लेखक की जीवन दृष्टि सुमिता, विभा आदि पात्रों के ज़रिए मिलते हैं । इन पात्रों के द्वारा समाज से पीडित अन्य स्त्री जनों में मानसिक परिवर्तन देखते हैं ।

उपन्यास समस्याप्रधान है । फिर भी सामाजिक बुराईयों से ज़्यादा साक्षात्कार कराता है । अपने देश में भी हम देखते हैं कि हर क्षेत्र में महिलाएँ आगे बढती हैं, लेकिन उनपर होनेवाले अत्याचारों भी लगातार बढ रही हैं । यहाँ तक कि घरों में व घरों के बाहर छोटी-छोटी बच्चियाँ तक सुरक्षित नहीं । शालिनी एक ऐसा पात्र है जो सात वर्ष की आयु में बलात्कार की

शिकार होती है । अपने घर में भी नारी सुरक्षित नहीं है । पंपी, वासंती, मार्था, किरण आदि स्त्रियाँ घर में रहते समय ही बलात्कारी गुण्डों के आक्रमण का शिकार बने । पति से पीडित, पत्नी के रहते हुए दूसरों के साथ यौन संबद्ध रखते, प्रेत से वांचित और तलाक शुदा मांगते स्त्रियाँ आज समाज में अधिक है । विभा, उषा, रमा, वार्तिका, श्यामला आदि इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है । स्वतंत्रता के इतने सालों बाद भी चारों ओर असुरक्षा व अपमान की स्थितियाँ विद्यमान है । परित्यक्ता, तालाक, यौन हिंसा, हत्या आदि कई समस्याएँ आज भी मौजूद हैं । बराबरी अब भी एक मरीचिका है । अब हम समाचार पत्रों, टी.वी. जैसे माध्यमों के सहारे कितनी कितनी पीडाओं का खबर सुनते हैं । आज नारी बराबरी का मानवाधिकार चाहिए, जो संविधानप्रदत्त है, किंतु समाज उसे देना स्वीकार नहीं करता । वर्तमान की विभीषिकाओं ने अधिकार संपन्न नारी के जीवन को भी अभिशप्त कर रखा दे ।

नारी मुक्ति के इस काल में पुरुष को निन्दा करने की स्थिति है । लेकिन उपन्यास में ऐसे पुरुष पात्र भी है जो नारी को हर परिवेश में साथ रखते हैं । सुमिता का पति अजित, पम्पी का पति, सुमिता का ससुर डॉ. महेन्द्र आदि दुष्कर्मों से घृणा करनेवाला पुरुष पात्र है । सुमिता के घर में समाज से पीडित नारियों के रहने का अवसर देता है । उसका परिवार बेसहारा नारी को सहारा देता है ।

नारी की सहायता करने में आज कई संस्थाएँ हैं । सन् 1975 के महिला वर्ष के बाद चार महिला दशक बीत गये । राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर बडे पैमाने पर नारी चेतना का आवाज़ बुलन्द करते हैं । फिर भी अब हर मंच से यही स्वर मुखरित होता है कि नारी शोषण बढ रहा है । बराबरी का यह संघर्ष कब खतम होगा ? घर में रहकर जेल की कोठरी की यातना सहना हर स्त्री की नियती है । स्वातंत्र्योत्तर भारत में यह शर्म की बात है कि स्त्री अब

भी बराबरी न मिलने की पीडा सहती रहती है । हर बार नारी को अपनी सतीत्व की परीक्षा देनी पडी है । पौराणिक पात्र शकुंतला हो, सीता हो, द्रौपदी हो, उन्हें ही भोगना पडा नारी होने की अभिशाप । उपन्यास के प्रकरण में जिसका एक प्रकरण मिलते हैं । सुमिता का यह कथन कितना सार्थक है कि – "नारी कब तक ढोती रहेगी इस अभिशाप को ।"[13] कितनी पीडा कितनी घृणा नारी सहती है । पुरुष के बल के आकर्षण से कब मुक्ति मिली ? सुमिता जिस लक्ष्य को लेकर अपने सामाजिक सर्वेक्षण में सक्रिय होती है, वहीं वस्तुतः भविष्य की नारी का आभास देता है । हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करते हैं । ऊपर से देखने पर लगता है कि नारी हर क्षेत्र में अग्रणी है । कल तक जो काम पुरुष के अधिकार में थे, वो अब नारियाँ भी कराती है । वह ट्रेन चलाती है, हवाई जहाज़ उडाती है, देश पर शासन करती है । फिर भी हर अत्याचार से वह पीडित है । अर्द्धनारीश्वर की परिकल्पना की पूर्ति के लिए स्त्री को लडना बाकी है । नर-नारी अपना अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व बनाए रखते हुए एक दूसरे से जुडना है अर्द्धनारीश्वर की तरह । लेकिन अब यह संभव नहीं । निश्चय ही यह उपन्यास समसामयिक समाज का दर्पण है । अर्द्धनारीश्वर की परिकल्पना का साकार होना आवश्यक है । नहीं तो समाज में अधोगति पहूँचेंगे ।

4.2 मुझे चाँद चाहिए

4.2.1 भूमिका

बीसवीं सदी के अंतिम दशक में हिन्दी में कई सशक्त रचनाकार रचनारत है । उनमें सुरेंद्र वर्मा का स्थान विशिष्ट है । रचनाकार के रूप में उनकी मुख्य विधा नाटक और रंगमंच है । लेकिन उपन्यास की क्षेत्र में भी उन्होंने अपनी सृजन की मौलिकता दिखाई है । वर्मा जी ने अपने जीवन का काफी समय नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा में व्यतीत किया है । एन.एस.डी

में रहते समय ही उन्होंने ज़्यादा नाट्य लेखन किया । 'अंधेरे से परे', 'मुझे चाँद चाहिए', 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' आदि उनके उपन्यास हैं ।

'मुझे चाँद चाहिए' सुरेन्द्र वर्मा का बहुचर्चित उपन्यास है । एक अभिनेत्री की संघर्षगाथा इस उपन्यास का उपजीव्य है । फिल्मी उद्योग से ज़्यादा जुड़े होने के कारण देखे हुए, भोगे हुए अनुभवों का गहराई उपन्यास में देख पाते हैं । हिन्दी पाठक को पहली बार रंगमंच और सिनेमा संसार का समृद्ध और संवेदना भरा चित्र इस उपन्यास में देखने को मिलता है । यही उपन्यास की विशेषता है ।

4.2.2 भावभूमी

उपन्यास की कथा तीन खण्डों में विभाजित है । उपन्यासकार ने प्रत्येक खण्ड को अलग-अलग शीर्षक दिये हैं । यह एक नायिका प्रधान उपन्यास है। उपन्यास का प्रारंभ शाहजहाँपुर नामक छोटे से गाँव में 54, सुलतानगंज में रहनेवाली वर्षा के पात्र द्वारा होता है । उपन्यास की नायिका है वर्षा । वर्षा के ज़रिए वर्मा जी ने नारी जीवन के महत्वाकांक्षाओं का चित्रण बखूबी किया है । वह अपने परिवार की रुढी परंपराओं को तोडकर आगे बढती है । अपनी महत्वाकांक्षा की सफर में वह अकेली है । फिर भी कला के क्षेत्र को स्वीकार कर एक अभिनेत्री का सर्वोत्कृष्ट पुरस्कार तक प्राप्त होती है ।

उपन्यास में नारी जीवन की महत्वाकांक्षा, उसके लिए परिवार के सनातन विचारों से संघर्ष और रंगमंच के प्रति समर्पण की ही कथा नहीं है । फिल्म इंडस्ट्री तथा उससे जुडे कई लोगों की कथा भी है । उपन्यास में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है ।

4.2.3 नारी की महत्वाकांक्षा

उपन्यास की नायिका सिलबिल उर्फ यशोदा शर्मा एक मध्यवर्गीय परिवार की

लड़की है । जिसे अपने ज़िन्दगी से नफरत है । उस लड़की की अपने परिवार से संघर्ष उपन्यास में सर्वत्र मिलती है । पिता किशनदास शर्मा रूढ़ परंपरावादी है । हाईस्कूल का फार्म भरते समय इस रूढ़ी परंपरा से विद्रोह करती और आत्मशुद्धि करते हुए उसने अपना नाम बदल लिया – वर्षा वशिष्ठ । आत्मान्वेषण की सुदीर्घ यात्रा की शुरुआत में उसने सबसे पहला अपना कदम उठाया । यहाँ वर्षा अपना नाम बदलकर विद्रोह करती है । शर्मा जी के वंश की सात पीढियों के इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ ।

नाम बदलने की सूचना मिलते शर्माजी ने गुस्से से इस तरह पूछा –

'तुमने अपना नाम दिल दिया?'

वह उत्तर देती है कि – मुझे अपना नाम पसंद नहीं था । आगे कहती है कि – "अब हर तीसरे-चौथे के नाम में शर्मा लगा होता है । मेरे क्लास में ही सात शर्मा है । ... और यशोदा ? घिसा-पिटा, दकियानूसी नाम । उन्होंने किया क्या था ? सिवा क्रिश्न को पालने के ?"[14]

वर्षा का नाम बदलने का मुद्दा घरवालों की समझ के बाहर था । पिताजी यह सुनते ही हैरान रह जाते हैं । उन्होंने आज तक यही सुना था कि 'कोई लडकी भाग गई' या 'आत्महत्या कर ली'। लेकिन यह पहली थी वर्षा अपनी जाति बदलकर 'शर्मा' से वशिष्ठ कर लेती है । परिवार में वर्षा अपने आप अलग ही जान पडती है । स्वतंत्र अस्तित्व की कामना और अपने घर की दखियानूसी परंपरा का उल्लंखन करना उसका लक्ष्य है । अपना नाम बदलने के पीछे यही कामना है ।

वर्षा के मन में जिजीविषा प्रबल बनती रही है । कक्षा के अध्यापिका दिव्या कत्याल के मैं आगे चलकर क्या बनना चाहती हूँ सवाल की उत्तर में उसने लिखा – "मेरा बस

चले, तो मैं आकाश की दहलीज पर बनी सात रंगों की इन्द्रधनुषी अल्पना बनूँ, आश्रम में शकुंतला की प्रिय 'वन-ज्योत्सना' सखी बनूँ, चन्द्रमा को देखकर खिल जानेवाली कुमुदनी बनूँ, पर जो अपने प्रदेश के अनुरूप दबी-संकुची मध्यवर्गीय कन्या है, उसकी महत्वाकांक्षा की अंतिम सीमा यही हो सकती है कि कोई लोअर-डिवीजन क्लर्क उसके हाथों से वरमाला स्वीकार कर ले और मामूली दहेज के बावजूद ससुराल के रसोईघर में उसके साथ कोई दुर्घटना न हो ।"[15] इससे दिव्या कत्याल बहुत प्रभावित हुई । वर्षा अन्य मध्यवर्गीय घरों की लडकियों की तरह शादी करके बच्चे पालने तक अपनी इच्छाएँ सीमित रखना नहीं चाहती है । उसे अपना वर्तमान आर्थिक स्थिति का सच्चा ज्ञात है । दिव्या ने यह समझकर वर्षा से ट्यूशन चलाने को कहा । वर्षा की यह दूसरी विद्रोह है । शर्मा जी को अपनी बेटी का यह कदम अच्छा न लगा । 'लोग क्या कहते' ऐसा सामाजिक डर शर्मा जी को है । इसे दूर करते वर्षा कहती है कि – "दो पैसे और आयेंगे तो घर की मदद ही होगी ।"[16] दिव्या कत्याल उसका अंधकारमयी ज़िन्दगी को रोशनी दिखलाता है । शर्मा परिवार की सात पीढियों में काम करनेवाली वह पहली कन्या थी ।

मिश्रीलाल डिग्री कॉलेज के संस्थापक दिवस पर नाटक में भाग लेने के लिए दिव्या वर्षा से समझाती है । दिव्या कत्याल का यह प्रस्तव वर्षा के जीवन का रंगमंच के संसार में पहला पदार्पण था । दिव्या वर्षा के मन में उभरे उफान को किसी भी तरह बाहर लाना चाहती है । दिव्या उसके मन के भय को दूर करती है । बी.ए. पास करते वक्त उसके सामने एक स्पष्ट, स्वावलंबी दिशा होती है । नौकरी करने का सोच मध्यवर्गीय परिवारवालों से बहुत दूर था । विशेषत: एक स्त्री के लिए । यहाँ रहते हुए वह अपनी नियति देख सकती है । सिर्फ बी.ए की डिग्री के सहारे कोई नौकरी मिल नहीं सकती । स्वावलंबी दिशा का गूढ़ अर्थ ऐसा पथ था, जो उसे शाहजहांपुर की सीमाओं से बाहर ले जाये । वर्षा ने रंगमंच को अपनी अभिव्यक्ति

का माध्यम स्वीकार किया । नाटक में भाग लेने का समाचार सुनकर शर्माजी नाराज़ होकर पूछते है कि वर्षा तू नौटंकी में काम कर रही है ? ..... हर बात की हद होती है । आखिर हमारे घर की भी कोई इज्जत है ? मध्यवर्गीय परिवार के लिए यह उचित कार्य नहीं । शर्मा जी नाटक को हेय समझते हैं । उसे ऐसी धारणा है कि नौटंकी में काम करते स्त्रीयाँ चरित्रहीन है । परिवारवालों को कट्टर विरोध के बावजूद भी उसने 'अभिशप्त सौम्यमुद्रा' में अभिनय किया और सफलता भी प्राप्त की ।

लडकी का ब्याह माता पिता के लिए स्वप्न था । उसके परिवारवालों के बीच यही सोच है कि उसका स्वच्छंद व्यवहार से अच्छा वर न मिले । उसके लिए अपने वंश की परंपरा और मर्यादा ज़्यादा बडी है । वर्षा विवाह प्रस्ताव को स्वीकारती नहीं । वह जानती है कि उसकी आकांक्षाओं की सफलता के बीच विवाह एक बाध्य हो गयी । इससे वह अपना विरोध प्रकट करती है ।

नाटक में काम करते वक्त वर्षा के अंदर अभिनय या व्यक्तित्व का नया आलोक होता है । इसी बीच दिव्या लखनऊ जाती है । इम्तहान पूरा हो जाने के बाद वर्षा लखनऊ जाने को तैयार होती है । लेकिन पिता उसे मना कर देते हैं । रोष से कहते हैं – "अगर तू ने बाहर पाँव रखा, तो फिर घर में नहीं घुस सकती ...."[17] पिता सिलबिल पर झपट ही रहे । लेकिन वर्षा इस बात की परवाह किए बिना लखनऊ जाती है । वहाँ कई नाटक में भाग लेती है । वह अपने जीवन को एक सीमित दायरे में बाँधना नहीं चाहती । आधुनिक नारी में देखते महत्वाकांक्षा की छवि उसमें भरपूर मिलती है । उसे कई बार यह महसूस हो जाता है कि अगर उसे कुछ बनना है तो शाहजहाँपुर छोडना होगा ।

नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा में पढने की उत्सुक इच्छा उसमें थी । वहाँ जाते

समय महादेव भैया ने बाँह पकडकर उसे स्नानघर में बंद किया । वर्षा ने बहुत कष्ट सह लिया । डॉ. सिंहल और मिसेज़ सिंहल की सहायता से वह बाहर निकली । इस घटना से भाई-पिता के साथ संलग्न उसके मन का एक नाज़ुक तंतु टूटा कि फिर कभी जुड न सका । दिल्ली में पहुँचते वह टिपोर्टरी तक पहूँच जाती है । यहाँ साक्षात्कार के अवसर पर अपने छोटे शहर और अंग्रेज़ी के सीमित ज्ञान के कारण नर्वस होती है । फिर भी हिम्मत होकर अपना यथार्थ जीवन का रूपांतरण करने में सफल हो जाती है। रिपोर्टरी में वर्षा की मित्रता रीटा के साथ होता है । रीटा के साथ फिल्म देखना और दिल्ली का मुआयना भी करती है । घर की घुटन से उसे छुटकारा मिला । वह अपनी आज़ादी को अधिक महत्व देती है। उसे अपने लक्ष्य या चाँद तक पहूँचने का एहसास मिलता है । एन.एसडी में वर्षा चतुर्भुज, हर्षवर्धन आदि के साथ अभिनय करती है ।

एन.एस.डी में रहते समय भी वर्षा अपने परिवारवालों से संघर्ष करती है । घरवालों ने बार बार ब्याह करने और वहाँ से लौट आने को कहा । वह अपनी जीजाजी से कहती है कि – "जिस तरह आपका घर आपकी ज़िन्दगी को सार्थकता देता है, उसी तरह रंगमंच मेरी ज़िन्दगी में ऐसा अर्थ भरता है, जिससे मैं ज़िन्दा रह सकूँ ।"[18] वर्षा की यही मानना है कि उसकी अपनी लक्ष्य या चाँद यहाँ से मिल सकें । इससे वह अपनी निश्चय पर दृढ रही । उस मध्यवर्गीय परिवार के लिए वर्षा चरित्रहीन है । यहाँ से आगे का जीवन सफर में वह अकेला है । एक अवसर पर ब्याह का प्रस्ताव रखते भाई किशोर से वह कहती है कि – "मैं तो लंबी दौड का धावक हूँ । मेरे साथ बस, मेरा अकेलापन है ।"[19] ब्राह्मणत्व की रुढीवादिता को वर्षा ने कई बार तोडा । शाखाहारी से मांसाहारी बन जाता है । घर में मांस पकाता है । घरवालों के लिए वह दुःख और शर्मिंदगी का कारण होगी । दिव्य के साथ मदिरापन भी करती है ।

वर्षा को अपनी कलात्मक और वैयक्तिक जीवन में बहुत सफलता मिली । उसका नाटक सफल था और अभिनय भी । उसने अपने जीवन में नये रिश्ते बनाये । दिव्या उसकी ज़िन्दगी में रोशनी दिखलाती है । उपन्यास के प्रारंभ में यह घोषणा कर चुकी है कि – "अगर मिस दिव्या कत्याल उसके जीवन में न आती, तो वह या तो आत्महत्या कर चुकी होती या रुँ-रुँ करते चार-पाँच बच्चों को संभालती, किसी क्लर्क की कर्कश, बोसीदी जीवन-संगिनी होती ।"[20] वर्षा अपने कलात्मक जीवन को आगे ले जाती है इसके सहारे उसकी आर्थिक अभाव मिट जाते हैं । आधुनिक नारी में देखते काम भावना उसमें देखती है । वह अपनी लक्ष्य की ओर एक एक के बाद कदम बढ़ाती है । वर्षा जिस पात्र का अभिनय करती है उसे पूरी तरह जीवंत बना दती है । एन.एस.डी में पढते समय हर्ष से प्रेम संबंध जोडती है । इस प्रेम को उसके परिवारवाले विरोध करते हैं । 15 अगस्त के दिन वह हर्ष के आगे आत्मसमर्पण भी करता है । हर्ष उसके जीवन का चाँद बनता है ।

वर्षा अभिनय के क्षेत्र में प्रसिद्धि पाती है । फिल्म निर्देशक सिद्धार्थ वर्षा को 'जलती ज़मीन' फिल्म में दाखा के चरित्र के लिए चुनता है । यहीं से वर्षा का फिल्म सफर शुरु होता है । नाटक का अभिनय और फिल्म का अभिनय दोनों अलग है । फिर भी उसने कठिन प्रयत्न करके सफलता प्राप्त की । उसके बाद कई फिल्मों में अभिनय की । व्यावसायिक फिल्म की ओर पदार्पण करती है । वर्षा को सर्वश्रेष्ठ अभिनय का राष्ट्रीय पुरस्कार मिलता है । कई फिल्म में नायिका की भूमिका अदा की । सफलता के इस सफर में वर्षा अपने लिए फ्लैट भी खरीदती है । वह हर सुविधा को पाना चहती है जिसका उसके बचपन में अभाव था । हॉलिवुड फिल्म में अभिनय करती है । उसे सर्वश्रेष्ठ अभिनय का फिल्म फेयर पुरस्कार मिलता है । नाटकों से शुरु हुआ अभिनय सफर उसे बॉलिवुड तथा अंतर्राष्ट्रीय फिल्मों तक

ले जाती है । उसे पद्मश्री की उपाधि मिली ।

आलोचक पंकज बिष्ट स्पष्ट कहते हैं कि – "नायिका हर तरह के बन्धन तोडती हुई चलती है, वह मूल रूप से कितनी परंपरातगत है और पुरुष प्रधान समाज द्वारा औरत पर थोपी गई नैतिकता और मूल्यों को अन्ततः तोडती नहीं, बल्कि थोडा हेर-फेर से मज़बूत ही करती है ।"[21] फिल्मों में सफलता-असफलता का दौर चलता रहता है । एक ओर वर्षा ने फिल्म इंडस्ट्री में सफलता प्राप्त की वहाँ हर्ष असफल हुई । वह अधिक निराशा में पडी । ड्रेग्स का उपयोग करता है । बाद में हर्ष आत्महत्या कर लेता है । हर्ष की असामयिक मृत्यु के पश्चात वर्षा अपनी कोख में पल रहे हर्ष के बच्चे को जन्म देना चाहती है । वह समाज की मान्यताओं से दूर है । विशेषतः एक मध्यवर्गीय परिवार के लिए यह स्वीकार्य नहीं । इस सामाजिक विरोध के बावजूद भी वह बच्चे को जन्म देती है । हर्ष की मृत्यु पर वह टूट पडी लेकिन फिल्म नहीं छोडती । उसकी यही धारणा है कि कोई इच्छा अधूरी रह जाने से ज़िन्दगी में आस्था बनी रहती है । हर्ष की मृत्यु के बाद सिद्धार्थ ने वर्षा से शादी का और बच्चे को अपनाने का प्रस्ताव रखा । लेकिन वर्षा यह अनुचित नहीं मानती । इन लम्बे संघर्ष के बाद भी वर्षा उन्हीं पारंपरिक व्यवस्थाओं और सामाजिक व्यवस्था में आस्था प्रकट करती है। उसे ज्ञात है कि प्रकृति में स्त्री विशिष्ट है क्योंकि वह जननी है । यह ज़रूर स्वीकारना है कि वर्षा का संघर्ष केवल उसके विकास में बाधक रूढी परंपराओं के प्रति है। वह मातृसत्तात्मक परिवार की कल्पना को साकार करती है । साथ ही हर्ष की अभिजात कुल परंपरा का ही संरक्षण करती है। परिवारवालों के साथ संघर्ष करते समय भी परिवार के प्रति सारे जिम्मेदारियाँ निभायी । उसे अपने ज़िन्दगी संवारने का मौका नहीं मिला । फिर भी एक आदर्श आधुनिक नारी की तरह हर्ष के बच्चे को पाला। इससे समाज के सामने परंपरागत मूल्यों का नया रूप उपस्थित करती है ।

आलोचक रामदरश मिश्र इस उपन्यास के बारे में स्पष्ट बताते हैं – "महत्वाकांक्षाओं के चाँद को चाहनेवाली, वर्षा वशिष्ट की संघर्ष कथा है ।"[22] उसका यह संघर्ष पुरुष प्रधान समाज में नारी के संघर्ष और अपनी अस्मिता की पहचान के लिए संघर्षरत नारी को रेखांकित करती है ।

4.2.4 मूल्यांकन

साठोत्तर कथा साहित्य में नारी मूल्य बोध का चित्रण मिलता है । 'मुझे चाँद चाहिए' में हम नारी संघर्ष का वह स्वरूप देखते हैं । रुढियों, अंधविश्वासों तथा अन्य परंपराओं में आज भी नारी जकडी हुई है । आज़ादी के बाद बदली हुई परिस्थितियों में समाज का ढाँचा बदला । स्वतंत्रता ने व्यक्तिवाद को जन्म दिया, नारी अस्तित्व के नये रूपों की खोज हुई । नारी ने भी अपने अस्तित्व की पहचान शुरु की । उपन्यास की वर्षा ऐसा नारी का स्वरूप है । वर्षा एक नई नारी अस्मिता की चेतना लिये हुए अपने परिवार के पारंपरिक नियमों और व्यवहारों से संघर्ष करती दिखाई पडती है ।

वर्षा के संघर्ष का पहला कदम अपना नाम बदलकर शुरु होता है । उसमें वह साहस है जो रूढी परंपराओं को तोडने का । आज यह साहस बहुत कम महिलाओं में देखते है । आर्थिक अभाव से ग्रस्त उसके परिवार को सहायता करना और अपनी महत्वाकांक्षा की ऊँचाई पर पहूँचने के लिए वह नौकरी करना स्वीकारती है । मध्यवर्गीय परिवारवालें नारी को चार दीवारों में बंध करना अधिक उचित मानते हैं । जल्दी विवाह कराके अपने ज़िम्मेदारियों से मुक्ति लाना भी चाहता है । शर्मा जी ऐसे परिवार में हैं । उसके परिवार के सारे के सारे लोग भी इसी सोच की है । स्वतंत्रता की इच्छा से अपने लक्ष्य या चाँद तक पहूँचने के लिए वर्षा निरंतर संघर्ष करती है । अपने परिवार के सारे अवरोध के बाद भी वह कॉलेज के नाटक में

भाग लेता है, एन.एस.डी तक पहूँचती है, रंगमंच पर ख्याति प्राप्त करती है, कला फिल्म के प्रस्ताव को स्वीकार करती है, अनेक फिल्मों में काम करती है, सर्वोत्कृष्ट अभिनेत्री का पुरस्कार पाती है, प्रसिध्दि की बुलन्दियों पर पहूँचती है। अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए वह किसी भी कठिन परिस्थिति का मुकाबला करने को तत्पर है । ऐसी नारी भारतीय स्त्रीत्व का प्रौढ़ की बात है । उसके साथ परिवारवाले चाहे मारें, पीटें, बंद करें फिर भी वह अपने निर्णय पर पहूँचने के लिए दृढता से काम करती है । और अपना लक्ष्य तक पहूँचता है । सदियों से दबी हुई नारी की यह सोच उसके विकास के लिए आवश्यक है । वर्षा के व्यक्तित्व में हम यह देख पाते हैं ।

समाज में कला आवश्यक है । लेकिन समाज के कुछ अंग इसे हीनता की दृष्टि से स्वीकारते हैं । वर्षा के भैया उससे कहती है कि यशोदा तू कुए में कूद जा नहीं, तो हम सब को ज़हर दे । यहाँ स्पष्ट है कि उस रुढी परंपरा के लोग उसे स्वीकारता नहीं । पारिवारिक दायित्व और कलात्मक जीवन एक साथ लाना मुश्किल है । यहाँ उपन्यासकार ने यह स्पष्ट दिखाया कि परिवार और समाज के परवाह के बिना वर्षा ने कला को स्वीकार किया । वह अपनी पारिवारिक आर्थिक दबावों को अपनी नियति मानता है। इससे बचने के लिए वह स्वतंत्र अस्तित्व रखना चाहती है ।

उपन्यास में कई स्त्री पात्र है, वर्षा की माँ, जिज्जी गायत्री, दिव्या कात्याल, रीटा आदि । यहाँ वर्षा की माँ और गायत्री परंपरागत मूल्यों को तोडना नहीं चाहती । वर्षा को डाँटती दिखाई पडती है । गायत्री का विवाह तो एक अधेड आदमी से होता है फिर भी वह उसमें खुश है और वर्षा से विवाह करने को कहती है । परंपरागत सनातन मूल्यों से विद्रोह करनेवाली वर्षा वह करती है कि उसके परिवार के सात पुश्तों में किसी ने नहीं किया । उसकी सोच और

विचारधारा आधुनिकता का समर्थन करती है । वर्षा अपने फिल्म इंडस्ट्री में प्यारे दिव्या के साथ मदिरापन और मांसाहार स्वीकारती है । इससे यह स्पष्ट है कि आधुनिक स्त्री में पश्चिमी सभ्यता का स्वीकारना । फिर भी भारतीय नारी का गुण उसमें देख पाती है । बिना ब्याहे अपनी कोख में पले बच्चे को जन्म देने का निर्णय मातृत्व की महत्व है । यहाँ वह अपनी स्त्री धर्म को भी स्वीकारती है ।

स्वतंत्रता संग्राम की लंबी अवधि में समान भागीदारी, समान भूमिका, समान लक्ष्य के लिए लंबा संघर्ष चला । लकिन अब हमारे राष्ट्र में अपने अधिकारों के लिए नारी संघर्ष करती दिखाई पडती है । हमारे राष्ट्र की यही नियति है कि लंबे संघर्ष से प्राप्त स्वतंत्रता का लाभ हमने नहीं लिया । आज स्त्री स्वतंत्र है, पर बराबर की आज़ादी को न परिवार और न समाज स्वीकारता है । अपने अस्तित्व के लिए स्त्री अब भी संघर्ष कर रही है ।

अपना घर संभालिए, जल्दी विवाह करो, नौकरी मत करना आदि मध्यवर्गीय भारतीय स्त्री की नियति थी । ऐसी नियति को यहाँ उपन्यासकार वर्षा द्वारा ठोंग दिखाती है । वर्षा की आकांक्षाएँ ही उसका अपना चाँद है । उपन्यास के प्रारंभ में दिये गये कलिगुला की कथन – "अचानक मुझमें असंभव के लिए आकांक्षा जागी । अपना यह संसार काफी असहनीय है, इसलिए मुझे चन्द्रमा, या खुशी चाहिए - कुछ ऐसा, जो वस्तुतः पागलपन सा जान पडे । मैं असंभव का संधान कर रहा हूँ ..... देखो, तर्क कहाँ ले जाता है ..... शक्ति अपनी सर्वोच्च सीमा तक, इच्छाशक्ति अपने अनंत छोर तक ! शक्ति तब तक संपूर्ण नहीं होती, जब तक अपनी काली नियति के सामने आत्मसमर्पण न कर दिया जाये । नहीं, अब आपसी नहीं हो सकती। मुझे आगे बढते ही जाना है ....."[23] इसकी अर्थवत्ता को सार्थक बनाता है । आज़ादी ने नारी के व्यक्तित्व विकास को एक नया मोड अवश्य दिया । अपने हृदय में उठनेवाली अभिलाषाओं

को सच्चे रूप में प्रस्तुत करना चाहती है । वर्षा की आकांक्षाएँ ऐसी नारी की है जो वह प्राप्त कर चुकी है ।

स्वतंत्रता के इतने साल बाद भी अपनी इच्छाओं और आशाओं को गला घोंटता स्त्री समाज में मौजूद है। इस उत्तराधुनिक युग में ऐसी स्त्री राष्ट्र की नियति का भाग है । उसे समझाकर बाहर लाना आवश्यक है । वर्षा के माध्यम से उपन्यासकार ने यही कार्य किया है । आज स्त्री लेखन ज़्यादा है । ऐसा मानता है कि लेखिकाएँ ही स्त्री का संघर्ष का खूब चित्रण करती है । लेकिन यहाँ सुरेन्द्र वर्मा ऐसी धारणा को तोड़ते हैं । वर्मा जी उपन्यास में नारी का मार्मिक चित्रण करते हैं । इसमें उन्होंने सफल किया । स्त्री समाज का अंग है । उसके बिना राष्ट्र का विकास असंभव है । वर्षा उस नियति को तोडकर अपना चाँद य महत्वाकाँक्षा के ऊँचे शिखर प्राप्त कर सकती है । फिर भी उसे कुछ खोना भी पडती है । प्रेमी हर्ष की मृत्यु के अवसर पर वर्षा का यह कथन – “मेरे वास्ते चन्द्रमा हमेशा के लिए बुझ गया है ।”[24] वह अपनी असली चाँद या हर्ष को पा नहीं सकती । वर्षा कला का वह चाँद प्राप्त चुकी है जो उसका उपलब्ध चाँद है । लेकिन प्रेम की वह उपलब्धी उसे नहीं मिली, जो उसका असंभव चाँद है । यही उसकी नियति है । समसामयिक युग में ऐसे अनेक नारियों को हम देखते हैं । यह उपन्यास समसामयिक विचारों की सोच है ।

4.3 कोहरे में कैद रंग

4.3.1 भूमिका

सन् 1960 के बाद के अधिकांश उपन्यास समयानुकूल विषयों को समेट लेते हैं । सेक्स, हिंसा, विद्रोह, आत्महत्य और संत्रास जैसे कई समस्याओं को आज के साहित्यकार

अपने कृतियों में देखते परखते हैं । इस संकट को समकालीन रचनाकार गोविन्द मिश्र जी अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करते हैं । उनके उपन्यासों में मूल्य की खोज, व्यक्ति परिवेश, आस्था-अनास्था सभी देख सकते हैं । सन् 1969 में उनका पहला उपन्यास 'वह अपना चेहरा' प्रकाशित हुआ था । तब से लेकर आज तक मिश्र जी निरंतर नये अनुभव संसार की ओर उन्मुख होते हैं । 'उतरती हुई धूप', 'लाल पीली ज़मीन', 'हुज़ूर-दरबार', 'तुम्हारी रोशनी में', 'धीरे समीरे', 'पाँच आँगनोंवाला घर', 'फूल इमारतें और बन्दर', 'कोहरे में कैद रंग', 'धूल पौधों पर' और 'आरण्य तंत्र' उनके उपन्यास हैं । उन्होंने अपनी हर उपन्यास के लिए नए परिवेश चुना है । उनके उपन्यासों में अनुभवों का वैविध्य और यथार्थ की चीख हैं ।

गोविन्द मिश्र जी के परवर्ती उपन्यास है 'कोहरे में कैद रंग' । निजी स्मृतियों में व्यक्ति सर्वाधिक मौलिक होता है और रोचक भी । ऐसी रचनाओं में पाठक आकर्षण महसूस करता है । 'कोहरे में कैद रंग' ऐसी एक कलाकृति है । उपन्यास की यही विशेषता है कि नारी मुक्ति का सवाल उठाते हैं ।

4.3.2 भावभूमि

'कोहरे में कैद रंग' की पृष्ठभूमि में बुन्देलखण्डी जन मानस है । उपन्यास में लेखक ने अपनी स्मृतियों से कुछ चरित्रों को लेकर कथानक का घटन किया है । उपन्यास की समस्या अनेकमुखी है । कुल मिलाकर देखे तो उपन्यासकार ने रचना की केन्द्रीय समस्या के रूप में स्त्री विमर्श को उठाया है । नानी, सविता, सावित्री, सरस्वती, माँ, टूटू मौसी, रेवा आदि स्त्री पात्रों के माध्यम से भारतीय समाज में स्त्री की दयनीय दशा और आधुनिक नारी की पहचान भी कर रही है । इन अधूरे अधबने चरित्र ही केन्द्रीय समस्या के गिर्द जुटा लिए गये हैं ।

औपन्यासिक वर्णनों के क्रम में तरह तरह पुरुष पात्र भी आते हैं । जैसे पिता, रामेश्वर भाई, नाना, मुल्लू मामा, चट्टो बाबू, रघुवर । उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में है ।

4.3.3 नारी के मुक्ति चेतना

'कोहरे में कैद रंग' में उपन्यासकार ने निम्न-मध्य और उच्चवर्गीय समाज में भारतीय नारी की विविध समस्याओं को संकलित किया है । जो हर परिस्थिति को अपनी नियति मानकर जीते हैं और बेआवाज़ चले जाते हैं । इसके लिए लेखक अपनी स्मृतियों से कुछ चेहरे को लेते हैं । स्त्री नियति को उजागर करने के लिए दहेज समस्या, सांस-बहु रिश्ता, अनमेल विवाह, पति द्वारा पत्नी का घरेलू उत्पीडन, अनमेल प्रेमसंबंध, स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व की मांग आदि समस्याओं का बखूबी चित्रण करते हैं ।

मध्यवर्गीय समाज में विवाहितों के लिए प्रचलित एक क्रूर अनुशासन है दहेज । राजकुंवर एक ऐसी लडकी है जो दहेज की समस्या से पीडित है । वह जितनी सुकुमार परी है उतनी उसकी सांस राक्षसिनी थी । दहेज के मामले में घर में बहस उठी । सांस और पति उसे डाँटते थे । पति का प्रताडन उसे सहनी पडी । तेरह साल की बहू पर काम पर काम लादती चली जाती । वह खाने को कुछ मांगती तो एक ही जवाब – "खा ले अंगारा, बहुत मलाई बाप ने बाँध दई है न ।"[25] भाभी की यही हालत देखकर राजाबेटी ने उस कच्ची उम्र में महसूस किया कि औरत का प्रताडन पुरुषों से नहीं औरतों को ही मिलती है । राजाबेटी को घर की याद आती है तो क्या फायदा ? ब्याह उसके लिए एक कैद मिली थी । घर में मात्र राजाबेटी से ही उसे सहारा मिला था । राजाबेटी का करूण उद्गार में नारी मात्र की व्यथा का चित्रण मिलते हैं – "क्या करें, हे भगवान, बता दे कोई कौन से कर्म करने से औरत का जनम न मिले ।"[26] निराश होकर राजकुंवर ने कुएं में कूद कर आत्महत्या कर ली ।

राजाबेटी का भी ब्याह हो गयी । लेकिन हालत राजकुंवर जैसी थी । उसका बचपन फूलों से भरी थी । लेकिन विवाह के बाद विधि ने जीवन के उतार पर नंगी ज़मीन पर फेंक दिया । ज़िन्दगी बिताने के लिए दूसरों के घर में काम भी करनी पडी । वह अपनी गरीबी को स्वीकार कर चुकी है । अनपढ़ स्त्रीयों के लिए रसोई बनाने से ज़्यादा और कोई काम नहीं मिला । घर में राजाबेटी की माँ का दबदबा थी । वह सबको अपने अधिकार में समेटते हैं । लेकिन पति के चले जाने के बाद गरीबी को दूर करने के लिए दो-तीन घर में रसोई बनाने का काम मिला ।

पारंपरिक विवाह प्रथा की क्रूरता का शिकार और पति द्धारा प्रताडित नारियों का अनेक रूप उपन्यास में है । विवाह एक ऐसी प्रथा है जिसमें पलटकर अधिकतर लडकियों का ज़िन्दगी बरबाद हो जाती है । सुशिक्षित रेवा बहुत दिनों तक अपने पहले पति का पाराविक अत्याचार सहती है । उसका पति एकदम सामान्य रखता था पर उसे अकेले देखते ही हंस पशु में बदल जाता, जैसे पूर्वजन्म की कोई दुश्मन थी । पति का पाशविक अत्याचार का चित्रण इस प्रकार मिलता है कि – "मुझे इतना ज़ोर से जकडता कि मेरी हड्डियाँ टूटने लगीं, रौंदता, साथ साथ जहाँ कहीं भी काटता चला जाता, इधर उधर कहीं नाखून, दाँत गँपा देना, मुझे चींथता, चींथता चला जाता ।"[27] एक बार रेवा ने उससे बताया कि यह व्यवहार उसे अच्छा नहीं लगाता। तब पति उसे घसीटता हुआ कमरे में ले गया और भी ज़ोर से पीटता, मारता है । वह पति से तलाक मांगी । तलाक के बाद पढ़ाई पूरा हो गई । अच्छी नौकरी भी प्राप्त की । कुचली गयी वह लडकी अपने पैरों पर खड़ी है । पड़ोसी राकेश से दूसरी शादी भी की । कथानायक रेवा को अपने आधा लिखा उपन्यास दिखाता है, और रेवा स्वतंत्र राय रखती है।

सावित्रि पति की प्रताड़न मूक से सहती थी । पति पुलीस है । खूब पीता है

और पीकर मारता पीटता है । एक रईस घर की लडकी है सावित्री । विवाह के पहले उसके दुःख्र का मूल कारण विमाता है । लडकियाँ कितने बडे घर की हो, उनका जीवन, भविष्य एक बारीक तंतु पर लटका है । वह कोई स्कूल नहीं जाती । क्योंकि विमाता की यही राय कि स्कूल जाने में थोड़ा ख्रर्च हो जाय । छोटी उम्र में ही उसका विवाह तय करता है । घरवाले विवाह को अधिक महत्व देते हैं । विवाह भी एक विधुर के साथ हुआ, इनका पहले दो बच्चे भी थे । विवाह के बाद घर से सावित्री का संबब्ध विच्छेद हुआ । वह पहले से ही जानती थी कि अगर विवाहित होगी तो कोई बदलाव नहीं आता । सावित्री का यह कथन – "तो क्या हुआ । वैसे में अपने मन की एक चीज़ कर रही हूँ – चुपचाप - चुपचाप । कोशिश करती हूँ कि अपने इन बच्चों का पालन-पोषण अच्छा करूँ जितना उनकी सगी माँ भी नहीं कर सकती थी । उन्हें अपनी माँ की कमी न ख्रटकी ।"[28] उसकी स्थिति बदत्तर हो गयी ।

निम्नवर्ग के औरतों पर हुए अत्याचारों का जिक्र उपन्यास में है । पार्वती निम्नवर्ग की औरत है । पति दारु पी-पीकर मर गया । उसके मृत्यु के बाद चट्टो बाबु ने पूरा मकान का अधिकार ज़मा लिया । घर का सामान बाहर फेंका । उनकी यही राय कि पूरा मकान उन्होंने ही खरीदा और पार्वती से अपने घर की काम करके किसी कोने में रहने को कहा । लेकिन अनाथ की तरह वह चट्टो बाबु की कोठी में रहने को तैयार न थी । उनके परिवार को वह गालियाँ भी देती । नारी मन के एक छोटा प्रतिशोध यहाँ देख्रते हैं ।

अनमेल प्रेमसंबंध व्यक्तियों के ज़िन्दगी बरबाद करते हैं । कथानायक 'मैं' और सरस्वती के प्रगाढ प्रेम को जानकर भी न तो परिवारवाले समर्थन करते हैं । वह विश्वविद्यालय की छात्रा होकर भी अपने संबंध में निर्णय नहीं ले सकती । सरस्वती को अपनी इच्छा के विपरीत, परिवार का आदेश मानकर अमन के साथ विवाह करना पड़ता है । दूसरों की इच्छा

के आगे वह तत्काल होम करने को प्रस्तुत हो जाती । लडकियों के लिए अपनी राय बनाने का भी हिम्मत न कर सके, बताने की बात तो दूर । विवाह तय करते समय अमन का आना-जाना उसके पढ़ाई में बाधा बनी । इसके बारे में परिवारवाले की यही राय – "लडकियों की पढ़ाई क्या .... शादी तक का समय काटना है । तेरी उससे शादी होगी, उसके साथ तो तुझे पूरी ज़िन्दगी काटनी है । यूनिवर्सिटी में एक साल ...... और क्या ।"[29] 'मैं' सुशिक्षित और व्यक्तित्व संपन्न होने पर भी माँ के आदेश मानने के लिए विवश होता है । और दूसरी शादी करता है । दोनों मन ही मन टूटते दिखाई पड़ते हैं ।

अजब एक अपवाद चरित्र के रूप में चित्रित करता है । मुल्लू मामा की पत्नी है अजब । विवाह के बाद एक अच्छी खासी औरत गुण्ड़ा निकल गयी । मुल्लू मामा को उसने लगातार डाँटते-धमकाते, शायद हाथ भी चलाती है । वह अपने गाँव से एक अधेड़ आदमी को साथ बुलाकर आयी थी । और घर में दोनों पति-पत्नी की तरह रहते । मुल्लू मामा उसके नौकर की तरह वही घर में रहते हैं । अजब की एक लड़की है । लेकिन वह उसे देखती भी नहीं । मुल्लू मामा को जब तनख्वाह मिलती तब अजब झपट लेती । असह्य होकर मुल्लू मामा कुंए में कूद गये ।

स्वतंत्रता का बोध अधिकतर नारी में कम है । स्वाधीनता के पहले ही स्वतंत्र अस्तित्व चाहता स्त्री का जिक्र उपन्यास में है । कथानायक की माँ ऐसा एक नारी है । विवाह के बाद काम करने में बाहर जाती है । माँ अधिक व्यावहारिक और दुनियादार महिला है । अपने पति की कमियाँ पूरी करने के लिए और बच्चों को पढ़ाने के लिए पहले खुद आगे आना था । रईस घर में जाकर ट्यूशन करते थे । उस ज़माने में काम के लिए बाहर जाते स्त्रीयों को अपराध की दृष्टि से लोग देखते थे – "उन्हें पग-पग पर लालची नज़रों से स्वयं को बचाना

होता । घर बनाना, संभालना था । बाहर इज्जत और नौकरी दोनों बचाने थे – अक्सर एक साथ ।"[30] यह समय स्वतंत्रता प्राप्ती का ठीक पहले समय था । 'मैं' के पिता गाँव से दूर काम करते थे । बच्चों के भविष्य क्या होगा इसका जिक्र उनमें नहीं । वे सारा भार पत्नी पर छोडकर इधर उधर चले जाते हैं ।

सविता एक ऐसी लडकी थी विवाह के बाद पुरुष के बराबरी काम करना चाहती है । वह बचपन में खुद को बाँध रखा था । रईस घर की लडकी है सविता । पर विवाह के बाद ससुराल ढेलकर पल्ला झाड लेता है । पैतृक संपत्ती का एक पाई भी उसे नहीं मिला । पिता चट्टो बाबु सारा संपत्ती अपने बेटे के नाम से देते हैं, उपन्यासकार इसपर अपना मत प्रकट की – "कानून की किताब में लिख भी जाय पर समाज लडकी को वंचित ही किये रहे । पैदा दोनों एक ही माँ-बाप से हुए । विवाह होते ही असली घर से नाम काट दिया, नये घर में लिख नहीं पाया। बीच में पडी असुरक्षा की रस्सी । हर लडकी उस पर चलती है, जीवन-मरण का प्रश्न । वे उकसा रहे थे – कब्जा, अपनी मिलिकयत पहचान और पति पर कब्जा ताकि फिर इस परिवार का सब कुछ तेरा हो गया ।"[31] माँ-बाप द्वारा तय किये गये इस तरह के विवाह सही मायने में लडके-लडकियों को बेचना ही है । लेकिन विवाह के बाद सविता के मन में थोडा प्रतिशोध आ गयी । माँ-बाप से समाज से हल्का प्रतिशोध उसमें देखती है । ज़्यादा स्वतंत्रता की ललक उसमें आ गयी । माँ-बाप जिस पति को लाकर रख दें उसमें लडकियों की इच्छा-अनिच्छा की भी कोई कीमत नहीं । आज उसके मन में इस पर घृणा भी पैदा हो गयी ।

उपन्यास में ऐसा एक सशक्त नारी पात्र है जो पूर्ण रूप से स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं । वे एक तेजस्वी, ठोस स्त्री के रूप में सामने थी । सोच की गहराई उनमें थी । विवाहित होकर भी अपनी इच्छा से जीवित है । टूटू मौसी को विवाह के पहले एक प्रेम था । लेकिन

शादी दूसरे के साथ हो गयी । इसके संबंध में उनकी यही राय कि – "मैंने देखा जो हम ज़िन्दगी से चाहते हैं उसमें फर्क था, मैंने मना कर दिया ।..."[32] टूटू मौसी की खुलापन, स्वतंत्र व्यक्तित्व और मानसिक विकास यह सब देखकर 'मैं' को लगता है कि भारतीय नारी यह भी हो सकती है । टूटू मौसी की यही धारणा है कि लडकियाँ की शिक्षा उनमें बदलाव तो ला रही है । दिक्कत यह है कि उन्हें भारतीय पुरुष से सहयोग नहीं मिलता । हमारा देश सदियों से पुरुषप्रधान समाज रहा है । औरत को दबाना भारतीय पुरुष के खून में है । 'मैं' की यही राय यहाँ प्रकट करते हैं कि टूटू मौसी ने अपने व्यक्तित्व को पहचाना और उसे ही लिए उस तरफ चल रही थी, जो वे बनना चाहती हैं । लोग क्या कहेंगे ? इसका जिक्र उनमें नहीं । इस उपन्यास में स्त्री नियति का विभिन्न रुप उजागर हुई है । उपन्यास में नारी मुक्ति के सवाल पर्याप्त गंभीरता और विश्वसनीयता से गोविन्द मिश्र जी उठाते हैं ।

गोविन्द मिश्र जी के उपन्यासों के विभिन्न पहलुओं पर डॉ. रामजी तिवारी के संपादकत्व में एक आलोचनात्मक ग्रंथ प्रकाशित हुआ है । डॉ. रामजी तिवारी इसमें स्पष्ट बताते हैं कि – "इस उपन्यास में जीवन के उन निगूढ रंगों को उद्घाटित किया गया है कि जो सामाजिक कुहेलिका में छिपे रहते हैं । पराजित होते हुए भी सहज रुप से पहचान में नहीं आते, क्योंकि उनमें स्वयं प्रत्यक्ष होने की शक्ति और गति नहीं होती । इसलिए यह रंग प्रायः अदृश्य ही रह जाते हैं ।"[33] गोविन्द मिश्र जी उपन्यास में नारी के आत्मसम्मान, उसकी स्वतंत्रता, उसकी महत्वाकांक्षा और उसकी सुरक्षा का सवाल उठाते हैं ।

4.3.4 मूल्यांकन

'कोहरे में कैद रंग' नारी की मुक्ति चेतना पर केन्द्रित उपन्यासों में विशेष स्थान रखता है । संस्मरणात्मक और आत्मकथात्मक लेखन का पैदा करनेवाला उपन्यास है । इसमें

जीवन के ऐसे रंगों का सफल खोज किया है जो विषमताओं के घने कोहरे में कैद होकर प्राय: अदृश्य रह जाते हैं । समाज एक प्रकार का कोहरा है । इस कोहरे में कई जीवन रहते हैं, यानी कई रंग है । उपन्यास में ऐसे कई रंग के चेहरा आते हैं । माँ, नानी, अजब, सविता, सावित्री, सरस्वती, रेवा, पार्वती, टूटू मौसी आदि । इन चरित्रों में टूटू मौसी के अलावा बाकी सब समाज में दबे रहते हैं । समाज में अच्छे अच्छे लोग है । वे फूल जैसा खिलना चाहिए लेकिन खिल नहीं पाता । इन स्त्री पात्रों के ज़रिए उपन्यासकार इसका सबूत रखता है ।

उपन्यास समस्याप्रधान है । पात्रों की सृष्टि के ज़रिए समस्याओं का चित्रण करते हैं । स्वतंत्रता पूर्व के दिनों में 'मैं' की माँ बाहर काम करने के लिए जाती है । नानी का चरित्र तो कितना बडा है । बहु को मारती है । सबको अपने में समेट लेते हैं । लेकिन ज़िन्दगी के अंतिम समय में वे दूसरों के रसोई में महाराजिन बनी । कैसी नियति है उनकी ? स्वतंत्रता के बाद के दिनों में सरस्वती, सविता आदि आती है । वे रईस घर की इकलौती लाडली लडकियाँ हैं । उनके लिए भी घर कैद जैसा महसूस होता ।

सरस्वती के विवाह की बात आते समय उस समाज व्यवस्था की ओर भी संकेत कर रहा है, जहाँ खास तौर से स्त्रियों को व्यक्ति बनने ही नहीं दिया जाता । कहीं वे अपने जीवन के बारे में सोचने न लग जाएँ, स्त्रियों को गुलाम बनकर रखना था, यह वह समय था पचास के आसपास । लेकिन स्वतंत्र होकर इतने सालों बाद भी स्त्रीयों को स्वतंत्र विचार प्रकट करने में बाध्य बन जाता है । अगर वह कुछ बना तो उसे लेकर अपराध भावना भी पैदा हो जाती थी।

रेवा, सावित्री, राजकुंवर जैसे पात्रों के माध्यम से पति के निष्ठुर क्रूर का कथन मिलता है । दुहाजू पुरुष से ब्याही गयी सावित्री जो अपना गर्भपात कराकर पूर्व पत्नी से उत्पन्न पति के बच्चों की देखरेख पूरी ईमानदारी से करती है । रेवा ने अपनी प्रताडित मनोदशा के

बावजूद दूसरी शादी भी की । इसके बाद 'मैं' के प्रति आकृष्ट होती है । उसके लेखन कार्य में सहयोग देती है । सरस्वती जो बचपन में यौवन तक खिलती जाती है विवाह के बाद पूरी तरह विवाह को ही समर्पित हो जाने की साधना में जीवन होम कर देती है । शिक्षित होकर भी बेआवाज़ रहती है । राजकुंवर विवाह के बाद दहेज समस्या से प्रताडित होकर आत्महत्य करती है । यहाँ सविता और रेवा के भीतर कल आनेवाली भारतीय नारी की छवि झांकती देखती हैं। सविता विवाह के बाद एक हद तक माँ-बाप और समाज से प्रतिशोध करती है। बराबरी पर सोचती है । रेवा भारतीय नारी के अतीत और वर्तमान के बीच सेतु का करती है । आज तक नारी जीवन में जो बदलाव आया उसे रेवा के माध्यम से दिखाया गया है ।

अजब एक अपवाद चरित्र के रूप में उपन्यास में चित्रित करता है । पति के होते हुए एक पहलवान पुरुष रखनेवाली गुंडा चरित्र के रूप में उपन्यास में आता है । पुरुष पात्रों में प्रताडित चरित्र है । मुल्लूमामा इसका उत्तम उदाहरण है । अपनी असफलताओं, विफल प्रेम प्रसंगों की ज़िम्मेदारी किसी पर न डालते हुए अपने लिए 'मैं' भी एक शब्द चुना है 'डरपुक्का' । उपन्यास के अंत में वे स्पष्ट बताते हैं कि स्त्री होकर टूटू मौसी वह कर सकी जो वह पुरुष होकर नहीं कर सका । वे खुद अपने को 'डरपुक्का' स्वीकारते हैं । लेखक की ईमानदारी यहाँ व्यक्त है । निश्चय ही यह एक प्रौढ़ कृति है ।

उपन्यासकार यह साबित करते हैं कि स्त्री की यही नियति है कि उसे जंगल में अपना रास्ता बनना है, यातना को रो-रोकर बहा देना है । स्वतंत्र भारत की महिला है सावित्री, राजकुंवर, राजाबेटी, सरस्वती आदि । वे अपनी नियति स्वीकार कर बेआवाज़ हैं । लेकिन रेवा और सविता में प्रतिशोध का हल्का स्वर मिलते हैं । उपन्यास में इन सारे पात्रों में विवाह नियति बनकर आता है । उपन्यासकार ने समाज में प्रचलित विवाह प्रथा को क्रूर, शोषण और जीवन

की सबसे बड़ी त्रासदी मानने दिखते हैं । पाठकों की दृष्टि से इसपर मतभेद हो सकता है । क्योंकि विवाह के बाद समाज में नारियों की ज़िन्दगी में सफलता भी देख सकते हैं । इसका भी जिक्र उपन्यास में टूटू मौसी के ज़रिए स्पष्ट रुप से बताते हैं । उपन्यासकार स्त्री स्वतंत्रता का सवाल उठाते हैं – "भारतीय नारी यह भी हो सकती है । अपने विचारों अपने मानसिक विकास के लिए इतनी सजग ।"[34] टूटू मौसी इस विकास यात्रा की चरम आदर्श है । लेखक ने यहाँ टूटू मौसी के द्वारा शिक्षित, स्वावलंबी, अनाश्रित और व्यक्तित्व संपन्न स्त्री का आदर्श रुप दिखाया हैं । लेखक की यही सवाल है कि औरतें टूटू मौसी की तरह स्वतंत्र, शिक्षित अपना जीवन खुद संवारनेवाली क्यों नहीं बनी ? एक पुरुष होने के बावजूद भी गोविन्द मिश्र जी ने स्त्री मुक्ति का सहज विश्लेषण किया है ।

दुनिया में कितने अच्छे अच्छे लोग होते है । वे फूल की तरह एकदम खिल सकते हैं । लेकिन अधिकतर कोहरे में दबे रहते हैं । पूरी तरह उभर नहीं पाती । भारतीय समाज में स्त्री आज भी दबे रहते हैं । उनका व्यक्तित्व खिलना चाहिए । लेकिन कोहरे में दबे रहते हैं । और चुपचाप मर जाते हैं । स्वातंत्र्योत्तर भारत की इस नियति की ओर उपन्यासकार अग्रसर होते हैं । उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता यहाँ स्पष्ट है । नारी मुक्ति और नारी के प्रति सम्मान का भाव एक सामाजिक आवश्यकता है । नहीं तो समाज का भी विकास संभव न हो सकेगा ।

संदर्भ ग्रंथ

1. विष्णु प्रभाकर – मेरे साक्षात्कार – पृ. 327

2. विष्णु प्रभाकर – अर्द्धनारीश्वर – पृ. 39

3. वही – पृ. 55

4. वही – पृ. 58

5. वही – पृ. 297

6. वही – पृ. 269

7. वही – पृ. 355

8. वही – पृ. 216

9. वही – पृ. 200

10. वही – पृ. 321

11. मधुरेश – हिन्दी उपन्यास का विकास – पृ. 105

12. गोपालराय – हिन्दी उपन्यास का इतिहास – पृ. 235

13. विष्णु प्रभाकर – अर्द्धनारीश्वर – पृ. 35

14. सुरेन्द्र वर्मा – मुझे चाँद चाहिए – पृ. 16

15. वही – पृ. 20

16. वही – पृ. 21

17. वही – पृ. 66

18. वही – पृ. 119

19. वही – पृ. 286

20. सुरेन्द्र वर्मा – मुझे चाँद चाहिए – पृ. 13

21. डॉ. नामवर विंह – आधुनिक हिन्दी उपन्यास – पृ. 59

22. रामदरश मिश्र – हिन्दी उपन्यास एक अंतर्यात्रा – पृ. 177

23. सुरेन्द्र वर्मा – मुझे चाँद चाहिए

24. वही – पृ. 547

25. गोविन्द मिश्र – कोहरे में कैद रंग – पृ. 39

26. वही – पृ. 40

27. वही – पृ. 143

28. वही – पृ. 113

29. वही – पृ. 139

30. वही – पृ. 24

31. वही – पृ. 182

32. वही – पृ. 189

33. डॉ. रामजी तिवारी – आकलन गोविन्द मिश्र – पृ. 213

34.गोविन्द मिश्र – कोहरे में कैद रंग – पृ. 189

अध्याय – ५
व्यक्ति मन का विश्लेषण

आज के युग में एक ओर व्यक्ति की महत्ता और स्वतंत्रता का क्षेत्र, स्तर और अर्थ निरंतर अधिकाधिक व्यापक होता है । दूसरी ओर व्यक्ति के जीवन में देश और सत्ता का अधिकार और नियंत्रण भी निरंतर बढ़ रहा है । वैयक्तिक स्वाधीनता के व्यापक और सीमित होने की यह दुहरी प्रक्रिया कहीं न कहीं एक है । यह स्थिति गहरे कलात्मक-सर्जनात्मक खोज की संभावना उत्पन्न करती है । ये खोज किसी भी रचनाकार के लिए भारी चुनौती हो सकती है । इस मानव स्थिति पर हिन्दी कथाकार का बहुत ही कम ध्यान गया है । हिन्दी के मशहूर रचनाकार जैनेन्द्र कुमार इस क्षेत्र की ओर उन्मुख हुए थे । उनके औपन्यासिक साधना की अंतिम कडी मुक्तिबोध को सन् 1966 का साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला था । इस उपन्यास में व्यक्ति मानस की नियति का अंकन हुआ है ।

5.1 मुक्तिबोध

5.1.1 भूमिका

हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास के पुरोधा के रूप में जैनेन्द्र कुमार प्रसिद्ध है । प्रेमचन्द परंपरा से हटकर जैनेन्द्र मनोवैज्ञानिक उपन्यास क्षेत्र में रचनारत थे । मानव के सूक्ष्म अंतरानुभूतियों का अंकन जैनेन्द्र के उपन्यासों में अत्यंत संपन्नता से हुआ है । 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी', 'सुखदा', 'विवर्ता', 'व्यतीत', 'जयवर्धन', 'मुक्तिबोध', 'अनन्तर', 'अनामस्वामी' आदि जैनेन्द्र के उपन्यास हैं । 'परख' उपन्यास जैनेन्द्र का प्रथम तथा हिन्दी साहित्य में लिखित पहला मनोवैज्ञानिक उपन्यास है ।

फ्रायड, यूंग और एड्लर की मनोवैज्ञानिक मान्यताओं का असर हिन्दी उपन्यासों

पर भी पड़ा । फ्रायड के अचेतन प्रेरकों के अनुसार मनुष्य के अचेतन मन के रहस्योद्‌घाटन का प्रयत्न जैनेन्द्र के उपन्यासों में दीख पडते हैं । इसी अचेतन मन का रहस्योद्‌घाटन उनके उपन्यास 'मुक्तिबोध' में मिलता है । जैनेन्द्र के परवर्ती उपन्यास है 'मुक्तिबोध' (1965) । इस उपन्यास की रचना जैनेन्द्र रेडियो के लिए की थी । उपन्यास के बारे में जैनेन्द्र का आत्मकथ्य हैं – "कहने की आवश्यकता नहीं कि तत्कालीन राजकारण के संबंध का कोई मन्तव्य लेखक अथवा कृति का इष्ट नहीं है ।"[1] मनोवैज्ञानिक उपन्यास में व्यक्ति मन के द्वन्द्ध की महत्व है । 'मुक्तिबोध' में श्री.सहाय के मन की द्वन्द्ध को परिवार के सीमित दायरे में प्रस्तुत करते हैं । उपन्यास की विशिष्टता से सन् 1966 में इसे साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला ।

5.1.2 भावभूमि

आत्मकथात्मक शैली में लिखा हुआ लघु उपन्यास है 'मुक्तिबोध' । उपन्यास में नायक मि.सहाय शुरु से अंत तक अपनी कथा कह रहे हैं ।

सहाय एक लब्धप्रतिष्ठ राजनैतिक नेता हैं । दल के नेता की ओर से उसे मंत्री पद के लिए आमंत्रण मिलता है । किंतु गांधीवादी विचारधारा के समर्थक मि. सहाय इस ओर से उदासीन रहते हैं । उनके स्वजन – मित्र, ठाकुर, वी.पी., पत्नी राजश्री, बेटी अंजली, बेटा वीरेश्वर, पूर्व प्रेमिका नीलिमा, जामाता कुंवर साहब, भानुप्रताप, तामरा आदि पात्र उनपर दबाव डाल रहे हैं और कह रहे हैं कि मंत्री पद की मना मत करें । लेकिन सहाय राजनीति को छोडकर वानप्रस्थ की ओर उन्मुख हैं । मंत्री पद वे स्वीकार करते हैं या नहीं यह अंत तक समझ में आता नहीं । सिर्फ अंत में इतना ही अपनी पत्नी राजश्री से कहते हैं कि 'मैं मिनिस्टर हो गया हूँ ।'

उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का जिक्र है ।

आदर्श, कर्तव्य, मुक्ति आदि जीवन के बुनियादी तत्वों के बारे में विभिन्न प्रकरणों में चर्चायें हुई हैं ।

5.1.3 पात्र का आत्मसंघर्ष

उपन्यास का आरंभ ही मि. सहाय के मन की दुविधा के प्रकरण से होता है । चौब्वन वर्ष की आयु में उनको प्रौढ राजनीतिज्ञ वी.पी. से मंत्री पद स्वीकारने का निमंत्रण मिलता है । लेकिन सहाय राजनीति से मुक्त होना चाहते हैं । उपन्यास में इसका वर्णन है – "इधर कुछ दिनों से ठीक नींद नहीं आती है । रात तीसरे पहर टूट जाती है और मन भटकने लगता है । सहसा कोई विश्वास नहीं करेगा । कारण, मेरे नाम के साथ दुविधा की संगति कोई जोड नहीं पाता है । पर इस चव्वन बरस की वय में स्वीकार करना चाहिए कि मुझमें दुविधा उग रही है ।"[2] व्यक्ति मन की उलझन की स्थिति पूरे उपन्यास में मिलती है ।

पत्नी राजश्री सहाय के सुख-दुख की साथिन है । ढ़लती आयु में पति के प्रति उसकी ममता ने वात्सल्य का रूप धारण कर लिया है । यह सहाय अनुभव करते हैं । पिता और बेटी के कहने से वह अपने पति से मंत्री पद स्वीकार करने की विनती की । सहाय दुनिया को बेकार मानकर स्वयं बेकार बनना वह नहीं चाहती । विवाहिता पुत्री अंजली मंत्रीपद त्यागने पर अपना रोष प्रकट करती है – "आपको जो करना था, कर चुके । हमारी सारी उमर पडी है । उसका रास्ता क्यों रोकते हैं ? आपका मन भर चुका होगा, पर हमें तो अभी सब कुछ पाना है । आप क्या सिर्फ अपने लिए रहेंगे, कि कुछ आए तो चाहे ले, चाहे फेंक दें ।"[3] सहाय दूसरों की इच्छा के अनुसार जीना नहीं चाहते हैं । एक अवसर पर वे कहते हैं कि – "मैं सीढ़ी नहीं हूँ कि पैर रखकर मुझ पर चढा जाए । उनके मन का विरोध यहाँ प्रकट करते हैं ।"[4]

मि. सहाय के अचेतन मन में कई सवाल उठता है । देश आज़ाद हुआ, लेकिन उसको आज़ाद होना था । उन्हें घर गृहस्थी की ज़िन्दगी बँधी जैसी होती है । वे खुद पूछते हैं कि, "मैं जानना चाहता हूँ कि मुक्ति का वह बोध क्या है ? वह पारिस्थितिक है या नहीं, आत्मिक है या .... ?"[5] बाहरी संघर्ष उनके मन को दुविधाग्रस्त बनी । मित्र ठाकुर ने उनसे राजनीति से जुडे रहने को अपना मत प्रकट किया । क्योंकि राजनीति के खोखलेपन को बाहर लाने में एक आदर्शवान नेता की ज़रूरत है । सहाय एक आदर्शवान नेता हैं ।

राजनैतिक सूत्रधार भानुप्रताप आकर राजनीति में अटल रहने को कहा । बेटी की मित्र तामरा आकर मंत्री पद छोडने के विरुद्ध वाद-विवाद करती है, वी.पी. आकर मि.सहाय से सहायता मांगता है । देश की एकता बनाए रखने के लिए मि.सहाय की सहायता चाहिए । दूसरी ओर से सहाय के जामाता कुंवर साहब उनके नाराज़गी करते हैं । कुंवर को अपनी बिज़िनेस की सुरक्षा के लिए राजनीति में ज़ारी रहना आवश्यक है । इन सब के बीच पडने से मि.सहाय दुविधा में पड गयी ।

बीच में सहाय के पूर्व प्रेमिका नीलिमा आती है । वह विवाहिता है । नीलिमा सहाय के लिए एक आत्मिक स्फूर्ति जैसी प्रतीत होता है । उन्हें राजनीति में आगे बढने की सलाह देती है । वह सहाय के सामने कई तर्क रखती है । नीलिमा उनमें पुरुषार्थ जागती है । वह पुरानी बातें याद करके उन्हें समझाती हुई कहती है कि "आदमी सपने के लिए जीता है और औरत उस सपने के आदमी के लिए जीती है । पति के साथ मैं रहती थी, पर जीती तुम्हारे लिए ! ...... सपने से लौट हारकर तुम जाओगे तो मेरे जीने के लिए क्या आधार रह जाएगा?"[6] उनके अंतकरण के मुक्त स्वर को सुनने का यत्न नीलिमा भी नहीं कर रही है । नीलिमा की इस बात के प्रत्युत्तर से वे कहते हैं – "तुम्हारे जीने क लिए आधार दिये रहने को मुझे जीना

होगा ।"[7] इसपर कहीं सहाय के आंशिक स्वीकृति प्रतिध्वनित होती है । नीलिमा खुद अपने को गिरा नहीं सकती, इसलिए पुरुष को भी गिरा नहीं सकती । यह सहाय अच्छी तरह जानते हैं । उनके चरित्र मनोदश में अचेतन मन भागी है । सहाय अनुभव करते हैं कि नीलिमा की बात ने उनके अहं को काफी क्षति पहुँचाई । लेकिन मन ने नीलीमा को नीचा दिखाने की चेष्टा प्रकट की । यह उनके चेतन मन की बात है । लेकिन अंदर ही अंदर या अचेतन मन में मंत्री पद की सोच जाने-अनजाने आते हैं । नीलिमा का यह तर्क ठीक लगता है कि मि.सहाय जो निश्चय बना है, वह हठ में बना है । ज़िद में कई दूर चल नहीं सकता, टूट जाए ।

सहाय का पुत्र वीरेश्वर शिक्षित युवा के अहम से प्रेरित होकर शहर में आकर अपनी स्वत्व स्थापना करना चाहता है । इसके लिए राजनैतिक नेता के रूप में पिता का 'लेबुल' उसे आवश्यक है । लेकिन सहाय उसे गाँव की खेतीबारी देखने का काम सौंपता है । पुत्र को पिता से घोर विरोध है । यहाँ मि.सहाय अपना आग्रह उसपर दबाना चाहते हैं । साथ ही जामाता के कूटनीति में फंसने से रोका । वह बाप के प्रति शिकायत करते हुए उनकी आंतरिकता भी उघाडता है – "इनको तो उन कष्टों की वाहवी मिल जाती थी न ! नामवरी मिल जाती थी । लेकिन जिनको कुछ नहीं मिलता, सिर्फ कष्ट ही मिलता है, उनके बारे में इन्होंने कभी सोचा है ? आप हमारे परिवार से हमदर्दी रखती है, आण्टी, लेकिन इनका यह ढोंग है कि पद नहीं चाहिए । पद के लिए तो सारा त्याग-तपस्या का यह रूप है । ऊपरी जो है, नखरा है ।"[8] ये बातें सहाय को चुभती मालूम होती है । सहाय स्वयं उनमें से उनकी सचाई की प्रतिध्वनी आ जाती है । नीलिमा की सहायता से वीरेश्वर और सहाय निकट आते हैं ।

नीलिमा की शक्ति सहाय अनुभव करते हैं । धीरे-धीरे उनका कठिनापन हल्का बन जाते हैं । सबों के तर्क के अतिरिक्त बार-बार वे पत्नी से मंत्री पद त्यागने की बात पूछते

हैं । इसके पीछे वस्तुतः मंत्री पद का मोह अंदर ही छिपा बैठा है । बाहरी दबाव से सहाय की बेचैनी बढती है, घटती नहीं । वास्तव में वे समस्या पर आत्मनिर्णय लेना चाहते हैं । यह यहाँ स्पष्ट है । निर्णय की राह में परंपरा, व्यवस्था, आदेश, सलाह, व्याख्या सब उसे असह्य हो जाते हैं । दूसरें अपने-अपने कोण से उसे देखते दिखाते हैं । उनके अचेतन मन सोचने लगे कि, "जब तक अपने से इधर अनेक पर मौजूद है, तब तक 'स्व' का कोई अपना तंत्र शायद नहीं चल सकता है ।"[9]

उपन्यास के अंत में वे नीलिमा के आगे मन का रहस्य खोलते हैं । जितने शब्द बाहर से आते हैं, सब उनमें प्रतिरोध पैदा करते हैं, वही उसे सहज नहीं रहने देता और प्रतिरोध जगाता है । सहाय बाहर से आता शोर रोककर शांत मन आवाज़ सुनकर उसपर चलना चाहते हैं । अंत में सहाय नीलिमा के तर्कों से पराजित होकर मंत्रीमंडल में शामिल होना स्वीकार कर लेते हैं । यहाँ सहाय मुक्ति का वह बोध चाहते हैं । मुक्ति के विषय में सहाय का यह दृष्टिकोण ठीक है कि मुक्ति और सृष्टि परस्पर समन्वित शब्द है । शायद सृष्टि में से मुक्ति है चाहे तो देखे कि सृष्टि सदा बन्धनों की ही सृष्टि हुआ करती है । अतः मिस्टर सहाय का मिनिस्टर बनना मुक्ति ही है । आलोचक डॉ. गिरिधर प्रसाद शर्मा के अनुसार, " 'मुक्तिबोध' में मुक्ति पर केवल चर्चा चलती है ।"[10]

निर्णय व्यक्ति स्वयं लेता है किंतु वह समाज की संगति और संदर्भ में ही संभव है । सहाय की चेतन अचेतन मनोदशा की उपलब्धी इसीपर निर्भर है । अंत में वे यह स्वीकारते हैं कि परंपरा विस्तृत होती चलती हो जाती और अंत में मुक्ति में पर्यवसान प्राप्त है । निर्णय की स्थिति निगूढ हैं । उपन्यास के अंत में सहाय अपनी पत्नी से कहते हैं – 'मैं मिनिस्टर हो गया हूँ' । यह आकस्मिक अंत जैनेन्द्र की औपन्यासिक पटुता है । अनेक कारणों

और स्थितियों ने उन्हें यह निर्णय लेने को बाध्य किया है ।

उपन्यास में जैनेन्द्र ने सहाय की दुविधाग्रस्त मनोदशा को वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर दिया । इसमें गाँधीवादी सिद्धांतों से प्रेरित तथा प्रभावित राजनेता सहाय की आत्मपीडन की स्थिति प्रस्तुत की गई है ।

5.1.4 मूल्यांकन

राष्ट्र की स्वतंत्रता और व्यक्ति की स्वतंत्रता हमेशा एक पूरक तत्व नहीं लेता है । व्यक्ति को अपने ढंग से सोचने और निर्णय लेने का हक है । कुछ लोग ऐसे सोचेंगे कि साथी लोग क्या सोच विचार करेंगे ? इन दोनों का निर्णय एक ही दिशा में नहीं तो उलझन हो जाएगी । इस प्रकार की उलझन दूसरों के आने के स्थिति में अपने निर्णय को गौण मानेंगे । दूसरों की सोच को मज़बूरी से अपना कर आगे बढेगे । उपन्यासकार ने इस प्रकार के एक पात्र और वातावरण की सृष्टि 'मुक्तिबोध' में की है ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास घटना प्रधान नहीं है । आंतरिक संघर्ष ज़्यादा है । उपन्यास में मि.सहाय के आत्मसंघर्ष या मुक्ति की चर्चा ज़्यादा है । जैनेन्द्र का अधिक उपन्यास नायिका प्रधान है । लेकिन 'मुक्तिबोध' नायक प्रधान उपन्यास है । उपन्यास का केन्द्रीय बोध मुक्ति का बोध है । एक अधेड आदमी मि.सहाय के माध्यम से मुक्ति की चर्चा उपन्यास में मिलती है । इसमें मुक्ति आत्मनिर्णय लेने की शक्ति है । मि.सहाय गाँधीवादी है । वे अधिकार स्थान से दूर हो जाते हैं । मंत्री पद उनकी तलाश में आता है । तब वह उससे इनकार करते हैं । उनके अनुयायी मंत्री बनने के लिए उनको मज़बूर करते हैं । इससे मन का संघर्ष उपन्यास में ज़ारी होता है । ठाकुर, वी.पी., नीलिमा, राजश्री जैसे पात्रों ने सहाय को राजनीति में जुडे रहने

की तर्क रखा । इन पात्रों में मानवीय संबंधों का मूल्य हम देखते हैं । क्योंकि देश की भलाई के लिए सहाय जैसे नेताओं का आना राजनीति में आवश्यक है । लेकिन दूसरी ओर सहाय के बेटी, बेटा, दामाद, भानुप्रताप, तामरा आदि राजनीतिक लाभ उठाने में मंत्री पद स्वीकारने के लिए तत्पर दिखाई पड़ती है । इन पात्रों में मानवीय संबंधों की कमी है । इन चरित्रों के माध्यम से जैनेन्द्र ने मानवीय संबंधों का आधार उपयोगिता माना । इस उपन्यास के सभी पात्र कार्यक्षेत्र की अपेक्षा विचार क्षेत्र में ही उड़ते रहते हैं ।

मंत्री पद पर रहना गाँधी मार्ग के अनुकूल है या गॉव में रहकर सादा जीवन बिताना नीति सम्मत है । यह सहाय के संघर्ष का मूल कारण है । अनिर्णय की इस स्थिति में गुजरने सहाय की अचेतन और चेतन मन में हुई स्थितियों का संकेत पूरे उपन्यास में छाई हुई है । पहले राजश्री अपने पति से मंत्री पद स्वीकारने के लिए अनुरोध करती है । तब मि.सहाय उसका विरोध करते हैं । लेकिन पूर्व प्रेमिका नीलिमा के अनुरोध पर उनका निर्णय धीरे-धीरे बदल जाता है। बाद में वे मंत्री पद स्वीकारने का निर्णय लिया । इससे फ्रायड के अचेतन मन के प्रकरणों का विचार उपन्यास में ठीक मिलता है । अस्वीकृति का पहला निर्णय बाद में स्वीकृति का निर्णय बन जाता है । राजश्री, अंजली, तामरा, नीलिमा आदि इस उपन्यास के स्त्री पात्र हैं । इनमें सशक्त नारी पात्र है नीलिमा । नलिमा की सलाह से मि.सहाय मंत्री पद स्वीकार करते हैं । उसकी दृढ़ता से बिछुडा बेटा अपने परिवार से जुड जाता है । उसीकी प्रखर बुद्धि से तामरा और कुंवर साहब की चाल व्यर्थ हो जाती है ।

उपन्यास में भरे-पूरे परिवार के होते हुए भी, सहाय के नीलिमा से प्रेमसंबंध बने हुए है । इन संबंधों के विरुद्ध सहाय की पत्नी के मन में कोई आपत्ती नहीं है । राजश्री ने न केवल पति की प्रेयसी से समझौता किया है । वरन् वह उसे अपने की उन्नति के लिए अनिवार्य

मानती है । औरों के लिए 'स्व' का विसर्जन का अभ्यास सहाय के मंत्री पद स्वीकारने में मिलती है । अंत में हम देखते हैं कि सहाय स्वयं मार्ग खोजना चाहते हैं । वहीं उनके मुक्तिबोध की प्रक्रिया है । उनका आत्ममंथन 'मुक्तिबोध' है । उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता इस प्रसंग से जुड़ जाती है । उपन्यास में बेटा वीरेश्वर भी एक तरह से मुक्ति चाहता है । नई पीढ़ी का युवक वीरेश्वर स्वतंत्र व्यक्तित्व चाहता है । यहाँ वीरेश्वर बाप से मुक्ति चाहता है ।

डॉ. देवराज उपाध्याय स्पष्ट कहते हैं कि, "सहाय अपने आदर्शों और सिद्धांतों का गला घोंटकर केवल अपने परिवार और राजनीतिक मित्रों को प्रसन्न करने के लिए ही अपना पद स्वीकार करते हैं । यही सहाय की आत्मपीडक स्थिति है ।"[11] यह ठीक है कि यहाँ सहाय को अपने मन की आशाएँ और आदर्शों को गला घोंटना पडेगा । यहाँ सहाय का यह कथन ठीक लगता है – "उपयोगिता की वेदी पर हार्दिकता इन्सान कुर्बान करने लग जाता है ।"[12] राष्ट्र की स्वतंत्रता के पहले निर्णय लेने की शक्ति व्यक्ति में कम दिखाता है । स्वतंत्रता के बाद व्यक्ति चाहता है कि निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त हुआ है । स्वातंत्र्योत्तर युग की परिस्थितियों का जिक्र उपन्यास में है । स्वातंत्र्योत्तर युग में भी व्यक्ति की आत्मनिर्णय लेने की शक्ति नष्ट हो चुकी हैं । यह व्यक्तिमन की नियति है। इस समसामयिक समस्या जुड़े होने के कारण उपन्यास प्रासंगिक है ।

मुक्तिबोध आत्मकथात्मक शैली में लिखा हुआ उपन्यास है । कहीं-कहीं मि.सहाय के मस्तिष्क में उठनेवाले विचारों का चित्रण है । बाकी पूरा उपन्यास दो व्यक्तियों के संवाद के रूप में ही लिखा गया हैं । नीलिमा के संवाद से कथा का विकास होता है । मि. सहाय के मंत्री पद के निर्णय अनिर्णय की स्थिति का चित्रण उपन्यास में सहज रूप में मिलता है ।

संदर्भ ग्रंथ

1. जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध – भूमिका से

2. जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध – पृ. 7

3. वही – पृ. 10

4. वही – पृ. 11

5. वही – पृ. 13

6. वही – पृ. 66

7. वही – पृ. 66

8. वही – पृ. 91

9. वही – पृ. 14

10. डॉ. गिरिधर प्रसाद शर्मा – हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन – पृ.120

11. डॉ. देवराज उपाध्याय – जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन – पृ. 181

12. जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध – पृ. 22

अध्याय - ६

स्वातंत्र्योत्तर भारत की नियति पुरस्कृत उपन्यासों में

6.1 भूमिका

भारत सदियों से अंग्रेज़ों के गुलामी था । भारत में राष्ट्रीय चेतना अंग्रेज़ शासन की प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न हुई थी । सन् 1885 में कांग्रस की स्थापना हुई । डब्ल्यू.सी. बानर्जी, दादाभाई नवरोजी, लाला लजपतराय, बिपिनचन्द्र पाल, गोपालकृष्ण गोख्ले आदि उस समय के नेता थे । गोख्ले के अनुयायी के रूप में फिर गाँधीजी का आगमन भारतीय राजनीति में हुआ था । तब से स्वतंत्रता संग्राम को एक नई दिशा दी । सत्य और अहिंसा का मार्ग गाँधीजी ने चुन लिया था । भगतसिंह, सुभाष चन्द्रबोस आदि नेताओं ने इस मार्ग को समर्थन नहीं दिया था । गाँधीजी को जनसाधारण का व्यापक समर्थन मिला । स्वाधीनता के पूर्व राष्ट्रीय जागरण का एकमात्र लक्ष्य भारत को पराधीनता की श्रृंखलाओं से मुक्ति दिलाना था । परतंत्र की परिस्थितियों में भारतीय जन ने स्वतंत्र, सुखी, संपन्न, समृद्ध, वर्गहीन शोषण मुक्त समाजवादी राष्ट्र का अनुमान और जाति-पांति, ऊँच-नीच, वर्ग वैषम्य, सांप्रदायिकता आदि के कदम से मुक्त एक राष्ट्र का सपना देखा था । अंग्रेज़ों ने स्वतंत्रता के समय सांप्रदायिक दंगे की विभीषिका का भयानक दृश्य खड़ा कर दिया । देश दो भागों में बांटकर स्वतंत्र हुआ – भारत और पाकिस्तान । एकीकृत भारत के लिए स्वाधीनता आन्दोलन हुआ । लेकिन नियति है कि द्विराष्ट्र भारत । हमारे राष्ट्र की स्वतंत्रता के अरुणोदय के समय में नेहरू ने 'ट्रिस्ट विद डेस्टिनी' नाम से अपना प्रसिद्ध भाषण दिया । उस समय नेहरू अपने भाषण में स्वातंत्र्योत्तर भारत की नियति के बारे में संकेत किया है ।

देश, समाज, व्यक्ति, विशेषकर स्त्री की नियति एक हद तक बदल गयी है ।

साहित्य अकादमी पुरस्कृत इन उपन्यासों में उसका सशक्त चित्रण मिलता है । लेखकों की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक निरीक्षणों में वैविध्य देख सकते हैं । देश की वर्तमान स्थिति पर उपन्यासकारों की आशंकाएँ कई उपन्यासों में उभर आयी है । भगवतीचरण वर्मा, यशपाल और अमरकांत स्वतंत्रता आन्दोलन का भागीदार थे । उस समय के दृश्यों के साक्षी थे । इनके उपन्यासों में स्वतंत्रता पर किस प्रकार कलंक लगा उसका अर्थ कैसे खो दिया, उसके लिए ज़िम्मेदार कौन है, उससे बचने का क्या मार्ग है - इन सभी बातों का प्रतिपादन किया है ।

स्वतंत्रता की समय सांप्रदायिक दंगे की विभीषिका का भयानक दृश्य खडा कर दिया । 'तमस', 'ज़िन्दगीनामा', 'कितने पाकिस्तान' आदि उपन्यासों में इसका भयानक रूप देखते हैं । स्वतंत्रता के पूर्व और उसके बाद भारतीय राजनीति में हुए परिवर्तनों का चित्रण 'भूले बिसरे चित्र', 'रागदरबारी', 'मेरी तेरी उसकी बात', 'नीलाचांद', 'क्याप', 'इन्हीं हथियारों से' आदि उपन्यासों में भी चित्रित है ।

पारिवारिक सामाजिक क्षेत्रों में स्वतंत्रता के बाद बदलाव आ रहे हैं । भले ही यहाँ भी उनकी गति उतनी तेज़ नहीं है जितनी आशा की गई थी । स्वातंत्र्योत्तर भारत में आर्थिक असमानता, वैयक्तिक तनाव, वर्ग संघर्ष, ज़मींदारी प्रथा का उन्मूलन, समाज और व्यक्ति का आपसी वैमनस्य, संयुक्त परिवार का विघटन आदि देखते हैं । 'अमृत और विष', 'ढाई घर', 'दीवार में एक खिडकी रहती थी', 'कलिकथा वाया बाइपास' आदि उपन्यास इसके ज्वलंत प्रमाण है ।

सदियों से लेकर आज तक नारी शोषण का शिकार होता जा रही है और भविष्य में भी होती रहेगी । हम चाहे कितनी ही स्त्री पुरुष समानता, अधिकार और शोषण-मुक्ति की बात

कहे, संविधान की दुहाई दे, मगर पुरुष प्रधानता को जड़ से निकालना मुश्किल है । यद्यपि आज नारी पहले जैसी उपेक्षिता और संत्रासिता नहीं है, किंतु आत्मनिर्भर होकर भी वह अस्तित्वहीन होता है । नारी शोषण, अत्याचार, समस्याएँ, नारी मुक्ति, नारी अस्तित्व आदि महत्वपूर्ण बातों को उपन्यासकारों ने व्यक्त किया है । सिर्फ महिलाएँ ही नहीं पुरुष लेखकों ने भी नारी को और उससे जुडी बातों को अपने उपन्यासों में जगह दी थी । 'अर्द्धनारीश्वर', 'मुझे चाँद चाहिए', 'कोहरे में कैद रंग' आदि उपन्यासों में नारी चेतना मुखरित हो उठी हैं । व्यक्ति मन का गहन अध्ययन स्वातंत्र्योत्तर काल में ज़्यादा मिलता है । जैनेन्द्र का उपन्यास 'मुक्तिबोध' इस श्रेणी में आता है ।

6.2 तमस

भीष्म साहनी ने अपने अनुभव से पीछे मुडकर 'तमस' की रचना की । मुंबई में रहते समय भीष्म साहनी ने भीवंडी में एक भीषण सांप्रदायिक दंगे को देखा था । तब उसके मन में सालों पहले यानि स्वतंत्रतापूर्व अपने देश पंजाब में हुए सांप्रदायिक दंगे का याद आता था। 'तमस' में इस सांप्रदायिक दंगे का विस्तार मिलता है । अंग्रेज़ अफसर रिचार्ड ने हिन्दु, मुसलमान और सिक्खों के बीच घृणा फैलाकर अपनी राजनीतिक मक्सद् हासिल की । इससे कुछ देशी लोगों की सहायता भी अंग्रेज़ों ने प्राप्त की। मुरादअली ने नत्थू द्वारा सुअर मारकर मस्जिद की सीढ़ियों पर फेंका । प्रतिक्रिया के रूप में मुसलमानों ने गाय को काटकर मंदिर की सीढियों पर फेंका । इससे सांप्रदायिक दंगे का भयानक रूप सामने आता है । मुरादअली जैसे आदमी हर जगह देखते हैं । गाँव और शहर में भीषण युद्ध हुए, इससे लाखों लोगों की ज़िन्दगी उद्धस्त हुई । स्वतंत्रता के अवसर पर हुए भारत विभाजन से कईयों की ज़िन्दगी बरबाद हो गई । हिन्दुस्तान से पाकिस्तान जानेवाले मुसलमानों और पाकिस्तान से हिन्दुस्तान आनेवाले

हिन्दुओं का बडे पैमाने पर संहार किया गया । इस समय हत्य, बलात्कार, आगजनी, लूटपाट आदि भयानक रूप देखते हैं । हरनाम सिंह और बातों की करुण कथा इससे जुडी है । स्वातंत्र्योत्तर भारत की इस नियति को भीष्म जी व्यक्त करते हैं – "आये आज़ादी, पर हमें क्या ? हम पहले भी बोझा ढोते हैं, आज़ादी के बाद भी बोझा ढोयेंगे ।"[1] यहाँ लेखक यह सिद्ध करते हैं कि भारतीय जनमानस पर सांप्रदायिकता का विष अब भी छाया हुआ है ।

6.3 ज़िन्दगीनामा

सन् 1905 में लार्ड कर्जन के भंग-भंग प्रस्ताव के विरुद्ध उठी मानसिकता कृष्णा सोबती कृत 'ज़िन्दगीनामा' का केन्द्र है । पंजाब में पहले सभी धर्म के लोग मिलजुलकर रहते थे । लेकिन भंग-भंग के प्रस्ताव से सब ओर विद्वेष फैला । त्याग, तपस्या, दया, करुणा, स्नेह, प्रेम आदि के मूल्यों में द्रुतगति से परिवर्तन आया । घोर सांप्रदायिक दंगे हुए । यहाँ लेखिका यह दिखाना चाहती है कि आज भी सांप्रदायिकता के खतरे में देश मुक्त नहीं है । उपन्यास के आरंभ में लिखी ये पंक्तियाँ –

"दूध भरी छोतियों से
अब दूध नहीं
खून टपता है ।"[2] स्वातंत्र्योत्तर भारत की नियति की ओर सूचित करती है ।

सन् 1905 में लार्ड कर्जन ने विभाजन का जो कदम उठाया वह अधिक रूप धारण कर स्वतंत्रता के ठीक समय यानी सन् 1947 में हुई ।

6.4 कितने पाकिस्तान

कमलेश्वर कृत 'कितने पाकिस्तान' में धर्मांधता से पनपी अलग-अलग पाकिस्तानों की मांग है । यहाँ पाकिस्तान केवल प्रतीक के रूप में आता है । उपन्यास में सन् 1999 के

कारगिल युद्ध, सन् 1965 के भारत-पाक युद्ध, बाबरी मस्जिद विध्वंस आदि धर्मांधता की लडाई का जिक्र है । स्वतंत्रता के ठीक पहले हुए सांप्रदायिक विध्वंस का पर्दाफाश उसके बाद भी मौजूद है । भारत विभाजन की दारुण कहानी बूटासिंह और जेनिबा के माध्यम से व्यक्त हुई है । मनुष्य को पशु बना देनेवाले पागलपन को यहाँ देखते हैं । धर्म के नाम पर हुए बंटवारा मनुष्य की आत्मा को बरबाद करते हैं । कमलेश्वर ने लिपिबद्ध कर दिया है – "हिन्दुस्तान में हिन्दु भी हिन्दुस्तानियों से अपना हिन्दुत्ववादी पाकिस्तान मांग रहे हैं ।"[3] वर्तमान समाज में बंटवारे की पाकिस्तान बनाने की नीति सभी ओर देखते हैं । आनेवाली समूची मानवता से सवाल कर रहा है कि अब और कितने पाकिस्तान बनेंगे ।

6.5 भूले बिसरे चित्र

'भूले बिसरे चित्र' में राष्ट्रीय आन्दोलन का चित्र मिलता है । पीढियों का अंतराल इस उपन्यास का मुख्य मुद्दा है । ज्ञानप्रकाश, नवल और विद्या के माध्यम से राष्ट्रीय आन्दोलन का विस्तार मिलता है । इस समय पूँजीवाद के विकास और सामंतवाद के ह्रास की है । और विदेशी शासन का महत्वपूर्ण स्तंभ था । लेकिन आगे राजनैतिक चेतना का स्वरसभी ओर मुखरित हो उठा और विद्रोह का रूप प्रकट हुआ । चौथी पीढी में राष्ट्रीय जागरण का स्वर मिलते हैं । पहले के तीन पीढियों में शिवलाल, ज्वालाप्रसाद, गंगाप्रसाद अंग्रेज़ों के समर्थक दिखाई पडते हैं । परंपरागत मूल्यों को तोडकर वे आगे बढते हैं । आज भारतीय स्वतंत्रता की भारी लडाई भूल चुके हैं । और निकृष्ट कार्य भी करते हैं । इस नियति को जानते हुए उपन्यासकार ने उस भूले बिसरे युग का चित्रण किया है । ज्वालाप्रसाद का यह कथन – "नहीं, समझ में आ रहा है भीखू, यह सब क्या हो रहा है और क्यों हो रहा है ।"[4] यह कथन युग परिवर्तन की ओर इशारा करता है ।

6.6 रागदरबारी

जनतांत्रिक समाज में नेताओं की दबदबा हैं । नेताओं ने भ्रष्टाचार, गुडबंदी, झूठे आश्वासन को भरपूर प्रश्रेय दिया । श्रीलाल शुक्ल का उपन्यास रागदरबारी में ऐसा एक नेता को देख सकते हैं । आज के सत्तालोलुप नेता का प्रतिनिधि है वैद्य जी । शिवपालगंज गाँव के कॉलेज, कोओपरेटीव यूनियन, पंचायत सभी पर उनका ही दबदबा है । तमचा और गुटबंदी से राजनीति पर अपना अधिकार हासिल करते हैं । शिक्षा जगत् में जुडी कई भ्रष्टाचारों जैसे अध्यापकों की नियुक्ति, परीक्षा में नकल करना, छात्रों की गुटबंदी और अध्यापन कार्य आदि का याथार्थ्य का अंकन यहाँ मिलते हैं । भ्रष्ट राजनीति का इस्तेमाल भी करते हैं । रुप्पन का यह कथन – "मुझे तो लगता है दादा, सारे मुल्क में यह शिवपालगंज ही फैला हुआ है ।"[5] यह कथन जितना सार्थक है । भारत की दूषित राजनीति का दस्तावेज़ है यह उपन्यास । स्वतंत्रता प्राप्ती के दो दशक बाद लिखा यह उपन्यास निश्चय ही स्वातंत्र्योत्तर भारत की नियति की ओर सूचित करता है ।

6.7 मेरी तेरी उसकी बात

स्वतंत्रता आन्दोलन और स्वातंत्र्योत्तर भारत की दशा और दिशा पर यशपाल कृत 'मेरी तेरी उसकी बात' की विशेष स्थान है । अमर, उषा, रुद्रदत्त पाठक नरेन्द्र आदि पात्रों के ज़रिए स्वतंत्रता आन्दोलन आगे बढती है । स्वतंत्रता आन्दोलन के समय राजनीतिक क्षेत्र में उषा देश की युवा पीढी का नेतृत्व करती है । भारत छोडो आन्दोलन में सक्रिय भाग लेती है । उस समय हुए सांप्रदायिक दंगे और विभाजन भी उपन्यास में मौजूद हैं । स्वतंत्रता के बाद उषा की यही नियति है कि आज़ाद भारत के राजनीति में कोई स्थान भी नहीं मिला । यशपाल ने यहाँ व्यक्त किया है राजनीति में हुए संघर्ष का लक्ष्य केवल शासन बदलना नहीं, समाज और

उसके दृष्टिकोण को बदलना है । रुद्रदत्त पाठक का यह कथन – "हमें समाज को निरर्थक मान्यताओं और संस्कारों से मुक्त करना है ।"[6] लेकिन आज यह संभव न हो पाया ।

6.8 नीलाचाँद

'नीलाचाँद' में शिवप्रसाद जी ने मध्यकालीन काशी के राजनैतिक माहौल से आधुनिक काल की खोज करते हैं । स्वातंत्र्योत्तर भारत में उपन्यासकार कीरत और कर्ण जैसे पात्रों के ज़रिए धर्मी और अधर्मी राजाओं का पर्दाफाश किया है । कीरत राजनीति में जातीयता को मिटाकर सभी को एकसूत्र में बाँधकर राजसत्ता की मुख्यधारा से जोडकर चलता है । कर्ण अत्याचारी नेता है । लेखक ने उसे वर्तमान परिदृश्य में प्रस्तुत कर आज के राजनीति के गलत रास्ते की ओर संकेत किया है । स्वातंत्र्योत्तर भारत की इस नियति को उजागर करने में इतिहास का सहारा लिया । आज के संदर्भ में नई प्रकाश किरण के रूप में शासक कीरत को चित्रित करते हैं । जनतांत्रिक युग से कर्ण जैसे अत्याचारी नेता देश को पतन की ओर ले चलता है । कीरत जैसे नेता पतन से राष्ट्र को बचाते हैं । आज राजनीति में आदर्श नेता की कमी है । यह स्वातंत्र्योत्तर भारत की नियति है । एक सिद्ध पुरुष का यह कथन – "सारा उत्तर भारत नष्ट होगा, कम से कम उत्तर भारत की रक्षा न हो सके तो दक्षिण को ही बचाया जा सकता है ।"[7] आपसी फूट, देसी राजाओं के अत्याचार और अपने में ही लडते रहने, लड मरने की उनकी नियति को सूचित करते हैं ।

6.9 क्याप

स्वातंत्र्योत्तर भारत की नरक सामने लानेवाला उपन्यास है मनोहरश्याम जोशी कृत 'क्याप' । स्वतंत्रता के पूर्व अंग्रेज़ हैरिसन द्वारा भोगविलास से भारतीयों की मति भ्रष्ट

की । स्वतंत्रता के तुरंत बाद उर्बदता, भवानीदत्त ज्यू जैसे स्वार्थी कांग्रसी नेता का स्वरुप मिलते हैं । वे जातीयता को बढ़ाते हैं । समकालीन संदर्भ में मेधातिथि जोशी, हरकू, रामध्यानु आदि स्वार्थी नेताओं को भी अंकन करते हैं । इनके द्वारा ये मतिभ्रष्ट वाला पाठ दुहराते हैं । हत्या, भ्रष्ट राजनीति, जातीयता, लूट-मार, माफिया युद्ध, ऊंच-नीच भेद जैसे बहुत सारी कुरीतियाँ हमारे समाज में फैली है । इसकी ओर उपन्यास में संकेत मिलता है । लेखक ने व्यक्त किया – "जनाधारण यही कहते सुनाई देंगे कि हमारी तरफ से स्वाधीनता क्याप हुई ।"[8] 'क्याप' का मतलब अर्थहीन है । जनतांत्रिक भारत में जनसाधारण की यही सोच स्वातंत्र्योत्तर भारत की नियति की ओर इशारा करती है ।

6.10 इन्हीं हथियारों से

सन् 1942 के भारत छोडो आन्दोलन अमरकांत का उपन्यास 'इन्हीं हथियारों से' का केन्द्र है । बलिया आन्दोलन का वे साक्षी थे । बयालीस की क्रांति में बलिया के छात्र, छोवर, डाकू, पहलवान, व्यापारी, औरत, वेश्या जैसे समाज के हर जनवर्ग ने कर्मठता से भाग लिया । इस लडाई में लोगों का विश्वास था कि आज़ादी मिलने पर सबका कष्ट दूर हो जाएगा। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ती के तुरंत बाद हुए धार्मिक विद्धेष का चित्रण भी उपन्यास में है । साथ ही स्वातंत्र्योत्तर भारत के स्वार्थी नेता को दिखाई पडती है । अनिरुध्द दास जैसे नेता सत्ता और सुविधा के लिए सब भूल चुका है । स्वदेशी, असहयोग, सत्याग्रह, नारी शिक्षा, सांप्रदायिक सद्भाव, अस्पृश्यता निवारण इन्हीं हथियारों से ही बलिया स्वतंत्रता प्राप्त करते हैं । यह बलिया का ही नहीं पूरे राष्ट्र का आन्दोलन है । लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात् भ्रष्ट राजनीति का माहौल भी मिलते हैं । यहाँ उपन्यासकार ने राष्ट्रीय आन्दोलन से जुडे व्यक्तियों के निजी अनुभवों, ऐतिहासिक घटनाओं तथा बयालीस से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ती तक के समय की यथार्थ अंकन

किया है । यहाँ उपन्यासकार प्रश्न उठाते हैं कि – "क्या आज इन्हीं हथियारों से देश सेवा हो सकती है, जिनसे स्वतंत्रता की लडाई लडी गई ?"[9] स्वातंत्र्योत्तर भारत में यह सवाल उठाता है । आज़ादी की रक्षा कैसे कर सकेगा ? यह आज एक बडी समस्या बन गयी ।

6.11 अमृत और विष

'अमृत और विष' में स्वतंत्रता सेनानी अरविंद शंकर की पारिवारिक संघर्ष है । स्वातंत्र्योत्तर भारत के लेखक अरविंद शंकर अपने जीवन के कटु परिस्थितियों में टूटते नज़र आते हैं । शांत और स्वस्थ करने के अवसर पर भी अधिक अशांत और उद्विग्न बना देते हैं । उन्होंने स्वतंत्रता आन्दोलन के आरंभिक काल में एक सुखी ज़िन्दगी का सपना देखे थे, वे सब स्वतंत्रता के बाद व्यर्थ लगते हैं । सगे संबंधियों का अलग रहना, आर्थिक संकट, सामाजिक क्रांतियाँ सभी उसे टूटते दिखते हैं । विपरीत परिस्थितियों में पडकर आत्महत्या तक की बात भी सोचते हैं । वे अपनी पारिवारिक जीवन विष ज़्यादा पा रहे हैं । फिर भी इस अंधकारमय समाज में प्रकाश देने के लिए अरविंद शंकर जीता है । जीने की आस्था भी यहाँ मौजूद है । रमेश का यह कथन – "भले ही आज़ाद रहे, तरक्की भी करती रहे, मगर उस उन्नति और आज़ादी का मूल्य ही क्या ।"[10] यह स्वातंत्र्योत्तर भारत की मूल्यहीन समाज को सूचित करता है ।

6.12 ढाई घर

स्वाधीनता के साथ ही सामंती व्यवस्था का अंत हो चुका है । 'ढाई घर' में गिरिराज किशोर ने स्वतंत्रता के पूर्व और उसके बाद के सामंती परिवार का चित्रण किया है । उपन्यास में स्वतंत्रता के पहले अंग्रेज़ों के साथ उठने बैठने राय परिवारों को देख सकते हैं ।

सामंती परिवार की कुलीनता स्वतंत्रता के पहले सुशोभित थी । बडे रायसाहब, मंझले राय, छोटे राय, भास्कर राय सभी अंग्रेज़ों पर विश्वास रखते हैं । देश के आन्दोलन से वे दूर रहते थे । स्वाधीनता के पश्चात् धीरे धीरे राय परिवार टूटता दिखाई पडता है । ज़मीन बेचकर कर्ज लेना भी पड़ा है । लेकिन मानसिक तौर पर बदलते समाज को स्वीकारना राय परिवार के लिए मुश्किल है । लेकिन परिवर्तन की कामना रघुवर में देख सकते हैं । एक विडंबना है कि जनतांत्रिक समाज में सामंती वर्ग के प्रतिनिधि राजनीति से जुड़े हुए थे । स्वाधीन भारत में जगनबाबू जैसे सामंत्र मंत्री बन गये, जो अपने आपको विशिष्ट बनाये रखना चाहते हैं । रघुवर का यह कथन – "यह आज़ादी गाँधी के पसंद की आज़ादी नहीं है । यह न्यू फ्यूडल्स की आज़ादी है ।"[11] उपन्यासकार ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की इस नियति को उजागर किया ।

6.13 दीवार में एक खिड़की रहती थी

विनोदकुमार शुक्ल कृत 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' में गाँव से कस्बे में आते रघुवरप्रसाद की आर्थिक संघर्ष है । कस्बाई ज़िन्दगी का वास्तविकता का भी चित्रण इसके द्वारा मिलता है । यहाँ के महाविद्यालय की शोचनीय स्थिति, कॉलेज आ-जाने की कठिनाईयाँ आदि कस्बाई ज़िन्दगी में देखती है । रोटी, कपड़ा, मकान, इलाज से वंचित परिवार है रघुवर प्रसाद का । स्वातंत्र्योत्तर भारत में यह दिखाई पडती है । सोनसी का यह सोच – "वर्तमान का सुख इतना था कि भविष्य आगे उपेक्षित सा रास्ते में पड़ा रहता, जब तक वहाँ पहूँचे तो लगता । खुद बेचारे रास्ते से हटकर और आगे चला गया ।"[12] आर्थिक संघर्ष होने पर भी नवदम्पति में आस्था दिखाई पडती है । अभावमयी ज़िन्दगी में भी यह आस्था देखती है ।

6.14 कलिकथा वाया बाइपास

'कलिकथा वाया बाइपास' में अलका सरावगी ने मारवाडी समाज को केन्द्र में

रखा है । उपन्यास में स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता के बाद के समाज की व्यथा कथा है । मारवाडियों ने अंग्रेज़ों के ज़माने में अंग्रेज़ों के साथ संबंध रखा । उस ज़माने में मारवाडियों ने निजी स्वार्थ के अलावा अपने देश के गुलामी के बारे में सोचा भी नहीं । किशोरबाबू की ज़िन्दगी के ज़रिए उनके पूर्वज और अगली पीढ़ी का मारवाडी समाज का चित्रण मिलते हैं । साथ ही बंगाली समाज का भी जिक्र है । वे स्वतंत्रता आन्दोलन पर अग्रसर होते हैं । शांतनु, अमोल्क जैसे पात्रों के माध्यम से राष्ट्रीय जागरण का स्वर मिलते हैं । स्वातंत्र्योत्तर भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का दबदबा, भूखे नंगे लोग, स्त्री स्वतंत्रता आदि प्रश्नचिह्न लगाते हैं । इसका भी जिक्र उपन्यास में है । स्वातंत्र्योत्तर भारत की इस कलियुग को देखकर किशोर बाबू जीवन के अंतिम क्षण में क्षुब्ध नज़र आते हैं । किशोरबाबू महसूस करते हैं – “सचमुच कितने कष्ट सहे लोगों ने इस आज़ादी को हासिल करने में । क्या हौसला था उन दिनों मन में । कई बार मन में आता या कि जिन लोगों ने देश के लिए कुर्बानी दी है, उनके चरणों की धूल मिल जाए, तो सारा जहाँ मिल जाए ।”[13]

6.15 अर्द्धनारीश्वर

स्वातंत्र्योत्तर भारत में स्त्री दिन-ब-दिन बलात्कार का शिकार बन गयी है । ‘अर्द्धनारीश्वर’ उपन्यास इसपर सवाल उठाता है । अपने ही घर में बलात्कारी गुण्डों के आक्रमण का शिकार बने, पति से पीडित, पत्नी के रहते हुए दूसरों के साथ यौन संबद्ध रखते, प्रेम से वंचित और तलाक शुदा मांगते स्त्रियाँ आज समाज में भरपूर मिलते हैं । सुमिता, पंपी, शालिनी, राजकली, मार्था, वासंती, किरण आदि बलात्कार से पीडित नारियाँ है । विभा, उषा, रमा, वार्तिका, श्यामला आदि पुरुषवर्ग से शोषित स्त्री पात्र है । उपन्यास में स्त्री नियति के इस समस्या का सवाल सुमिता के द्वारा उठाता है । समाज में प्रताडित नारियों को भी वह समेटती

है । विभा, किरण, वार्तिका, शाहिदा आदि शोषित नारियाँ भी बराबरी की तलाश में जुडा है । स्वतंत्र भारत में स्त्री की नियति पर बार-बार प्रश्न उठा । सुमिता का यह सोच – "पुरुषप्रधान समाज होने के कारण नारी सभी प्रकार की पाबंदियों को झेलने को विवश है और जब तक वर्तमान समाज व्यवस्था बनी रहती है, वह विवश रहेगी ।"[14] नर-नारी समाज में समान है । अर्द्धनारीश्वर की यह परिकल्पना स्वातंत्र्योत्तर भारत में नष्ट हो गई ।

6.16 मुझे चाँद चाहिए

सुरेन्द्र वर्मा कृत 'मुझे चाँद चाहिए' में स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व का सवाल उठता है । स्वतंत्र अस्तित्व की यह चाह से यशोदा शर्म उर्फ वर्षा वशिष्ठ अपने परिवारों के सनातन विचारों से संघर्ष करती है । इसी कामना से नाटक से अभिनय सफर शुरू करनेवाली वर्षा फिल्मों के अभिनय से सफलता के शिखर पर पहूँचती है । मध्यवर्गीय परिवार में नारी को अपनी इच्छाओं और आशाओं को गला घोंटना पड़ता है । इसी नियति को पार करने के लिए वर्षा बाहर की दुनिया में पूर्ण आत्मनिर्भरता के राश्ते तलाश रही है । वर्षा का संघर्ष अपनी अस्मिता की पहचान के लिए संघर्षरत नारी को रेखांकित करती है । उसकी महत्वाकांक्षाओं को चांद के रूप में उपन्यासकार ने चित्रित किया है । वर्षा का यह कथन – "मेरा बस चले तो मैं आकाश की दहलीज पर बनी सात रंगों की इन्द्रधनुषी अल्पता बनूँ, आश्रम में शकुंतला की प्रिया 'वन-ज्योत्सना' सखी बनूँ, चन्द्रमा को देखकर खिल जानेवाली कुमुदनी बनूँ ।"[15] यही उसकी महत्वाकांक्षा है । स्वातंत्र्योत्तर भारत में वर्षा को अपनी लक्ष्य या चांद तक प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा से संघर्ष करती दिखाई पडती है । स्वातंत्र्योत्तर भारत में स्त्री स्वतंत्र है, पर बराबरी की स्वतंत्रता को न परिवार और न समाज स्वीकारता है । यही स्त्री की नियति है । वर्षा के द्वारा उपन्यास में इसका संकेत मिलता है ।

6.17 कोहरे में कैद रंग

स्वतंत्र भारत में स्त्री की मानसिकता ज़रा भी स्वतंत्र नहीं दिखाई पड़ती है। गोविन्द मिश्र का उपन्यास 'कोहरे में कैद रंग' इसपर सवाल उठाता है । सरस्वती, सावित्री, रेवा स्वतंत्र भारत के महिलाएँ हैं । लेकिन उन सबकी मानसिकता ज़रा भी स्वतंत्र नहीं दिखाई पडती । ज़्यादा सहने के बाद रेवा और सविता में प्रतिशोध का हल्का स्वर दिखाती है । राजकुंवर, राजाबेटी भी सबकुछ सहकर समाज में दबे रहते हैं । टूटू मौसी के द्वारा स्वतंत्र अस्तित्व का प्रस्ताव रखा है । लेखक की यह अभिलाषा यहाँ व्यक्त हुई है कि टूटू मौसी की तरह औरतें स्वतंत्र, शिक्षित होना है । रेवा का यह कथन – "अगर स्त्री को स्वतंत्रता दे दी जाय - विवाह के पहले और विवाह के बाद भी । स्वतंत्रता कानून भर में नहीं, उस स्वतंत्रता को आदर से देखा जाय ।"[16] स्वातंत्र्योत्तर भारत में अधिकतर लडकियाँ कैद हैं । स्वतंत्रता मिली फिर भी औरतों की बात में ज़मीन आसमान का फर्क है । स्वातंत्र्योत्तर भारत में स्त्री दबे रहते हैं ।

6.18 मुक्तिबोध

स्वातंत्र्योत्तर युग में आत्मनिर्णय लेने की शक्ति व्यक्ति को नष्ट हो चुकी है । जैनेन्द्र कृत 'मुक्तिबोध' से इसका स्पष्ट चित्रण मिलते हैं । मि. सहाय का मंत्रिपद त्यागने का निर्णय परिस्थितियों के दबाव में पडकर बदलता है, यह व्यक्ति मन की नियति है । मि. सहाय की विवशता की स्थिति यहाँ मौजूद है – "देश को आज़ाद होना था, लेकिन सच यह था, अब देखता हूँ, कि मुझे आज़ाद होना था ।"[17] स्वातंत्र्योत्तर भारत में मि. सहाय की निर्णय लेने की क्षमता कमज़ोर दिखाई पडती है ।

निष्कर्ष

राजनीति, समाजनीति, धर्मनीति, अर्थनीति आदि इन उपन्यासों में चित्रित हुई हैं । भले ही ये कृतियाँ साहित्यिक कोटी में आती हैं । वे मात्र साहित्यिक महत्व नहीं रहती हैं । हमारे स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश और समाज में आये सारे परिवर्तनों को ये उपन्यास दर्शाते हैं । इन उपन्यासों में सांप्रदायिक दंगा, विभाजन की त्रासदी, पारिवारिक संघर्ष, सामाजिक संघर्ष, आर्थिक पराधीनता, शहरीकरण, नारी चेतना आदि समस्याएँ हैं । साथ ही राजनीति में चल रही भ्रष्टाचार, गुण्डागर्दी, सत्तालोलुपता, हत्या, माफिया युद्ध आदि का भी सशक्त चित्रण मिलता है । इन सारे उपन्यासकारों ने अपने-अपने उपन्यासों के द्वारा अपनी आशंकाएँ प्रकट किया है । भौतिक दृष्टि से हमारे देश में विकास आये हैं । औद्योगिक (दीवार में एक खिड़की रहती थी), तकनीकी (कलिकथा बाया बाइपास), वैज्ञानिक (कितने पाकिस्तान), आर्थिक (अमृत और विष), राजनैतिक (इन्हीं हथियारों से), शैक्षिक (रागदरबारी), सामाजिक (ढाई घर), नारी उत्थान (मुझे चाँद चाहिए) और सांस्कृतिक (नीलाचाँद) आदि तमाम क्षेत्रों में विकास की अद्भुत गाथाएँ भी हुई । लेकिन इसी युग में स्वातंत्र्योत्तर भारत का क्रूरतम रूप भी देखने मिला । स्वातंत्र्योत्तर काल में सांप्रदायिक, राजनीतिक, शैक्षिक, पारिवारिक, आर्थिक, स्त्री और सांस्कृतिक आदि सभी दृष्टि से मोहभंग की स्थिति आ पहूँची । हम इक्कीसवीं सदी में आगे बढ़ रहे हैं । दूसरी ओर अंधकार युग में वापस खींच रहा है।

संदर्भ ग्रंथ

1. भीष्म साहनी – तमस – पृ. 98

2. कृष्णा सोबती – ज़िन्दगीनामा – पृ. 44

3. कमलेश्वर – कितने पाकिस्तान – पृ. 336

4. भगवतीचरण वर्मा – भूले बिसरे चित्र – पृ. 537

5. श्रीलाल शुक्ल – रागदरबारी – पृ. 319

6. यशपाल – तेरी मेरी उसकी बात – पृ. 568

7. शिवप्रसाद सिंह – नीलाचाँद – पृ. 617

8. मनोहर श्याम जोशी – क्याप – पृ. 58

9. अमरकांत – इन्हीं हथियारों से – पृ. 521

10. अमृतलाल नागर – अमृत और विष – पृ. 370

11. गिरिराज किशोर – ढाई घर – पृ. 390

12. विनोदकुमार शुक्ल – दीवार में एक खिडकी रहती थी – पृ. 149

13. अलका सरावगी – कलिकथा वाया बाइपास – पृ. 192

14. विष्णु प्रभाकर – अर्द्धनारीश्वर – पृ. 357

15. सुरेन्द्र वर्मा – मुझे चाँद चाहिए – पृ. 20

16. गोविन्द मिश्र – कोहरे में कैद रंग – पृ. 157

17. जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध – पृ. 13

उपसंहार

राष्ट्र की स्वतंत्रता प्राप्ती के बाद गठित सरकार ने राष्ट्र विकास की कई नीतियाँ बनायी थीं । देश के भाषावैविद्य और बहुरूपता को ध्यान में रखकर आगे बढ़ने के लिए कई निर्णय लिये गये थे । उनमें एक उल्लेखनीय कदम साहित्य अकादेमी का गठन था । सन् 1954 में गठित साहित्य अकादेमी के नेतृत्व में कई योजनाएँ बनायी गयी थीं । उसमें एक योजना संविधान की अष्ठम अनुसूचि में समविष्ट सारी भाषाओं की एक एक कृति को वर्ष में एक पुरस्कार देने का था । यह पुरस्कार सन् 1955 में लागू हो गया था । सन् 1955 से लेकर 2015 तक की समय सीमा में बीस उपन्यास पुरस्कृत हो गये । शेष पुरस्कार कविता संग्रह को अठाईस, कहानी संग्रह को दो, टीका को एक, दर्शन को एक, इतिहास को एक, भारतीय संस्कृति को एक, काव्यशास्त्र को एक, समालोचना को एक, निबंध संग्रह को एक, व्यंग्य को एक, जीवनी को दो पुरस्कार मिले हैं । नाटक की विधा में अब तक एक भी पुरस्कार नहीं मिला है ।

इस शोध प्रबंध का विषय साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्राप्त उपन्यासों का विशिष्ट अध्ययन है । सन् 1955 से लेकर 2010 तक की अवधि में पुरस्कृत सत्रह उपन्यासों को शोध के लिए चुना है । पुरस्कार प्राप्त उपन्यासकारों में भगवतीचरण वर्मा, जैनेन्द्र, अमृतलाल नागर, श्रीलाल शुक्ल, भीष्म साहनी, यशपाल, कृष्णा सोबती, शिवप्रसाद सिंह, गिरिराज किशोर, विष्णु प्रभाकर, सुरेन्द्र वर्मा, विनोदकुमार शुक्ल, अलका सरावगी, कमलेश्वर, मनोहरश्याम जोशी, अमरकांत और गोविन्द मिश्र आते हैं । एक प्रकार से देखा जाए तो हिन्दी

उपन्यास की विकास यात्रा की एक सही पहचान इन उपन्यासों के माध्यम से हमें मिल जाएगी । पुरस्कृत उपन्यासों की सूचि इस प्रकार है – 'भूले बिसरे चित्र', 'मुक्तिबोध', 'अमृत और विष', 'रागदरबारी', 'तमस', 'मेरी तेरी उसकी बात', 'ज़िन्दगीनामा', 'नीलाचाँद', 'ढाई घर', 'अर्द्धनारीश्वर', 'मुझे चाँद चाहिए', 'दीवार में एक खिड़की रहती थी', 'कलिकथा वाया बाइपास', 'कितने पाकिस्तान', 'क्याप', 'इन्हीं हथियारों से' और 'कोहरे में कैद रंग' । इन उपन्यासों में हम विभिन्न प्रवृत्तियों, समस्याओं और संवेदनाओं का विकास देख सकते हैं । लेखकों की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक निरीक्षणों में वैविद्य देख सकते हैं । देश की वर्तमान स्थिति पर उपन्यासकारों की आशंकाएँ कई उपन्यासों में उभर आयी हैं । लेकिन इन उपन्यासों में कुछ विधाओं का प्रतिनिधित्व नहीं हुआ है । मिथकीय, आदिबिंबात्मक, ऐतिहासिक, आंचलिक, दलित, आदिवासी, जीवनीपरक उपन्यास इनमें नहीं के बराबर हैं । इन रचनाकारों ने मात्र उपन्यासकार नहीं बल्कि कहानी, नाटक, कविता, निबंध, यात्रावृत्त आदि विधाओं में अपनी प्रतिभा की प्रखरता दिखाई है ।

शोध में छह अध्याय हैं । अध्याय की सूची इस प्रकार है –

(1) साहित्य अकादमी पुरस्कृत हिन्दी उपन्यास : एक विवेचन

(2) सांप्रदायिक-राजनीतिक नियति

(3) पारिवारिक-सामाजिक नियति

(4) नारी की नियति

(5) व्यक्ति मन का विश्लेषण

(6) स्वातंत्र्योत्तर भारत की नियति पुरस्कृत उपन्यासों में

और अंत में उपसंहार

इन अध्यायों में विभिन्न उपन्यासों में प्रतिपादित प्रवृत्तियों और समस्याओं को विशेष अध्ययन हुआ है । पूरे उपन्यासों की भावभूमि और विचारभूमि का सार-संक्षेप यहाँ प्रस्तुत है । समान विषय को प्रतिपादित करनेवाले उपन्यासें भले ही रचनाकाल की दृष्टि से अलग अलग है । एक साथ उनपर विचार विमर्श किया है ।

पुरस्कार प्राप्त कई उपन्यासकार स्वाधीनता के पहले ही रचनारत थे । इनके उपन्यासों से स्वतंत्रता पूर्व और स्वाधीन भारत का प्रतिफलन है । भगवतीचरण वर्मा, यशपाल और अमरकांत स्वतंत्रता आन्दोलन से जुड़े हुए उपन्यासकार हैं । इनके उपन्यासों में राष्ट्रीय आन्दोलन का चित्रण हुआ है । भगवतीचरण वर्मा ने 'भूले बिसरे चित्र' (1959) में एक परिवार की चार पीढ़ियों के उत्थान-पतन के माध्यम से स्वतंत्रता आन्दोलन का जिक्र किया है । पहले की तीन पीढ़ियों में शिवलाल, ज्वालाप्रसाद और गंगाप्रसाद अंग्रेज़ों के कृपापात्र बन गये थे । हरेक पीढ़ी की अलग-अलग मान्यताएँ हैं । चौथी पीढ़ी में ही गुलाम भारत की नई जागती हुई चेतना मिलती है । ज्ञानप्रकाश, नवल और विद्या के ज़रिए राजनैतिक आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ । विद्या के नेतृत्व में महिलाओं का एक दल भी सामने आया । उनका यह कथन – "हम लोग स्वराज्य चाहती हैं और ब्रिटीश हुकूमत को जड़ से उखाड देना हमारा धर्म है ।" उपन्यास में सन् 1885 से लेकर 1930 तक के राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन के एक कालखण्ड की प्रस्तुति हुई है ।

यशपाल सशस्त्र क्रांतिकारी के पक्षधर थे । उनके उपन्यास 'मेरी तेरी उसकी बात' (1974) में अमर, उषा, रुद्रदत्त पाठक, नरेन्द्र आदि काल्पनिक पात्रों के ज़रिए स्वतंत्रता आन्दोलन का विस्तृत चित्रण मिलता है । इसका पात्र अमर क्रांतिकारी नेता है । अमर की प्रेरणा से उषा राजनीति में प्रवेश करती है । आगे वह भारत छोड़ो आन्दोलन में सक्रिय भाग

लेती है । युवापीढ़ी को नेतृत्व भी देती है। उषा का यह कथन - "साथियो, आप भी सिर पर कफन बांधकर, कदम पीछे न हटाने के प्रण से आगे बढ़िए ।" यशपाल के इस उपन्यास में राजनीति की भूमिका सक्रिय होती है ।

अमरकांत ने अपने शहर बलिया के प्रसंग में भारत छोड़ो आन्दोलन का रुपायन किया है । बलिया आन्दोलन के वे साक्षी थे । बयालीस की क्रांति में छात्र, छोकर, डाकू, पहलवान, व्यापारी, औरत, वेश्या आदि समाज के हर जनवर्ग ने कर्मठता से आन्दोलन में भाग लिया था। गाँधीजी के विचार और सिद्धांत प्रेरक शक्ति के रुप में उपन्यास में अनस्यूत है । वे पात्र के रुप में नहीं आते हैं । नीलेश, दयाशंकर, रमाशंकर आदि पात्रों के ज़रिए भारत छोड़ो आन्दोलन आगे बढ़ता है । अहिंसा के मार्ग पर आगे बढ़कर आन्दोलनकारी अंग्रेज़ों के खिलाफ संग्राम करते हैं । इस अवसर पर सभी लोग स्वतंत्र, चैतन्य, स्फूर्तिमान और शक्तिशाली भारत का सपना देख रहे थें । औरतें भी इसमें शामिल थीं । नम्रता, वेश्य ढेला, भगजोगिनी आदि स्त्री पात्र भी इसको नेतृत्व देती हैं । बढ़ते जनसंघर्ष को अंग्रेज़ शासन रोक न सका । आखिर देश को आज़ादी देने के लिए अंग्रेज़ मज़बूर हो गये । दयाशंकर का यह कथन - "हम लोग देश को आज़ाद करके अपने यहाँ ऐसा समाज बनाना, जिसमें सभी को बराबर समझना जाए, गरीब-अमीर का भेद मिटे, स्त्रीयों की इज़्जत हो ।" लेकिन यहाँ अमरकांत ने आज़ादी के विद्रोह के कारणों के साथ साथ स्वातंत्र्योत्तर भारत में हुए स्वार्थ का भी जिक्र किया है । अनिरुद्ध दास जैसे नेता के ज़रिए इसका जिक्र करते हैं । इन उपन्यासकारों ने अपने अनुभव क्षेत्रों की बातों को उपन्यास का उपजीव्य बनाया है । आज की दृष्टि से वह ऐतिहासिक हो सकता है । लेकिन लेखकों के लिए वह समकालीन संदर्भ रहा । काल्पनिक पात्रों के ज़रिए इन उपन्यासकारों ने समीपस्थ इतिहास का लेखा जोखा प्रस्तुत किया है ।

देश की अखण्डता और धार्मिक सद्भाव पर ठेस पहूँचानेवाले दंगे-फसादों को कुछ उपन्यासकारों ने विषय बनाया । भीष्म साहनी, कृष्णा सोबती और कमलेश्वर के उपन्यासों में आँखों देखा यथार्थ चित्रित हुआ है । भोक्ता होने का दर्द इनके उपन्यासों में अधिक हैं । भीष्म साहनी स्वतंत्रता के पूर्व अपने प्रदेश पंजाब में छिड़े सांप्रदायिक दंगे का साक्षी था । स्वतंत्रता प्राप्ति के पच्चीस साल बाद मुंबई के भीवंडी इलाके में घूमते वक्त इस सांप्रदायिक दंगे का भयानक दृश्य एक बार फिर उन्होंने देखा । सालों पहले पंजाब में छिडे सांप्रदायिक दंगे का भीषण रुप तब उनके मन में उभर आया । उस दृश्य ने उनके मन को मसोस कर डाला । 'तमस' उस मानसिक द्वन्द्व का परिणाम है । अंग्रेज़ों के 'फूट डालो राज करो' की नीति में पंजाब में सांप्रदायिक दंगा छिड़ा था । नत्थू द्वारा सुअर मारकर मुरादअली ने मस्जिद की सीढियों पर फेंका । यह सांप्रदायिक दंगे का कारण बना । मुहल्ले का भाईचारा नष्ट हो गया । कुछ मुसलमानों ने एक अलग राष्ट्र की मांग की । स्वतंत्रता के अवसर हुए भारत विभाजन से कईयों की ज़िन्दगी बरबाद हो गई । कांग्रेस कार्यकर्ता बख्शी जी का यह कथन - "फसाद करनेवाला भी अंग्रेज़, भूखों मरनेवाला भी अंग्रेज़, रोटी देनेवाला भी अंग्रेज़, घर से बेघर करनेवाला भी अंग्रेज़, घरों में बसनेवाला भी अंग्रेज़ ।" अंग्रेज़ों की कूटनीति ने भारत में सांप्रदायिकता का विष फैलाया था ।

कृष्णा सोबती ने भी अपने शहर पंजाब में हुए सांप्रदायिक दंगे को भोगा था । भारत विभाजन के कारण उन्हें अपनी धरती छोड़नी पड़ी । 'ज़िन्दगीनामा' (1979) इस दिल दहला देने की कहानी है । सन् 1905 में लोर्ड कर्जन के बंग-भंग से पंजाब में छिड़े सांप्रदायिक दंगे का भीषण रुप उपन्यास में है । पहले हिन्दु-मुसलमान और सिक्ख एक दूसरे के सुख दुख में भागीदार थे । अंग्रेज़ों के राज के लिए गाँव के भाईचारा बना । इससे लोर्ड कर्जन ने बंग-

भंग का प्रस्ताव रखा । अंग्रेज़ों के 'फूट डालो राज करो' की नीति से मुहल्ले में संघर्ष बढ़ने लगा । उपन्यास के आरंभ की पंक्तियाँ हैं –

"दूध भी छतियों से
अब दूध नहीं
खून टपकता है ।"

इधर सांप्रदायिक दंगे का भयानक रूप मिलता है । यह सिर्फ पंजाब के प्रसंग में ही नहीं, पूरे भारत के प्रसंग में सही है ।

राष्ट्र की यह नियति आज दुहराती हुई सामने आते हैं । इस नियति को 'कितने पाकिस्तान' (2000) में कमलेश्वर ने भी व्यक्त किया । उपन्यास में लेखक यानि अदीब की कचहरी में बैठाकर दुनिया भर की सभी सभ्यताओं में होनेवाले संघर्ष की समस्याओं को उठाता है । अंग्रेज़ों की कूटनीति की वजह से पाँच हज़ार पुराना भारत देश अपने इतिहास में पहली बार विभाजन का शिकार हुआ । पूरा भारत सांप्रदायिक दंगे की आग में जलने लगा । देश का विभाजन भी हुआ । साथ ही वर्तमान युग की ज्वलंत समस्या को उपन्यास में उकेरा है । बाबरी मस्जिद का ध्वंस, अणुबम बनाने की जहरीली नीति, कश्मीर के नाम पर भारत-पाक संघर्ष आदि वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं का अंकन भी यहाँ हुआ है । अदीबे अपनी संवेदना यहाँ प्रकट करता है – "क्या एक के जीवित रहने के लिए दूसरे की मौत ज़रुरी है ।" कमलेश्वर ने यहाँ सवाल उठाया कि और भी कितने पाकिस्तान को देखना पड़ेगा ? हमने अखण्ड भारत का सपना देखकर लड़ाई लड़ी थी लेकिन खंड़ित भारत ही हमें मिला था । यह एक मानवीय त्रासदी थी जिसमें लाखों लोगों के भावनात्मक, विचारात्मक, मानसिक और आत्मिक स्तरों पर प्रभावित किया ।

अमृतलाल नागर एक स्वतंत्रता सेनानी और स्वातंत्र्योत्तर भारत के लेखक भी

है । नागर जी ने 'अमृत और विष' (1966) में स्वातंत्र्योत्तर भारत के पारिवारिक सामाजिक संघर्ष का चित्रण किया है । अरविंद शंकर के माध्यम से इसका जिक्र मिलता है । स्वतंत्रता सेनानी अरविंद शंकर स्वातंत्र्योत्तर भारत के ख्यातिप्राप्त लेखक हैं । फिर भी वे अपने जीवन की कटु परिस्थितियों से टूटते नज़र आते हैं। अरविंद शंकर सम्मान और आदर देते समय भी अधिक तनावग्रस्त दिखाई पडते हैं । फिर भी उनमें जीने की आस्था है । उनका यह कथन – "इस अंधकार ही में प्रकाश पाने क लिए मुझे जीना है ।" उनके लेखन द्वारा विषम परिस्थितियों में भी दृढ़ता के साथ संघर्ष करने तथा आगे बढ़ने की शक्ति देते हैं ।

गिरिराज किशोर सामंती परिवार से जुडे हुए उपन्यासकार हैं । स्वतंत्रता के पूर्व और बाद की सामंती व्यवस्था से वे परिचित हैं । उन्होंने 'ढाई घर' (1991) में इसका चित्रण बखूबी किया है । अंग्रेज़ों के ज़माने में सामंती परिवार शक्तिशाली थे । बडे राय साब, मंझले राय, छोटे राय और भास्कर राय उस कुलीनता पर गर्व करते थे । अंग्रेज़ों की कृपा से इन लोगों ने ऊँचे पद प्राप्त किये थे । लेकिन नई पीढ़ी का रघुवर उस पुरानी पीढ़ी से विद्रोह करता है । स्वातंत्र्योत्तर भारत में सामंती व्यवस्था का अंत हो चुका है । स्वाधीन भारत में राय परिवार को ज़मीन बेचकर भी कर्ज लेना पड़ा है । बदलते परिवार को स्वीकारना राय परिवारों के लिए मुश्किल है । उनकी मानसिकता ज़रा भी बदली नहीं । रघुवर कहता है – "सामंतवाद का मकडजाल हमें बहुत ढीलेपन से फँसे था अब ज़्यादा कस रहा है । मैं उसे तोड़कर बाहर आना चाहता हूँ । पर अब वह बाहर से अन्दर चला गया । उसे तोड़ता और भी ज़्यादा कठिन हो गया ।" विडंबना है कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में रघुवर के मामा जगनबाबू होम मिनिस्टर बने । स्वतंत्रता के पहले के नेताओं की रीतिनीतियाँ समाप्त नहीं हुई है । वह परवर्तित पीढ़ी में भी अनुस्यूत है ।

श्रीलाल शुक्ल एक आइ.ए.एस अफसर थें । स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक हलचलों से वे समझते हैं । स्वातंत्र्योत्तर काल की राजनीति में भ्रष्टाचार, गुण्डागर्दी, सत्तालोलुपता आदि व्यापक तौर पर देखते हैं । 'रागदरबारी' (1968) में इन सबका आकलन हुआ है । आज कुर्सी की राजनीति है । वैद्य जी आज के सत्तालोलुप नेता का प्रतिनिधि हैं । शिवपालगंज के कॉलेज, कोओपरेटीव यूनियन, पंचायत सभी पर उनका ही दबदबा है । शहर से गाँव में स्वास्थ्य सुधारने के लिए आया रंगनाथ इस दूषित वातावरण से ज़्यादा बेचैन होता है । रंगनाथ को लगा कि – "महाभारत की तरह जो कहीं नहीं है, वह यहाँ है, जो यहाँ नहीं है, वह कहीं नहीं है ।"

शिवप्रसाद सिंह ने काशी के रग रग को जानकर ही उपन्यास लिखा है । काशी भारत की सांस्कृतिक राजधानी है । बनारस की मध्यकालीन संस्कृति को उजागर करते 'नीलाचाँद' (1988) लिखा है । इसमें मध्यकालीन संस्कृति को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दिखाने की कोशिश है । कीरत और कर्ण जैसे मध्यकालीन राजाओं के ज़रिए शिवप्रसाद जी ने धर्म और अधर्म के प्रतीक के रुप को चित्रित किया है । इन राजाओं की तुलना आधुनिक युग में की । कर्ण जैसे अत्याचारी नेता का पतन यहाँ होता है । राजा कीरत जातीयता के भेदभाव को मिटाकर सभी को एक सूत्र में पिरोकर राजसत्ता की मुख्यधारा से जोड़कर चलता है । कर्ण की हार हर अत्याचारी शासक के लिए एक सबक है । कीरत की यही राय है – "राजा का आकर्षण भूमि से नहीं, प्रजा से जुड़ना होता है ।" कीरत जनता से जुड़े हुए नेता है । वे पतन से राष्ट्र को बचाते हैं । समकालीन संदर्भ में लिखा यह उपन्यास विचारोत्तेजक है ।

व्यक्ति मन का गहन अध्ययन स्वातंत्र्योत्तर भारत में ज़्यादा मिलता है । जैनेन्द्र के 'मुक्तिबोध' (1967) में व्यक्ति मन की नियति का अंकन हुआ है । 'मुक्तिबोध' के पात्र

मि.सहाय के ज़रिए उन्होंने इसका आकलन किया है । परिस्थितियों के दबाव में मि.सहाय के अनिर्णय की स्थिति निर्णय में बदलता है । मि. सहाय का यह कथन – "मैं जानना चहता हूँ कि मुक्ति का वह बोध क्या है । वह पारिस्थितिक है या नहीं, आत्मिक है या ...." स्वातंत्र्योत्तर भारत में व्यक्ति में निर्णय लेने की शक्ति नष्ट हो चुकी है ।

स्वतंत्रता के बाद कई उपन्यासकार रचनारत हुए हैं । विनोदकुमार शुक्ल, सुरेन्द्र वर्मा, अलका सरावगी, मनोहरश्याम जोशी और गोविन्द मिश्र इसमें शामिल हैं । उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर अपने उपन्यासों में स्वातंत्र्योत्तर भारत की नियति का चित्रण किया है। व्यक्ति, समाज, देश इनके उपन्यासों में प्रतिफलित हुए हैं ।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में आर्थिक खुशहाली के नाम पर बेरोज़गारी, गरीबी तथा महंगाई निरंतर बढ़ती गईं । शहरीकरण की तीव्र प्रक्रिया ने भारतीय संस्कृति पर गहरा प्रभाव डाला । विनोदकुमार शुक्ल का उपन्यास 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' (1997) में कस्बाई ज़िन्दगी से गुज़रते रघुवरप्रसाद का आर्थिक संघर्ष है । नौकरी के लिए गाँव से कस्बे की ओर चलते रघुवरप्रसाद संघर्ष से जूझता है । उसको पिता और छोटे भाई का इलाज ठीक से न कर पाती । अच्छे आवास की व्यवस्था, अच्छे कपड़े को इस्तेमाल करना आदि तक उसे पूरा नहीं कर पाता । रघुवरप्रसाद कस्बे के महाविद्यालय में प्राद्यापक के रूप में काम करता है । आठ सौ रुपये तनख्वाह मिलती है । रघुवरप्रसाद के मन में हुई यह आशा का प्रत्यक्ष चित्रण उपन्यासकार व्यक्त करते हैं – "उसका वेतन अच्छा होता तो वह बताता कि एक पुत्र अपनी पिता की किस तरह परवाह करता है ।" यहाँ उसके मन की आशाएँ, आकांक्षाएँ अर्थाभाव में पूरी नहीं हो सकतीं ।

स्वतंत्रतापूर्व और स्वातंत्र्योत्तर भारत का रूपायन 'कलिकथा वाया बाइपास'

(1988) में मिलता है । कलकत्ता में रहकर अलका सरवगी कलकत्ता शहर का सामाजिक ज़िन्दगी का ताना बाना बुनती है । मारवाड़ी समाज उपन्यास के केन्द्र में है । साथ ही बंगाली समाज भी शामिल है । किशोर बाबु मारवाड़ी परिवार का प्रतिनिधि है । उनके परिवार के माध्यम से स्वतंत्रता आन्दोलन में न भाग लेते समाज का जिक्र मिलता है । वे सिर्फ व्यापार करने पर सोचते हैं । लेकिन किशोरबाबू के ज़िन्दगी के अंतिम दौर में सामाजिक समस्याओं के प्रति रोष प्रकट करता है । वह महसूस करता है – "सब जगह मैल ही मैल जम गया है । जहाँ हाथ रखे वहीं गंदगी चिपक जाती ।"

मनोहरश्याम जोशी ने 'क्याप' (2001) द्वारा यह बताये कि स्वतंत्रता 'क्याप' हुई । पहाड़ी भाषा में क्याप का मतलब 'अर्थहीन' है । इसमें ब्रिटीश भारत और समकालीन भारत की स्थितियों को आमने-सामने रखकर राजनीति की घृणित विडंबनाओं की जांच पडताल अंग्रेज़ हैरिसन द्वारा भोगविलास से फसिकयाधार के जनता की मति भ्रष्ट की । स्वातंत्र्योत्तर भारत में उर्बदत्त, भवानीदत्त ज्यू, मेतातिथि जोशी, हरकू, रामध्यनु आदि स्वार्थी नेताओं का दबदबा मिलता है । हत्या, भ्रष्ट राजनीति, जातीयता, लूट-मार, माफिया युद्ध, ऊँच-नीच भेद आदि को इन नेताओं ने प्रोत्साहित किया । कथानायक 'मैं' की यही आशंका है – "कांग्रेस ने अपने मूल सिद्धांत की बलि देकर जो स्वाधीनता प्राप्त की है वह क्याप है ।" स्वातंत्र्योत्तर भारत की प्रदूषित राजनीति को देखकर जोशी जी सोचते हैं कि स्वतंत्रता क्याप हुई ।

नारी सदियों से शोषण का शिकार होती जा रही है । स्वतंत्रता पूर्व भारत में स्त्री घर के चार दीवारों में कैद है । आज स्त्री अपने अस्मिता की तलाश में है । वह पहले से ज़्यादा स्वतंत्र है। आज स्त्री लेखन ज़्यादा मिलता है । हिन्दी के उपन्यासकारों ने नारी चेतना का सवाल उठाया । 'मुझे चाँद चाहिए', 'अर्द्धनारीश्वर' और 'कोहरे में कैद रंग' उपन्यासों का

प्रमुख मुद्दा नारी चेतना है ।

सुरेन्द्र वर्मा ने 'मुझे चाँद चाहिए' (1993) में वर्षा वशिष्ट के ज़रिए नारी की बेरोक महत्वाकांक्षा का चित्रण किया है । आत्मान्वेषण की सुदीर्घ यात्रा की शुरुआत में सबसे पहले उसने अपना नाम बदला । यशोदा शर्मा उर्फ वर्षा वशिष्ट अपने परिवारों के सनातन विचारों से संघर्ष करती है । नाटक से वर्षा वशिष्ट अभिनय शुरु होती है । वह कला के क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट अभिनेत्री का पुरस्कार भी पाती है । अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए वह किसी भी कठिन परिस्थिति का मुकाबला करने को तत्पर है । उसका यह कथन – "मेरा बस चले तो मैं आकाश की दहलीज पर बनी सात रंगों की इन्द्रधनुषी अल्पना बनूँ, आश्रम में शकुंतला की प्रिय वन-ज्योत्सना सखी बनूँ, चन्द्रमा को देखकर खिला जानेवाली कुमुदनी बनूँ ।" यही उसकी महत्वाकांक्षा है । स्वातंत्र्योत्तर भारत में वर्षा वशिष्ट स्वतंत्र अस्तित्व रखने में संघर्ष करती है ।

विष्णु प्रभाकर ने 'अर्द्धनारीश्वर (1992) में बलात्कार की समस्या और उत्पीडित नारी का चित्रण किया है । स्त्री नियति के इस समस्या का सवाल उपन्यास में सुमिता के द्वारा उठाते हैं । सुमिता बलात्कार की शिकार बनी है । वह समाज में प्रताड़ित नारियों को भी समेटती है । बलात्कार से नारी की कोई गलती नहीं बल्कि इससे उसको समाज में उपेक्षिता का रोल भोगना पडा । उपन्यास में सुमिता, पंपी, शालिनी, राजकली, मार्था, वासंती, किरण आदि बलात्कार से पीडित नारियाँ हैं । स्वतंत्र भारत में स्त्री पर हुए अत्याचार बढ़ रही है । विभा भी स्त्री मुक्ति आन्दोलन के समर्थक है । उसका यह कथन - "जब तक नारी पुरुष के बल के आकर्षण से मुक्त नहीं होती तब तक वह स्वतंत्र नहीं हो सकती ।" बराबरी का यह संघर्ष कब खतम होगा ? आज भी स्त्री बराबरी न मिलने की पीडा सहती रहती है ।

गोविन्द मिश्र का 'कोहरे में कैद रंग' में स्त्री मुक्ति का सवाल है । राजकुंवर, राजाबेटी, सविता, रेवा, सावित्री, सरस्वती पुरुष द्वारा प्रताड़ित महिलाएँ हैं । राजकुंवर, सविता आदि नारियाँ प्रताड़न मूक से सहती हैं । राजाबेटी की करुण उद्‌गार में नारी मात्र की व्यथा का चित्रण मिलता है – "क्या करें, हे भगवान, बता दे कोई कौन से कर्म करने से औरत का जन्म न मिले ।" थोड़ा विद्रोह का स्वर सावित्री और रेवा में है । टूटू मौसी स्वतंत्र अस्तित्व रखती है । इन पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने स्त्री की नियति का पर्दाफाश किया है । मिश्र जी ने यहाँ सवाल उठाया कि क्यों नारी टूटू मौसी की तरह स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रखती ? इन उपन्यासों में अभिशप्त जीवन जीती नारियों को देखते हैं । वास्तव में दुनिया के हर समाज में नारी के लिए एक नरक रचा गया है। नारी की इस नियति को इन उपन्यासों के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति मिली है । लेखकों के उपन्यास में ही स्त्री की स्वतंत्रता के विविध रूप यहाँ मिलते हैं ।

इस प्रकार इन सत्रह उपन्यासों में स्वातंत्र्योत्तर भारत की नियति का सशक्त चित्रण मिलता है । इन उपन्यासकारों ने सांप्रदायिक दंगा, विभाजन की त्रासदी, पारिवारिक संघर्ष, सामाजिक संघर्ष, आर्थिक पराधीनता, शहरीकरण, नारी चेतना आदि पर विशेष ध्यान रखते उपन्यासों की रचना की । साथ ही साथ राजनीति में चल रहे भ्रष्टाचार, गुण्डागर्दी, सत्तालोलुपता, हत्या, माफिया युद्ध आदि का भी सशक्त चित्रण मिलता है । इन सारे उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के द्वारा अपनी आशंकाएँ प्रकट की है ।

केवल गंदगी का चित्रण करना इन उपन्यासकारों का मक़सद नहीं है । उपन्यास में गुणात्मक परिवर्तन लाने की कामना उनकी मन में है । ये इन सभी उपन्यासों में प्रकट करते हैं । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे राष्ट्र में हुई कई उपलब्धियों पर उपन्यासकारों ने प्रकाश डाला

है । जनतंत्र का विकास, शिक्षा क्षेत्र में हुई प्रगति, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास, समाज में स्त्री को प्राप्त हक, आर्थिक प्रगति, सांस्कृतिक उन्नति आदि शामिल हैं ।

'भूले बिसरे चित्र', 'मेरी तेरी उसकी बात', 'रागदरबारी', 'ढाई घर', 'कलिकथा वाया बाइपास', 'क्याप', 'इन्हीं हथियारों से' आदि उपन्यासों में राजनीति में आए उत्कर्ष की ओर बल देता है । 'मेरी तेरी उसकी बात' में उषा कहती है कि – "निरर्थक मान्यताओं और संस्कारों को स्वीकार नहीं कर रही हूँ ।" 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास का शीर्षक कुछ भ्रामक रहेगा । लेकिन यहाँ अमरकांत ने सत्य और अहिंसा को हथियार बनाने का आह्वान दिया है । उपन्यास का पात्र सदाशयव्रत का कथन है – "हम गाँधीजी के सिद्धांतों को मानते हैं, इसलिए हर चीज़ शांति से सुलझाना चाहता है ।"

धार्मिक कट्टरता के घोर विद्वेष के समय में भी इन उपन्यासों में कुछ भले मानस के लोग को भी देखते हैं । 'तमस' का पात्र हरनामसिंह ने राजो से कहा यह वाक्य - "तुमने हमपर बडा एहसान किया है राजो बहन, हम इसे कभी नहीं भूल सकते ।" राजो नामक मुसलमान स्त्री ने हरनामसिंह और बंतो को पनाह दिया है । ' कितने पाकिस्तान' का केन्द्रीय पात्र है अदीबे अलिया । पूरे उपन्यास वह सत्य की खोज करता है । कमलेश्वर 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास के अंत में अंधा कबीर द्वारा पोखरान और चगाई में बोधिवृक्ष लगाना चाहता है । यहाँ कबीर ऐलान करता है – "पहला बोधिवृक्ष मैं पोखरान में लगाऊँगा, फिर सरहद पार करके दूसरे वृक्ष में चगाई की पहाडियों में लगाऊँगा ।"

शिक्षा दर्शन कई उपन्यासों में उभर आया है । 'भूले बिसरे चित्र, 'रागदरबारी, 'मेरी तेरी उसकी बात', 'अर्द्धनारीश्वर', 'मुझे चाँद चाहिए', 'दीवार में एक खिड़की रहती थी', 'इन्हीं हथियारों से', 'कोहरे में कैद रंग' आदि इस श्रेणी में आते हैं । 'कोहरे में कैद रंग' में टूटू

मौसी स्त्री शिक्षा के महत्व पर बल देकर कहती है कि – “लड़कियों की शिक्षा उनमें बदलाव तो ला रही है ।” ‘ढाई घर’ में सामंतवादी नेता बडे राय साहब को पढाई के महत्व का पता था । उस ज़माने भी उन्होंने दसवीं कक्षा तक अंग्रेज़ी, फारसी और उर्दू पढ़ी थी । तकनीकी-वैज्ञानिक प्रगति का चित्रण ‘कलिकथा बाया बाइपास’, ‘कितने पाकिस्तान’ आदि उपन्यासों में मिलता है । औद्योगीकरण की प्रवृत्ति ‘अमृत और विष’, ‘दीवार में एक खिड़की रहती थी’ आदि में प्रतिपादित हुई है ।

संयुक्त परिवार का महत्व ‘भूले बिसरे चित्र’, ‘अमृत और विष’, ‘ढाई घर’ आदि उपन्यासों में मिलता है । ‘भूले बिसरे चित्र’ के पात्र मुंशी शिवलाल संयुक्त परिवार पर विश्वास रखते हैं । परिवार कभी न बिगड़े, संबंध हमेशा मज़बूत रहे, इस बात पर वे विशेष ध्यान रखते हैं । शिवलाल का यह कथन – “अरी छोड़ दी, बहू कोई पराई थोडे ही है । घर की मालकिन हो जैसा ठीक समझती है, वैसा करती ।” वे राधेलाल की पत्नी को घर का मालकिन स्वीकारते हैं ।

नारी उत्थान का ज्वलंत चित्रण ‘अर्द्धनारीश्वर’, ‘मुझे चाँद चाहिए’, ‘कोहरे में कैद रंग’ आदि उपन्यासों में हुआ है । सुमिता कहती है – “मैं वही हूँ । वही रहूँगी जो शंकर के अर्द्धनारीश्वर के रूप में कल्पित की गयी है ।” सुमिता, विभा, वर्षा वशिष्ट, टूटू मौसी आदि पात्रों के ज़रिए नारी के स्वतंत्र अस्तित्व का जिक्र मिलता है ।

समय फलक की दृष्टि से काफी विस्तार इन उपन्यासों में हम देख सकते हैं । इसमें उन्नीसवीं सदी के अंत के समय से लेकर इक्कीसवीं सदी के आरंभ तक का फलक चित्रण है । ‘कितने पाकिस्तान’ में सोलहवीं सदी से लेकर सन् 1999 के कारगिल प्रकरण तक का

चित्रण है । 'भूले बिसरे चित्र' में सन् 1885 से लेकर 1930 तक की समय सीमा है । बीसवीं सदी के आरंभ में जो बंग-भंग हुआ था, उसी को एक कडी के रूप में स्वीकार करके कृष्णा सोबती ने 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास शुरू कर दिया है । इस दृष्टि से इन उपन्यासों में समाजशास्त्र, शिक्षादर्शन, जनतंत्र का विकास, आर्थिक उत्थान-पतन, औद्योगीकरण, तकनीकी-वैज्ञानिक गतिविधियाँ, नारी की मुक्तिचेतना आदि आते हैं । इन सभी विषयों पर इन उपन्यासकारों ने अपने विचार विमर्श अपने पात्रों के माध्यम से किया करवाया है । हरेक उपन्यास में एक साथ एकाधिक विषयों को समेट लिया है । इस दृष्टि से देखे तो भारत का अतीत इसमें है, वर्तमान है और भविष्योन्मुखी दृष्टि है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ

1. **भूले बिसरे चित्र** : **भगवतीचरण वर्मा**
राजकमल प्रकाशन,
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
प्रथम प्रकाशन - 1959

2. **मुक्तिबोध** : **जैनेन्द्र कुमार**
भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया
लोदी रोड, नई दिल्ली - 110 003
प्रथम ज्ञानपीठ संस्करण - 2015

3. **अमृत और विष** : **अमृतलाल नागर**
लोकभारती प्रकाशन,
पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग
महात्मागांधी मार्ग, इलाहाबाद - 211 001
तीसरा पेपरबैक्स संस्करण - 2012

4. **रागदरबारी** : **श्रीलाल शुक्ल**
राजकमल प्रकाशन,
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
चौदहवाँ पेपरबैक्स संस्करण - 2009

5. **तमस** : **भीष्म साहनी**
राजकमल प्रकाशन,
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
सातवाँ संस्करण - 1992

6. **मेरी तेरी उसकी बात**	:	**यशपाल** लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग महात्मागांधी मार्ग, इलाहाबाद - 211 001 दूसरा पेपरबैक्स संस्करण - 2012
7. **ज़िन्दगीनामा**	:	**कृष्णा सोबती** राजकमल प्रकाशन, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002 पहला पेपरबैक्स संस्करण - 2004
8. **नीलाचाँद**	:	**शिवप्रसाद सिंह** वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002 पहला संस्करण - 1988
9. **ढाई घर**	:	**गिरिराज किशोर** राजपाल एण्ड सन्ज़ कश्मीरी गेट, दिल्ली - 110 006 प्रथम संस्करण - 2011
10. **अर्द्धनारीश्वर**	:	**विष्णु प्रभाकर** शब्दकार प्रकाशन, 159, गुरु अंगद नगर (वैस्ट) दिल्ली - 110 092 संस्करण - 2002
11. **मुझे चाँद चाहिए**	:	**सुरेन्द्र वर्मा** राधाकृष्ण प्रकाशन, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली पहला संस्करण - 1993

12. दीवार में एक खिडकी रहती थी : **विनोदकुमार शुक्ल**
वाणी प्रकाशन,
21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
द्वितीय संस्करण - 2004

13. कलिकथा : बाया बइपास : **अलका सरावगी**
आधार प्रकाशन प्र.ली.
एस.सी.एफ. 267, सेक्टर - 16
पंचकूला - 134 113 (हरियाणा)
पाँचवां संस्करण संस्करण - 2011

14. कितने पाकिस्तान : **कमलेश्वर**
राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट, दिल्ली - 110 006
सत्रहवाँ संस्करण - 2013

15. क्याप : **मनोहर श्याम जोशी**
वाणी प्रकाशन,
21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
संस्करण - 2008

16. इन्हीं हथियारों से : **अमरकांत**
राजकमल प्रकाशन,
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
पहला संस्करण - 2003

17. कोहरे में कैद रंग : **गोविन्द मिश्र**
भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया
लोदी रोड, नई दिल्ली - 110 003
पहला संस्करण - 2004

सहायक ग्रंथ

1. डॉ. सी.एस. अजिकुमार : **जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन**
अमन प्रकाशन

2. डॉ. अनुकूलचंद राय : **शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास कथ्य और शिल्प**
संजय बुक सेण्टर, गोलघर, वाराणसी
प्रथम संस्करण - 2009

3. ए.पी.जे. अब्दुलकलाम : **इक्कीसवीं सदी का भारत - नवनिर्माण की रूपरेखा**
राजपाल एण्ड सन्ज़
प्रथम संस्करण - 1999

4. अमृतलाल नागर : **टुकडे टुकडे दास्तान**
राजपाल एण्ड सन्ज़ संस्करण - 1986

5. डॉ. ए. अरविंदाक्षन : **उपन्यास शिल्पी गिरिराज किशोर**
वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
प्रथम संस्करण - 2000

6. डॉ. अरुण लेखण्डे : **समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में जनचेतना**
विकास प्रकाशन, कानपुर
प्रथम संस्करण - 1996

7. डॉ. अश्विनीकुमार पाण्डेय : **शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास कथ्य और शिल्प**
अभय प्रकाशन, 6A/540, आवास विकास
हंसपुरम्, कानपुर - 21
प्रथम संस्करण - 2009

8. **डॉ. अशोक पवार 'इनका' :** **गिरिराज किशोर साहित्य और चिंतन**
चन्द्रलोक प्रकाशन,
शिवराम कृपा, मयूर पार्क, कानपुर
प्रथम संस्करण - 2009

9. **आशारानी ब्होरा :** **स्त्री सरोकार**
आर्य प्रकाशन मंडलट गांधीनगर, दिल्ली - 110031

10. **आनंद :** **मैं और मेरा परिवेश**
यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल,
दरबारी बिल्डिंग, महात्मागांधी मार्ग, इलाहाबाद - 1
प्रथम संस्करण - 2014

11. **आनंद :** **यथार्थवाद और उसकी समस्याएँ**
यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल,
दरबारी बिल्डिंग, महात्मागांधी मार्ग, इलाहाबाद - 1
प्रथम संस्करण - 2015

12. **इन्द्रनाथ मदान :** **हिन्दी उपन्यास : एक नई दृष्टि**
राजकमल प्रकाशन संस्करण - 1975

13. **इन्द्रनाथ मदान :** **आधुनिकता और हिन्दी उपन्यास**
राजकमल प्रकाशन संस्करण - 2011

14. **उमा शुक्ल :** **भारतीय नारी अस्मिता की पहचान**
लोकभारती प्रकाशन
24-ए, महात्मागांधी मार्ग, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1994

15. **डॉ. ऊर्मिला शिरीष :** **सृजन यात्रा : गोविन्द मिश्र**
मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
हिन्दी भवन, श्यामल हिल्स, भोपाल - 462 002
प्रथम संस्करण - 2000

16. **अंजु दुबे** : **भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक मूल्यांकन**
राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली - 110 002

17. **कमलेश्वर** : **मेरे साक्षात्कार**
किताबघर, 24, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली - 110 002
प्रथम संस्करण - 1996

18. **कमलेश्वर** : **जो मैंने जिया**
राजपाल एण्ड सन्ज़,कश्मीरी गेट,दिल्ली - 110 006
संस्करण - 2008

19. **कमलेश्वर** : **जलती हुई नदी**
राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली- 110006
संस्करण - 2008

20. **डॉ. करुण उमरे** : **भगवतीचरण वर्मा के साहित्य में चित्रित प्रवृत्तियाँ**
साहित्य रत्नालय प्रकाशक
37/50, गिलिस बाज़ार, कानपुर
संस्करण - 2010

21. **डॉ. कुसुम कक्कड** : **जैनेन्द्र का जीवन दर्शन**
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण - 1975

22. **डॉ. कुसुम राय** : **स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की सामाजिक चिंता**
अमन प्रकाशन प्रथम संस्करण - 2011

23. **कुसुम लता मलिक** : **गप्प का गुलमोहर मनोहरश्याम जोशी**
स्वराज प्रकाशन
4648/1, 21, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 2012

24. **प्रो. कुंवरपाल सिंह** : **हिन्दी उपन्यास : जनवादी परंपरा**
नवचेतन प्रकाशन, जी-5, गली नं. 16, राजापुरी,
उत्तम नगर, दिल्ली - 110 059
संस्करण - 2004

25. **प्रो. कुंवरपाल सिंह** : **यशपाल : पुनर्मूल्यांकन**
नवचेतन प्रकाशन, शिल्पायन, 10295, लेन नं. 1
वेस्ट गोरखपार्क, शहदरा, दिल्ली
संस्करण - 2008

26. **कृष्णा सोबती** : **सोबती एक सोहबत**
राजकमल प्रकाशन
संस्करण - 1989

27. **डॉ. कृष्ना पटेल** : **कथाकार भीष्म साहनी**
चिंतन प्रकाशन,
हिन्दी भवन, श्यामल हिल्स भोपाल - 462 002
प्रथम संस्करण - 2000

28. **डॉ. गणेश दास** : **स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में नारी के विविध रूप**
अक्षय प्रकाशन, अन्हाखंडा, भाऊपुर
संस्करण - 1992

29. **डॉ. गिरिधर प्रसाद शर्मा**: **हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन**
इन्द्रप्रस्थ इंटरनेशनल
के-71, कृष्णनगर, दिल्ली - 110 051
संस्करण - 1995

30. **गोपाल राय** : **हिन्दी उपन्यास का इतिहास**
राजकमल प्रकाशन, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
प्रथम संस्करण - 2002

31. **डॉ. गोपालकृष्ण शर्मा :** **यशपाल का उपन्यास साहित्य**
ज्योतिलोक प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण - 2010

32. **गोविन्द मिश्र :** **साहित्यकार होना .....**
सस्ता साहित्य मंडल,
एम-77, पहली मंजिल
कनॉट सर्कस, नई दिल्ली - 110 001
प्रथम संस्करण - 2014

33. **चन्द्रकांत बांदिवडेकर (सं):** **गोविन्द मिश्र सृजन के आयाम**
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
प्रथम संस्करण - 1990

34. **चन्द्रकांत बांदिवेडकर :** **गोविन्द मिश्र का औपन्यासिक संसार**
भूमिका प्रकाशन, जी-17,जगतपुरी,दिल्ली -110 051
प्रथम संस्करण - 2000

35. **जवरीमलल पारख :** **साझा संस्कृति, सांप्रदायिक आतंकवाद और हिन्दी सिनेमा**
वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
प्रथम संस्करण - 2012

36. **डॉ. जिजाबराव पाटील :** **सुरेन्द्रवर्मा व्यक्ति और अभिव्यक्ति**
विद्या प्रकाशन, सी-449, गुजैनी, कानपुर - 208 022
प्रथम संस्करण - 2011

37. **डॉ. टेस्सी जॉर्ज :** **स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में मूल्य परिवर्तन**
जवाहर पुस्तकालय
सदर बाज़ार, मथुरा (उ.प्र) - 281 001
संस्करण - 2006

38. डॉ. डी.डी. तिवारी : हिन्दी उपन्यास स्वातंत्र्य संघर्ष के विविध आयाम
तक्षशिला प्रकाशन,
23/4762, अंसारी रोडट दरियागंज, नई दिल्ली
संस्करण - 1985

39. डॉ. दिलीप मेहरा : हिन्दी उपन्यास : नये आयाम
ज्ञान प्रकाशन
128/90, जी ब्लाक किदवई नगर, कानपुर - 208011
प्रथम संस्करण - 2010

40. डॉ. देवराज उपाध्याय : जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन
शोध प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण - 1968

41. डॉ. दुर्गेश नंदिनी प्रसाद: स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में पुरुष पात्र
गीता प्रकाशन, हिन्दी बुक सेंटर,
हैदराबाद- 500027

42. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी भाषा का इतिहास
हिन्दुस्तानी अकादमी, प्रयागा
संस्करण - 1973

43. डॉ. पी.एम. थॉमस : भारतीय मध्यवर्ग और सामाजिक उपन्यास
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
प्रथम संस्करण - 1995

44. बी.आर. नन्दा : महात्मा गांधी एक जीवनी
सस्ता साहित्य मण्डल
एन-77, पहली मंजिल, कमॉट सर्कस, नई दिल्ली
संस्करण - 2013

45. नरेंद्र कोहली : हिन्दी उपन्यास सृजन और सिद्धांत
वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002

46. **डॉ. नरेन्द्र मोहन** : **आधुनिक हिन्दी उपन्यास**
दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड
दिल्ली - 110 006 प्रथम संस्करण - 1975

47. **नवल किशोर** : **आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता**
प्रकाशन संस्थान, 450/1212, पश्चिमपुरी, नई दिल्ली

48. **नामवर सिंह** : **श्रीलाल शुक्ल जीवन ही जीवन**
श्रीलाल शुक्ल अमृत महोत्सव समिति
24 हौज खास, नई दिल्ली

49. **नामवर सिंह** : **आधुनिक हिन्दी उपन्यास - २**
राजकमल प्रकाशन प्रथम संस्करण - 2010

50. **डॉ. नीरजा राजकुमार** : **समाज मनोविज्ञान के संदर्भ में जैनेन्द्र का कथा साहित्य**
सूर्य प्रकाशन, नई सडक, दिल्ली

51. **नीलम मैगज़ीन गर्ग** : **साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में नारी**
सार्थक प्रकाशन,
100 ए गौतम नगर, नई दिल्ली - 110 049
प्रथम संस्करण - 1999

52. **नेमिचन्द्र जैन** : **अधूरे साक्षात्कार**
वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
प्रथम संस्करण - 1996

53. **परमानंद श्रीवास्तव** : **उपन्यास का पुनर्जन्म**
वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
प्रथम संस्करण - 1995

54. **पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु:** **शिवप्रसाद सिंह स्रष्टा और सृष्टि**
वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
संस्करण - 1995

55. **डॉ. पारुकांत देसाई :** **हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास**
चिंतन प्रकाशन, 3-ए/119, आवास विकास
हंसपुरम, कानपुर
प्रथम संस्करण - 2002

56. **प्रकाशचन्द्र मिश्र :** **अमृतलाल नागर के उपन्यास साहित्य**
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली

57. **डॉ. प्रतापनारायण टंडन:** **हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास**
कल्पकार प्रकाशन, लखनऊ
संस्करण - 1974

58. **डॉ. प्रमीला अग्रवाल :** **भारत विभाजन और हिन्दी कथा साहित्य**
जयभारती प्रकाशन
447, पीली कोठी, नई बस्ती, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1992

59. **डॉ. प्रमीला विजय त्रिपाठी:** **गोविन्द मिश्र और उनकी साहित्य साधना**
जयभारती प्रकाशन
267/B मुट्ठीगंज, माया प्रेस रोड, इलाहाबाद - 3
प्रथम संस्करण - 2004

60. **प्रेम जनमेजय :** **श्रीलाल शुक्ल - विचार विश्लेषण एवं जीवन**
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
जयपुर एवं दिल्ली
प्रथम संस्करण - 2011

61. **डॉ. प्रेम भटनागर** : **हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य**
अर्चना प्रकाशन, 20-सी, जालूपुरा, जयपुर
प्रथम संस्करण - 1968

62. **डॉ. बलीराम धापसे** : **यशपाल का कथेतर साहित्य**
अभय प्रकाशन
6A/540,आवास विकास, हंसपुरम,कानपुर -208021
प्रथम संस्करण - 2007

63. **डॉ. ब्रिजिट पॉल** : **कृष्णा सोबती : व्यक्ति एवं साहित्य**
कुंजबिहारी पचौरी, जवाहर पुस्तकालय
सदर बाजार, मथुरा
संस्करण - 2005

64. **डॉ. भानुभाई रोहित** : **सुरेन्द्र वर्मा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व**
चिंतन प्रकाशन
हंसपुरम, कानपुर - 208 021
प्रथम संस्करण - 2009

65. **भीष्म साहनी** : **आज के अतीत**
राजकमल प्रकाशन
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली - 110 002
प्रथम संस्करण - 2003

66. **भीष्म साहनी** : **अपनी बात**
वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
प्रथम संस्करण - 1990

67. **भीष्म साहनी** : **मेरे साक्षात्कार**
किताबघर
24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
प्रथम संस्करण - 1996

68. **डॉ. भूलिका त्रिवेदी** : **यशपाल व्यक्तित्व एवं कृतित्व**
चिंतन प्रकाशन, नौबस्ता, कानपुर
संस्करण - 1997

69. **डॉ. भोलानाथ तिवारी** : **हिन्दी भाषा का इतिहास**
वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
चौथा संस्करण - 1984

70. **डॉ. मक्खनलाल शर्मा** : **हिन्दी उपन्यास : सिद्धांत और समीक्षा**
प्रभात प्रकाशन, 205, चावडी बाजार, दिल्ली - 6
प्रथम संस्करण - 1970

71. **मधुरिमा कोहली** : **जैनेन्द्र कुमार - चिंतन और सृजन**
पराग प्रकाशन, दिल्ली - 32

72. **मधुरेश** : **क्रांतिकारी यशपाल - एक समर्पित व्यक्तित्व**
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

73. **मधुरेश** : **हिन्दी उपन्यास का इतिहास**
सुमिता प्रकाशन, यू.एफ. 42 अलोपशंकरी अपार्टमेंट
107/177,अलोपीबाग, इलाहाबाद
षष्ठ संस्करण - 2011

74. **मनोहरश्याम जोशी** : **लखनऊ मेरा लखनऊ**
वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
प्रथम संस्करण - 2002

75. **डॉ. मफतलाल पटेल** : **हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास**
शांति प्रकाशन, न्यू हाउसिंग बोर्ड,
सेक्टर, बाईपास, रोजतक (हरियाणा)
प्रथम संस्करण - 1997

76. डॉ. महीप सिंह : **विष्णु प्रभाकर - व्यक्ति और साहित्य**
अभिव्यंजना, नई दिल्ली प्रथम संस्करण - 1983

77. डॉ. टी. मीनाकुमारी : **शिवप्रसाद सिंह के कथा साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन**
अन्नपूर्णा प्रकाशन
127/1100, डब्ल्यू कन, साकेत नगर, कानपुर
प्रथम संस्करण - 2007

78. डॉ. मुरलीधर नायक : **अमृतलाल नागर जीवन और साहित्य**
जवहर पुस्तकालय, मथुरा संस्करण - 2003

79. डॉ. मोहिनी शर्मा : **हिन्दी उपन्यास और जीवन-मूल्य**
साहित्यागार, एस.एम.एस. हाइवे, जयपुर - 302 003

80. डॉ. मंजुला गुप्ता : **हिन्दी उपन्यास : समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व**
सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली - 6
प्रथम संस्करण - 1986

81. डॉ. मंजुलता सिंह : **हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग**
आर्य बुक डिपो
30, नाईवाला, करौल बाग, नई दिल्ली - 5
प्रथम संस्करण - 1972

82. डॉ. यश गुलाटी : **प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास (भाग-एक)**
हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़
प्रथम संस्करण - 1989

83. यशपाल : **सिंहावलोकन (भाग-चार)**

84. डॉ. युगेश्वर : **भारत का समाजवादी आन्दोलन**
यश पब्लिकेशन्स
413/414 श्रेयास कॉलोनी, गोरे गाँव ईस्ट, मुंबई
प्रथम संस्करण - 2004

85. **डॉ. योगेश तिवारी** : **विनोदकुमार शुक्ल-खिडकी के अन्दर और बाहर**
राधाकृष्ण प्रकाशन

86. **डॉ. योगेश तिवारी** : **यशपाल के उपन्यासों में नारी जीवन की समस्याएँ**
चन्द्रलोक प्रकाशन
128/106, जी ब्लाक, किदवई नगर, कानपुर
प्रथम संस्करण - 1994

87. **डॉ. राजेन्द्र खैरनार** : **शिवप्रसाद सिंह का उपन्यास साहित्य**
जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 2007

88. **डॉ. के.जी. राजेन्द्र प्रसाद**: **उपन्यासकार अमृतलाल नागर**
गोविन्द पचौरी
जवाहर पुस्तकालय, सदर बाज़ार, मथुरा
संस्करण - 2009

89. **राजेश्वर सक्सेना / प्रताप ठाकुर** : **भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना**
वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
तृतीय संस्करण - 2010

90. **डॉ. राधेश्याम कौशिक** : **स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास का शिल्पविकास**
मंगल प्रकाशन, जयपूर
प्रथम संस्करण - 1973

91. **रामदरश मिश्र** : **हिन्दी उपन्यास एक अंतर्यात्रा**
राजकमल प्रकाशन
दूसरा संस्करण - 1982

92. **रामजी तिवारी** : **आकलन गोविन्दमिश्र**
अमन प्रकाशन प्रथम संस्करण - 2015

93. राम पुनियानी : **सांप्रदायिक राजनीति : तथ्य एवं मिथक**
वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
प्रथम संस्करण - 2005

94. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय: **स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास**
राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली - 110006
संस्करण - 2009

95. डॉ. लाल साहब सिंह : **स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में युगबोध**
अभय प्रकाशन
128/224, एच ब्लाक, किदवई नगर, कानपुर
संस्करण - 2005

96. डॉ. विजयकुमारन सी.पी.वी: **हिन्दी उपन्यासों में भारत विभाजन परवर्ती वास्तविकता**
जवाहर पुस्तकालय, सदर बाज़ार, मथुरा
संस्करण - 2013

97. विपिन चन्द्र : **हमारी आज़ादी की कहानी**
नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया

98. विवेक द्विवेदी : **भीष्म साहनी : उपन्यास साहित्य**
वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
द्वितीय संस्करण - 2009

99. विष्णु प्रभाकर : **मेरे साक्षात्कार**
किताबघर प्रकाशन संस्करण - 2008

100. विष्णु प्रभाकर : **जैनेन्द्र साक्षी है पीढ़ियाँ - खण्ड तीन**
पूर्वोदय प्रकाशन
7/8, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002
प्रथम संस्करण - 1990

101. डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ: **हिन्दी उपन्यास : परिवेश और दृष्टि**
गौतम बुक कंपनी
260/5, राजापार्क, जयपुर - 302 004
प्रथम संस्करण - 2015

102. डॉ. शशिभूषण सिंहल : **हिन्दी उपन्यास नये क्षितिज**
प्रेम प्रकाशन मंदिर,
3012, बल्लीमारान, दिल्ली-110 006
प्रथम संस्करण - 1992

103. डॉ. शशिभूषण सिंहल : **हिन्दी उपन्यास बदलते संदर्भ**
प्रवीण प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली

104. डॉ. शशिभूषण सिंहल : **भारतीय स्वतंत्रता और हिन्दी उपन्यास**
आर्य प्रकाशन
सरस्वती मंडल भंडार, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 2000

105. डॉ. शहेनाज जाफर बासमेह: **कृष्णा सोबती का कथा साहित्य एवं नारी समस्याएँ**
अभय प्रकाशन
6A/540, आवास विकास, हंसपुरम, कानपुर
संस्करण - 2009

106. शिवदत्ता वावलकर : **उपन्यासकार विनोदकुमार शुक्ल**
विद्या प्रकाशन, सी-449, गुजैती, कानपुर

107. शिवप्रसाद सिंह : **मेरे साक्षात्कार**
किताबघर प्रकाशन प्रथम संस्करण - 1995

108. शैलजा पाटील : **तमस एक अध्ययन**
शुभम पब्लिकेशन
3ए-128, हंसपुरम, कानपुर - 208021
प्रथम संस्करण - 2003

109. **डॉ. शोभा पालीवाल** : **अमृतलाल नागर के उपन्यासों में सामाजिक चेतना**
साहित्यागार, जयपुर

110. **डॉ. शंकरवसंत मुद्गल** : **हिन्दी के महाकाव्यात्मक उपन्यास**
चन्द्रलोक प्रकाशन
किदवई नगर, कानपुर
प्रथम संस्करण - 1992

111. **शंभू बादल बलभद्र** : **यशपाल का रचना संसार**
साहित्य अकादमी
रवीन्द्र भवन, 35, फिरोज़शा मार्ग, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 2014

112. **सत्यदेव त्रिपाठी** : **शिवप्रसाद सिंह का कथा साहित्य**
लोकभारती प्रकाशन
प्रथम संस्करण - 1988

113. **डॉ. सत्यपाल चुध** : **आस्था के प्रहरी**
इकाई प्रकाशन
16, पुरुषोत्तमनगर, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1970

114. **डॉ. सावित्री मठपाल** : **जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी पात्र**
मंगल प्रकाशन, गोविन्द राजियों का रास्ता, जयपुर

115. **सावित्री शर्मा** : **भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास उपलब्धि और सीमाएँ**
ग्रंथ निकेतन, पटना
प्रथम संस्करण - 1961

115. **डॉ. सुकुमार भंडारे** : **समकालीन हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक चित्रण**
विकास प्रकाशन
311-सी, विश्व बैंक बर्रा, कानपुर - 208 027
प्रथम संस्करण - 2007

116. डॉ. सुजाता : **हिन्दी उपन्यासों के असामान्य चरित्र**
साहित्य प्रकाशन, मालीवाडा, दिल्ली - 6

117. सुधीश पचौरी : **आलोचना से आगे (उत्तर आधुनिकतावादी और उत्तर संरचनावादी विमर्श)**
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
इलाहाबाद, पटना
प्रथम संस्करण - 2001

118. डॉ. सुमा रोडनवर : **विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों में सामाजिकता**
34/6 एच.ए.एल कोलोनी
रामादेवी, कानपुर - 208 007

119. डॉ. सौ. सुरेखा लक्ष्मण तांबे: **कृष्णा सोबती के कथासाहित्य में चित्रित ग्रामीण जीवन**
पूजा पब्लिकेशन
6-B, बौद्धनगर,
नौबस्ता, कानपुर - 21
प्रथम संस्करण - 2011

120. डॉ. आर. सुरेन्द्रन : **स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास**
लोकभारती प्रकाशन
प्रथम संस्करण - 1997

121. डॉ. सुरेश पटेल : **श्रीलाल शुक्ल : एक अध्ययन**
साधना प्रकाशन
60-B, राजीव बिहार, चन्दीपुरवा रोड
नौबस्ता, कानपुर - 21
प्रथम संस्करण - 2009

122. डॉ. सुरेश सदावर्ते : **कथाकार गिरिराज किशोर**
विकास प्रकाशन
कानपुर - 27
प्रथम संस्करण - 1996

123. सुषमा कोंड : **श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में व्यंग्यात्मकता**
साहित्य सागर, कानपुर
प्रथम संस्करण - 2010

124. डॉ. सोमाभाई पटेल : **गिरिराज किशेर के उपन्यासों में संवेदना और शिल्प**
अमन प्रकाशन, कानपुर - 208 012
प्रथम संस्करण - 2010

125. डॉ. संगीता सहजवानी : **हिन्दी के जीवनीपरक उपन्यास : एक अध्ययन**
अमन प्रकाशन
104A/118, रामबाग, कानपुर - 208 012
प्रथम संस्करण - 2015

126. डॉ. संजय गडपायले : **भीष्म साहनी की कहानियों में मानवीय संबंध**
शुभम पब्लिकेशन,
3ए-128, हंसपुरम, कानपुर - 208021

127. डॉ. हेमराज कौशिक : **कथाकार एवं उपन्यासकार यशपाल**
पुष्पांजली प्रकाशन
दिल्ली - 110 053
संस्करण - 2006

128. डॉ. श्रद्धा उपाध्याय : **हिन्दी उपन्यास : वस्तु एवं शिल्प**
अमन प्रकाशन
104A/118, रामबाग, कानपुर - 12
प्रथम संस्करण - 2012

129. श्रीलाल शुक्ल : **मेरे साक्षात्कार**
किताबघर प्रकाशन
प्रथम संस्करण - 2002

अंग्रेज़ी ग्रंथ

1. Jawaharlal Nehru	:	The Discovery of India Penguin Books First Edition - 2004
2. S K Biswal, B K Nanda	:	Gandhies Writings and Speeches to the Hindus and Muslims Arise Publishers and Distributors 4648/1, 21, Ansari Road, Darya Ganj New Delhi First Edition - 2008
3. Kathryn Tidrick	:	Gandhi - A political and spiritual life I.B. Tauris Apco Ltd. 6, Salem Road, London 175 Fifth Avenue, New York First Edition - 2006
4. S. Gopal, Uma Iyengar	:	The essential writing of Jawaharlal Nehru (Volume II) Oxford University Press YMCA Library Building, Jai Singh Road, New Delhi 110 001 First Edition - 2003
5. Rakesh Batabyal	:	The Penguin Book of Modern Indian Speeches Penguine Books India Pvt. Ltd. 11 Community Centre Panchasheel Park, New Delhi First Edition - 2007

पत्र-पत्रिकाएँ

1. सामान्य विवरण, साहित्य अकादेमी, 2013
2. नव उत्तरगाथा, वामधर्मी और जनवादी सृजन का त्रैमासिक - प्रवेशांक
3. तद्‌भव, अखिलेश
4. हंस, जुलाई-सितंबर, 2006
5. कथाक्रम, जनवरी-मार्च, 2004
6. आजकल, आगस्त 2015
7. अक्षर पर्व, जून 2015
8. अक्षर पर्व (भीष्म साहनी जन्मशति विशेषांक), जून 2016
9. समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-अगस्त 2014
10. समकालीन भारतीय साहित्य, सितंबर-अक्तूबर 2014
11. समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च-अप्रैल 2015
12. भाषा, सितंबर-अक्तूबर 2013
13. भाषा, नवंबर-दिसंबर 2013
14. राष्ट्रसेतु, जनवरी-मार्च 2016
15. वर्तमान साहित्य, सितंबर 2015
16. राजभाषा भारती, अक्तूबर-दिसंबर 2014
17. नवनिकष, जुलाई 2016
18. पंचशील शोध समीक्षा, अप्रैल-जून 2011
19. सम्मेलन पत्रिका, अप्रैल-जून 2013
20. साहित्य अमृत, जून 2016
21. आलोचना, अप्रैल-सितंबर 2004
22. अनुवाद, अक्तूबर-दिसंबर 2009